

मध्यप्रदेश के
मन्दिर
और
स्थापत्य

मध्यप्रदेश के मन्दिर और स्थापत्य

संपादकद्वय :

डॉ० सुस्मिता पाण्डे

डॉ० हर्षवर्धन सिंह तोमर

संपादक-मण्डल :

डॉ० रवीन्द्र भारद्वाज

डॉ० रमण सोलंकी

डॉ० प्रीति पाण्डेय

डॉ० रत्नेश कुमार त्रिपाठी

डॉ० ब्रह्मदीप अलूने

प्रकाशन-विभाग, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

एवं

प्रशासक, श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति, उज्जैन (म०प्र०)

के संयुक्त तत्त्वावधान में प्रकाशित

2015

'MADHYAPRADEŚA KE MANDIRA AURA STHĀPATYA'
Edited by Dr. Susmita Pande & Dr. Harshvardhan Singh Tomar

Published by:
PUBLICATIONS DEPARTMENT
Akhila Bhāratiya Itihāsa Saṅkalana Yojanā, New Delhi
&
Administrator, Shree Mahakaleshwar Temple Management Committee, Ujjain (M.P.)

Distributed by :
Akhila Bhāratiya Itihāsa Saṅkalana Yojanā
Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj',
Jhandewalan, New Delhi-110 055
Ph.: 011-23675667
e-mail : abisy84@gmail.com
Visit us at : www.itihassankalan.org

© Copyright : ABISY
First Edition : Kaliyugābda 5116, i.e. 2014 CE
Typesetting & Cover Design by:
Gunjan Aggrawala
Printed at: Graphic World, 1659 Dakhni Sarai Street,
Daryaganj, New Delhi-110055

Price : ₹ 500/-
(Funded by Administrator, Shree Mahakaleshwar Temple Management Committee, Ujjain)

ISBN : 978-93-82424-11-6

प्रकाशक :
प्रकाशन—विभाग
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली
एवं
प्रशासक, श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति, उज्जैन (मध्यप्रदेश)

वितरक :
अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
बाबा साहेब आपटे-स्मृति भवन, 'केशव-कुञ्ज',
झण्डेवाला, नयी दिल्ली-110 055
दूरभाष : 011-23675667
ई-मेल : abisy84@gmail.com
वेबसाइट : www.itihassankalan.org

© सर्वाधिकार : अ०भा०इ०सं०यो०
प्रथम संस्करण : कलियुगाब्द 5116, सन् 2015 ई०
टाइपसेटिंग एवं आवरण—सज्जा :
गुंजन अग्रवाल
मुद्रक : ग्राफिक वर्ल्ड, 1659, दखनी सराय स्ट्रीट,
दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002

मार्गदर्शक एवं परामर्शदाता :

डॉ० बालमुकुन्द पाण्डेय

श्री अशोक सोहनी

प्रो० आनन्द मिश्र

श्री कवीन्द्र कियावत

डॉ० तेज सिंह सैधव

श्री जयन्त जोशी

संपादकीय

गो

ष्ठी के लेखों का यह संग्रह कला के इतिहास-लेखन में एक महत्वपूर्ण चरण है। भारत के मन्दिरों की प्रमुख शैलियों में विशिष्ट लक्षणों पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं, परन्तु स्थानीय शैलियों पर अभी भी कला के इतिहास-लेखन में बहुत अपेक्षाएँ हैं। मालवा एवं निमाड़ के ऐतिहासिक मन्दिरों पर संगोष्ठी इस क्षेत्र के ऐसे अनेक मन्दिरों पर प्रकाश डालती है, जो ऐतिहासिक रूप से या तो किसी महत्वपूर्ण स्थानीय शैली के ज्ञान से अवगत कराते हैं या किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। मालवा तथा निमाड़ की जीवन्त धरोहर इन मन्दिरों से आज तक जुड़ी चली आ रही है। उपर्युक्त सन्दर्भों के अतिरिक्त मन्दिरों के सामाजिक, आध्यात्मिक सन्दर्भ भी इस संगोष्ठी से जुड़े हैं।

मन्दिर-स्थापत्य की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के अनेक अवयव हैं— (क) वास्तु का सिद्धान्त, (ख) यज्ञ एवं विराट् पुरुष की प्रतीकात्मकता, (ग) भक्ति की भूमिका तथा उसके सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार के धार्मिक स्थापत्य, (घ) आगमों तथा पुराणों का योगदान, (ङ) विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के विधि-विधान तथा दर्शन के अनुसार मन्दिरों की संरचना, (च) पुराणों में वर्णित मन्दिर-स्थापत्य के विभिन्न अनुपात।

भारतीय दर्शन में यह माना जाता है कि ब्रह्म के दो रूप हैं— दिक् एवं काल। काल के रूप से ज्योतिषशास्त्र तथा दिक् के रूप में वास्तुशास्त्र निकलता है। मन्दिरों का निर्माण वास्तुशास्त्र तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के दर्शन तथा अनुष्ठान की अभिव्यक्ति के अनुसार हुआ है। जैसे बौद्ध चैत्य गृहों में वृत्तायत सभाभवन में मध्यभाग (नेव) तथा गलियारा (आइल) सामूहिक प्रार्थना हेतु बने तथा वैदिकों में मण्डप तथा गर्भगृह बने। गर्भगृह में प्रतिमा, हृदय में स्थित अंतर्यामी की अभिव्यक्ति है।

वैदिक काल में यज्ञ की प्रतीकात्मकता के अंतर्गत आधिभौतिक, आधिदैविक तथा

आध्यात्मिक तत्त्व सम्बन्धित थे। अधिभौतिक के अंतर्गत मनुष्य भौतिक सामाजिक पक्ष से जुड़ा था। आधिदैविक के अंतर्गत सृष्टि गतीय तत्त्वों से तथा आध्यात्मिक तत्त्व के अंतर्गत स्वयं का परमतत्त्व से साम्य होता था। यही प्रतीकात्मकता मन्दिरों में भी तत्त्वान्तरित हुई। पुरुष, जो सार्वभौमिक सार है, ही मन्दिर के सन्दर्भ में रूप ले लेता है। यज्ञ के विभिन्न पक्षों की प्रतीकात्मकता मन्दिर के तलविन्यास में सम्मिलित होकर भक्ति की नयी आवश्यकताओं से तत्त्वान्तरित हुई। यज्ञ के अनुष्ठान मन्दिर योजना में ग्रहण कर लिये गये। पुरुष के अनुसार पादपीठ, जंघा, स्कन्ध, ग्रीवा, मस्तक आदि नाम मन्दिर के विभिन्न भागों के हो गये। पाञ्चरात्र-आगमों में मन्दिर की प्रदक्षिणा अभिगमन महत्त्वपूर्ण पञ्चकर्म के अंतर्गत आती थी।

मन्दिर में विभिन्न भागों का ब्रह्माण्ड के विभिन्न तत्त्वों से तादात्म्य देखा गया तथा भक्त अपने सीमित स्वरूप को मन्दिर के विराट् पुरुष से साम्य कर एक अमर व्यक्ति की रचना कर लेता था। विराट् पुरुष जो समस्त ब्रह्माण्ड में भी है तथा उसके परे भी।

शांखायनश्रौतसूत्र में प्रासाद का वर्णन है, जिसमें किसी प्रकार की दीवारों का संकेत है और जहाँ पुरोहित अग्नि में आहुति देता था तथा लोक संस्कृति में किसी न किसी प्रकार की संरचना देवताओं के लिए रही होगी। अर्थशास्त्र भी देवस्थानों का वर्णन करता है। परन्तु भारत के ऐतिहासिक मन्दिरों की परम्परा में मालवा एवं निमाड़ की विशिष्ट भूमिका रही है। दंगवाड़ा के उत्खनन से ताम्राशमीय संस्कृति में ही देवगृह की उपलब्धि हुई है, जिसमें शंकरूपी पुरावस्तुएँ संभवतः मातृदेवी अनुमानित की गई है।

शुंगकाल के वृतायत मन्दिर के साक्ष्य एम०डी० खरे को बेसनगर (विदिशा) से प्राप्त हुए थे। इसी प्रकार साँची में दर्शाये गए बोधिमंड भी प्रारम्भिक धार्मिक संरचनाएँ थीं। गुप्तकाल में भी प्रारम्भिक मन्दिरों में साँची का मन्दिर क्र० 17 तथा गुहा-मन्दिरों में उदयगिरि अग्रणी रहे हैं। इसी प्रकार तिगवा तथा एरण के भी मन्दिर भारत के प्रारम्भिक संरचनात्मक मन्दिरों में हैं।

सन् 423 ई० का गंगधार-अभिलेख विश्वकर्मा (ओलिकर नरेश) के काल में बने ऐसे विष्णु मन्दिर का उल्लेख करता है, जिसमें तान्त्रिक प्रभाव स्पष्ट है। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में तंत्र का धर्म में वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में मन्दिरों में प्रयोग होता था— यह तथ्य मालवा के इसी अभिलेख से ज्ञात होता है तथा यह अभिलेख इस प्रकार सभी धार्मिक मतों की एकता भी प्रतिपादित करता है।

पूर्व-मध्यकाल में मालवाञ्चल में जो 'नागर शैली' के मन्दिर बने, वे अपनी विशिष्टताओं के कारण भारतीय स्थापत्य के इतिहास में नवीन शैलियों के रूप में मान्य हैं। प्रतिहारकालीन ग्यारसपुर मन्दिर को नये प्रकार का 'शैलोत्कीर्ण विमान' कहा गया है। मन्दिर-निर्माण एक शिला के सहारे कर के आधे से अधिक वजन शिला पर आश्रित करने का कारण यह 'आभियान्त्रिकी का अनुपम उदाहरण' कहा गया है। बड़ोह पठारी के

प्रतिहारकालीन मन्दिर भी स्थापत्यशास्त्र, पुराणों तथा 'वास्तुपुरुष मण्डल' के नियमों को पूर्ण करते प्रतीत होते हैं। ग्वालियर का 'तेली का मन्दिर' तथा उसके निकटवर्ती 'नटेश्वर के मन्दिर' भी महत्त्वपूर्ण हैं।

परमार काल में तो 'भूमिज शैली' मालवा तथा निमाड़ की विशिष्ट शैली हो गई। यह शैली *समरांगणसूत्रधार* तथा *अपराजिपृच्छा* में वर्णित है तथा कुछ अन्य स्थानों में भी दिखती है, जैसे राजस्थान, गुजरात तथा अम्बरनाथ में किन्तु मालवा तथा ऊन में अधिक उदाहरण होने के कारण मूल रूप से यहीं की मानी जा सकती है।

मालवा क्षेत्र न ही केवल ऐतिहासिक रूप से प्रसिद्ध है, किन्तु यहाँ धार्मिक रूप से भी जुड़े ज्योतिर्लिंग हैं जो सहस्रों श्रद्धालुओं की आस्था के केन्द्र हैं। इनमें महाकाल एवं ओंकारेश्वर हैं। महाकाल की ऐतिहासिकता प्रद्योतकाल से ही हमारे समक्ष आती है, जिसकी पुष्टि के पुरातात्विक आधार महाकाल प्रकार के सिक्के भी हैं। कालिदास ने *मेघदूत* में इसमें संध्या-पूजा का वर्णन किया है। मत्स्यपुराण, नृसिंहपुराण, स्कन्दपुराण तथा शिवपुराण में इसका वर्णन है।

प्रस्तुत संगोष्ठी के गरिमामय सत्र में विद्वान् प्रमुख सचिव श्री मनोज श्रीवास्तव मुख्य अतिथि थे, डॉ० जगन्नाथ दुबे (वरिष्ठ मुद्राशास्त्री) विशेष अतिथि थे। डॉ० सीताराम दुबे (आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, काशी हिंदू विश्वविद्यालय) द्वारा विषय-प्रवर्तन किया गया।

इस सत्र के मुख्य वक्ता डॉ० बालमुकुन्द पाण्डेय (संगठन-सचिव, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना) थे तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन के निदेशक डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित ने की।

इस दो-दिवसीय संगोष्ठी में मालवा एवं निमाड़ के मन्दिरों से संबंधित सभी पक्षों पर शोधपत्र पढ़े गये। मन्दिरों के सामान्य पक्षों के संबंध में मन्दिर-स्थापत्य कला, उनका समाज को योगदान, राष्ट्रीय चेतना व आन्दोलन में उनका योगदान, उनकी संचालन-व्यवस्था, पर्यटन को योगदान आदि थे। मालवा के प्रारम्भिक मन्दिरों से लेकर विशिष्ट स्थानों के मन्दिर, जिनमें स्थानीय शैलियों की नवीनता है तथा अधिकांश रूप में अप्रचलित है, जैसे— रतलाम, मन्दसौर, चम्बल परिक्षेत्र, दंगवाड़ा, पद्मप्रताप, ग्वालियर, मुरैना, बड़वाह, आगर, उज्जयिनी, होशंगाबाद, शाजापुर, गजनीखेड़ी, मोली आदि। तीसरे प्रकार के लेखों में मालवा के वे मन्दिर हैं, जिन्होंने अपनी कला व स्थापत्य से इन सम्प्रदायों को लोकप्रिय बनाया तथा जिनके उत्सव, मेले तथा अनुष्ठान आज भी जीवन्त परम्परा के रूप में प्राचीन तथा समकालीन संस्कृतियों को जोड़ते हैं।

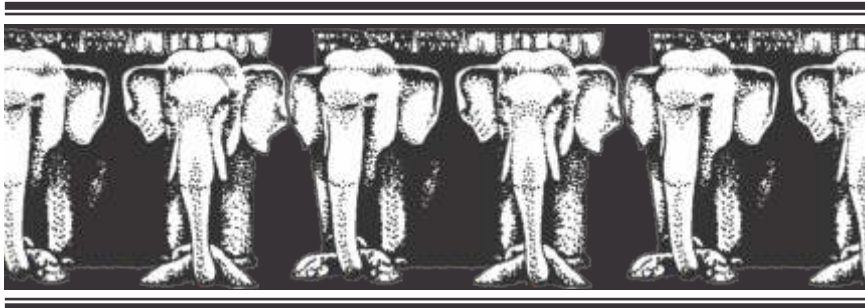
समापन-सत्र में मुख्य अतिथि म०प्र० जनअभियान परिषद् (म०प्र० शासन, भोपाल) के उपाध्यक्ष श्री प्रदीप पाण्डे थे। विषय-प्रवर्तक डॉ० रहमान अली (पूर्व अध्यक्ष, प्रा०भा०इ०सं० एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय) थे। मुख्य वक्ता प्रो० सतीशचन्द्र मित्तल (अध्यक्ष, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना) थे। अध्यक्षता डॉ०

आर०सी० ठाकुर (निदेशक, अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर) द्वारा की गई।

यह महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी जिनके अधिक प्रयत्नों से सम्पन्न हुई, वे हैं— डॉ० तेजसिंह सैंधव (अध्यक्ष, मालवा प्रान्त भारतीय इतिहास संकलन समिति), अध्यक्ष, श्री महाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति (उज्जैन), श्री बी०एम० शर्मा (जिलाधीश, उज्जैन), डॉ० रमण सोलंकी (महामंत्री मालवा प्रांत इतिहास संकलन समिति), डॉ० सुमेरसिंह सोलंकी, डॉ० प्रशान्त पुराणिक, डॉ० ब्रह्मदीप अलूने, श्री आशीष नाटानी, सुश्री एकता व्यास, श्रीमती प्रीति पाण्डेय इत्यादि। स्वराज संस्थान संचालनालय (संस्कृति विभाग, म०प्र० शासन) के प्रति भी हम आभारी हैं।

आशा है कि इस संगोष्ठी के शोध-पत्रों का संकलन भारतीय कला तथा धर्म के इतिहास में एक नवीन दृष्टि डालेगा, क्योंकि कला तथा धर्म भारतीय संस्कृति के प्राण हैं।

—संपादकद्वय



विषय-सूची

संपादकीय	(vii)
मन्दिर-खण्ड	1
1. ऐतिहासिक शक्ति-साधना एवं उज्जयिनी के प्रमुख शक्ति-मन्दिर कवीन्द्र कियावत	3
2. शैव परम्परा एवं उज्जयिनी के महाकाल जयन्त जोशी	5
3. मन्दिरों का भारतीय समाज एवं संस्कृति को योगदान डॉ० शिवा खण्डेलवाल	8
4. श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में योगदान डॉ० दिनेश चन्द्र खण्डेलवाल	12
5. राष्ट्रीय आन्दोलन व चेतना में मन्दिरों की भूमिका प्रो० बी०एल० डावर	17
6. सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान का प्रतीक मोहनखेड़ा तीर्थ डॉ० जीवनबाला लुणावत	20
7. उज्जयिनी : शैव साधना का प्रमुख केन्द्र सोनल अग्रवाल	24
8. उज्जैन के ऐतिहासिक देवी-मन्दिर डॉ० प्रियंका चौबे एवं पीयूष पाण्डेय	27
9. उज्जयिनी की शैव परम्परा में कालभैरव-उपासना डॉ० अंजना सिंह गौर	33

10.	लक्ष्मी का ऐतिहासिक महत्त्व एवं उज्जयिनी का गजलक्ष्मी मन्दिर डॉ० एकता व्यास	36
11.	सुन्दरगढ़ और महाकाल मन्दिर मायापति मिश्र	38
12.	रतलाम जिले के प्रमुख ऐतिहासिक मन्दिर डॉ० अनिल कुमार जैन	42
13.	रतलाम जिले के ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल डॉ० कमलेश मेहर, डॉ० नीरज सारवान एवं डॉ० सुशीला आर्य	45
14.	नरसिंहगढ़ तहसील के ऐतिहासिक मन्दिर मुकेश कुमार जाटव	50
15.	कमाली का मन्दिर कविता मालवीय	54
16.	मुरैना के प्रमुख शिव-मन्दिरों का ऐतिहासिक विश्लेषण डॉ० सुनील कुमार सक्सेना एवं अशोक सिंह नरवरिया	58
17.	श्यामपुर जिले के ऐतिहासिक मन्दिर : एक सर्वेक्षण डॉ० पूनम पाराशर	64
18.	नगरी माता मन्दिर (अंजड़) जीतेन्द्र राठौर	70
19.	शाजापुर में प्राचीन राजराजेश्वरी मन्दिर देवेन्द्र कुमार	70
20.	पन्ना जिले के मन्दिर स्मिता	75
21.	निमाड़ क्षेत्र बड़वानी के नर्मदातटीय शिव-मन्दिरों का ऐतिहासिक अध्ययन प्रवीण मालवीय	79
22.	निमाड़ में आस्था के केन्द्र सेवन्ती डावर	82
23.	मालवा और निमाड़ के शिव-मन्दिरों के निर्माण में अहिल्याबाई होल्कर का योगदान डॉ० बबीता सकवार (बुनकर)	88
24.	पत्थरों में धर्मघोष : रतलाम का माङ्गल्य मन्दिर डॉ० अंशु भारद्वाज	91

25. मन्दिरों में संगीत-नृत्य की परम्परा	94
डॉ० अंजना झा, नन्द किशोर झा	
26. ग्वालियर के मन्दिरों का पर्यटन-उत्पाद के रूप में मूल्यांकन	99
प्रो० के० रत्नम्	
स्थापत्य-खण्ड	103
1. मन्दिर-स्थापत्य कला के विभिन्न पक्ष	104
डॉ० पद्मा सक्सेना	
2. मन्दिर-स्थापत्य कला के विभिन्न पक्ष	107
डॉ० चंचल बरबेले वर्मा	
3. अग्निपुराण में वर्णित देव-प्रतिमाओं के लक्षण : वासुदेव के विशेष सन्दर्भ में	112
डॉ० रत्नेश कुमार त्रिपाठी	
4. पौराणिक मन्दिर-वास्तु परम्परा	118
ध्रुवेन्द्रसिंह जोधा	
5. प्राचीन भारतीय मन्दिर-वास्तुकला (गुप्तकाल के सन्दर्भ में)	123
अनू बड़कुड़	
6. दशपुरीय शैल-स्थापत्य का अद्भुत चमत्कार : धर्मराजेश्वर मन्दिर	127
डॉ० पूरन सहगल	
7. मालवा का एलोरा : धर्मराजेश्वर (धर्मनाथ) मन्दिर	131
डॉ० रवीन्द्र भारद्वाज	
8. मालवा की शैव परम्परा में उमा-महेश्वर	135
डॉ० प्रशांत पुराणिक	
9. मालवा के स्तूप-मन्दिर	139
डॉ० रितेश लोट	
10. मालवा के प्रमुख सूर्य मन्दिर एवं सूर्य-प्रतिमाएँ : केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर के सन्दर्भ में	143
रश्मि सिंह	
11. बुन्देलखण्ड के सूर्य-मन्दिर : उपासना के केन्द्र	149
अश्विनी चौहान	
12. शहडोल का विराटेश्वर मन्दिर : एक ऐतिहासिक अध्ययन	153
दिनेश कुमार शाक्य	

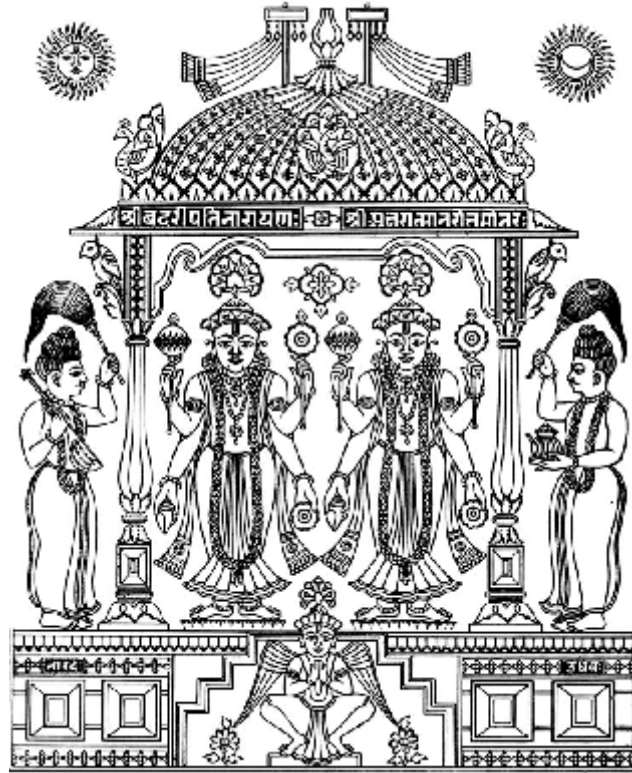
13.	परमारकालीन मन्दिरों से प्राप्त शिव-प्रतिमाएँ प्रो० आनन्द मिश्र	157
14.	गौरी सोमनाथ मन्दिर, ओंकारेश्वर डॉ० रमण सोलंकी	160
15.	ग्यारसपुर का बाजरा मठ डॉ० हर्षवर्धन सिंह तोमर	163
16.	चिखल्दा का पाशुपत शिव-मन्दिर : पशुपतेश्वर डॉ० पुष्पलता खरे	170
17.	मन्दसौर जिले में पाशुपत सम्प्रदाय से संबंधित देवालय डॉ० हंसा व्यास	174
18.	पद्मावती की प्राचीन मूर्ति एवं मन्दिरों का व्यावहारिक स्वरूप डॉ० मीना श्रीवास्तव	182
19.	चोली का ऐतिहासिक मन्दिर : शिल्पकला एवं दार्शनिकता का विवेचन रुचिका वर्मा	187
20.	अग्निकुण्डों एवं मन्दिरों का प्रारम्भिक केन्द्र : दंगवाड़ा (उज्जैन) डॉ० प्रीति पाण्डे	191
21.	नागेश्वर मन्दिर, बड़वाह डॉ० मंगला ठाकुर, डॉ० सुमेर सिंह सोलंकी	194
22.	चम्बल परिक्षेत्र के भदावर में अनोखा प्राचीन मन्दिर डॉ० एम०डी० मिश्र	198
23.	रामजानकी मन्दिर, ग्वालियर के लघु भित्ति-चित्रांकनों में रामकथा-प्रसंग डॉ० कुमकुम माथुर	203
24.	आगरा का बैजनाथ मन्दिर एवं लघु देवालय समूह डॉ० किरण रमण सोलंकी	207
25.	जामगढ़-भगदेई का शिव मन्दिर विनोद तिवारी	211
26.	शिव मन्दिर (रायसेन दुर्ग) निर्मला चौबे	213
27.	ग्वालियर में दिगम्बर जैन तेरापंथी पञ्चायती पुरानी सहेली बड़ा मन्दिर : एक ऐतिहासिक अध्ययन	216

डॉ० सुशील कुमार	
28. गजनीखेड़ी का चामुण्डा मन्दिर	224
आशीष कुमार बिठोरे	
29. नर्मदातटीय शैव सम्प्रदाय का अध्ययन : होशंगाबाद के सन्दर्भ में	226
डॉ० असुन्ता कुजूर	
30. निमाड़ क्षेत्र, बड़वानी के नर्मदातटीय शिव-मन्दिरों का ऐतिहासिक अध्ययन	231
प्रवीण मालवीय	
31. मालवा व निमाड़ में मन्दिरों का उद्भव एवं विकास	235
डॉ० रमेशचन्द्र यादव	
32. निमाड़ क्षेत्र में मन्दिरों की परम्परा : ऊन के मन्दिर	239
डॉ० मणिशंकर डोंगरे	
33. शाजापुर परिक्षेत्र की प्राचीन धरोहर	245
डॉ० सौदान सिंह मकवाना	
विविध	249
1. बौद्ध-विहार : शिक्षा-केन्द्र के रूप में	250
डॉ० बबिता कुमारी	
2. वैष्णव-सम्प्रदाय और भक्ति का उदय	259
डॉ० सुधा सोनी	
3. उज्जयिनी की वैश्या-टेकरी	264
डॉ० प्रवीण जोशी	
4. हिंदू-धर्म का जनजातियों पर प्रभाव : एक ऐतिहासिक विवेचन	266
राजाराम सिंह	



सन्धर

खण्ड





1.

ऐतिहासिक शक्ति साधना एवं उज्जयिनी के प्रमुख शक्ति-मन्दिर

कवीन्द्र कियावत

जिलाधीश, उज्जैन (म०प्र०)

धर्म या दर्शन के क्षेत्र में शक्ति को देवी या स्त्री रूप में मान्य देवता के पर्याय के रूप में लिया जाता है। महाशक्तिशालिनी सत्ता के रूप में मान्य कल्पित या प्रतिष्ठित स्त्रीरूपिणी देवता अर्थात् देवी का उपासक 'शाक्त' कहलाता है, इसकी पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक परम्परा को देखा जाए तो प्रारम्भ से ही समाज के गठन में माता के रूप में स्त्री ने बड़ी महत्वपूर्ण निभाई है, जिसके कारण विश्व के कई भागों में मातृसत्तात्मक संस्थाएँ बनीं। इसलिये मातृदेवी की पूजा का प्रचलन हुआ। विश्व के कई प्रागैतिहासिक स्थलों से स्त्री-देवता या मातृदेवी की मूर्तियाँ मिली हैं और इनमें बहुत सी पुराश्म-युग के परवर्ती प्रखण्डों से जुड़े हैं। ये सभी देवियाँ वस्त्रविहीन हैं और ऐतिहासिक युग के शिल्प की तुलना में अपेक्षाकृत अपरिष्कृत हैं। अभी तक उल्लिखित सभी पुरातात्विक साक्ष्यों से जहाँ मातृसत्ता की प्राचीनता तो सिद्ध हो जाती है, वहीं शक्तिपूजा का दूसरा पक्ष वैदिक साहित्य भी प्रस्तुत करता है। वेदमंत्रों के अध्ययन से पुरुषदेवता के साथ अनेक देवियों के सन्दर्भ भी मिलते हैं। देवी-पूजा के सन्दर्भ में ऋग्वेद का एक सूक्त आज भी बहुत मान्य है। शाक्त इसे 'देवीसूक्त' कहते हैं। इस मंत्र में देवीय तत्त्व की विराट् अवधारणा एवं अनुभूति तथा उसकी सर्वसत्तात्मकता प्रकृति की अनूठी अभिव्यक्ति मिलती है। इसी परम्परा में महाकाल के साथ शक्ति के रूप में देवी का वर्णन भी हमें उज्जयिनी के हरसिद्धि मन्दिर व अन्य शाक्त मन्दिरों में देखने को मिलता है। दक्ष के घर कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम सती रखा गया। शिव से विवाह के बाद जब सती को अपने पिता

मन्दिर-खण्ड

दक्ष द्वारा किए जा रहे यज्ञ में शिव को निमन्त्रित न किए जाने पर सती ने शिव के अपमानस्वरूप स्वयं को यज्ञ की प्रखर ज्वाला में दग्ध कर दिया। शिव को यह घटना ज्ञात होने पर जब वे यज्ञ-स्थल पर पहुँचे, तब सती के मृत देह को कंधे पर उठाकर विक्षिप्त से नाचने लगे।

इस तरह जिन स्थलों पर सती के अंग गिरे, वे 'शक्तिपीठ' हो गये। सती का वामजन्तु जहाँ गिरा, वहाँ उज्जयिनी पीठ बना। इस पीठ की प्रमुख शक्ति देवी हरसिद्धि हैं। वर्तमान में हरसिद्धि मन्दिर एक विशाल प्रांगण से घिरा है, जिसमें आने-जाने के लिये चारों दिशाओं में द्वार हैं। मन्दिर के मुख्य मण्डप में शाक्त ग्रन्थों के अनुसार विभिन्न देवियों की आकृतियाँ हैं। *शिवपुराण* के अनुसार यहाँ श्रीयंत्र की पूजा होती रही है। गर्भगृह में एक शिला पर श्रीयंत्र उत्कीर्ण है। देवी हरसिद्धि के अतिरिक्त यहाँ अन्नपूर्णा, कालिका, महालक्ष्मी, महासरस्वती एवं महामाया की प्रतिमाएँ भी हैं।

ऐतिहासिक युगों में प्रवेश के साथ शाक्त पूजा के साथ तान्त्रिक परम्परा का भी विस्तार हुआ। स्त्री को दैवीय शक्ति मानकर तंत्र के माध्यम से देवी की पूजा की जाने लगी। यही कारण है कि तान्त्रिक कर्मकाण्ड में कुमारी कन्याओं तथा साधारण विवाहिता स्त्रियों की पूजा का विधान अनिवार्य रूप से सम्मिलित है। इसे 'कुमारी पूजा' एवं 'सुहासिनी पूजा' कहा जाता है। तंत्रमार्गी शाक्तों की दृष्टि में नारियाँ अत्यन्त पूजनीय हैं। नारी का तिरस्कार अथवा अपमान महामाया को असह्य है।¹ *शक्तिसंगमतंत्र* में स्पष्टतः यह बताया गया है कि कितनी ही दुष्टता, करुणा या भावनात्मता स्त्री क्यों न हो, वह वन्दनीय ही है। अतः शक्ति की तान्त्रिक-उपासना की परम्परा में उज्जयिनी के प्रमुख शक्ति-मन्दिरों में गढ़कालिका मन्दिर प्रमुख है, जो प्राचीन उज्जयिनी क्षेत्र में है। इसे भी सिद्धपीठ माना जाता है। इसके अतिरिक्त चौंसठ योगिनी, नगरकोट की रानी का भी तान्त्रिक दृष्टि से महत्त्व रहा है। शक्तिसाधक इन मन्दिरों में तान्त्रिक क्रम से यहाँ पाठ करते हैं, एवं मूठ मारने वाले तान्त्रिकों के उल्लेख यहाँ के निवासी अघोरी अब भी करते रहते हैं। उज्जयिनी के कण-कण में शिव का वास है एवं तंत्रशास्त्रों में भी स्पष्ट निर्देश है कि शक्ति के बिना शिव के शुष्क रहने से उनका नाम अथवा धाम कुछ भी नहीं रहता है। अतः शक्ति के अनेकों रूप का वर्णन *स्कन्दमहापुराण* के अवन्तीखण्ड में प्राप्त होता है। शिव व शक्ति के साथ भैरवपूजा का विधान भी बताया गया है। अतः उज्जयिनी के कालभैरव तथा विक्रान्त भैरव तान्त्रिक पूजा के लिये सिद्धि स्थान के रूप में आज भी विख्यात हैं।³

सन्दर्भ :

1. ऋग्वेद, मण्डल 10, सूक्त 125
2. जोशी, मुनीशचन्द्र, *ऐतिहासिक सन्दर्भों में शाक्ततंत्र*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, पृ० 65
3. राजपुरोहित, भगवतीलाल, *उज्जयिनी और महाकाल*, प्राच्य निकेतन, बृजमोहन बिड़ला रिसर्च सेन्टर, उज्जैन, 1992, पृ० 40, 39, 35



2.

शैव परम्परा एवं उज्जयिनी के महाकाल

जयन्त जोशी

प्रशासक, श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति

शि

वोपासना की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों के आधार पर यह स्वीकार कर लिया गया है कि सिंधु घाटी के निवासी शिवशक्ति की उपासना किया करते थे। इन ध्वंसावशेषों से किसी अन्य देवता की उपासना का कोई प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होता है। अतः शैव धर्म प्राग्वैदिक संस्कृति की देन है। सिंधु घाटी की सभ्यता के उपरान्त वैदिक सभ्यता में भी शिव के मानवाकार रूप को स्वीकार किया गया है। इस तरह वैदिक परम्परा में मूर्ति-पूजन प्रारम्भ हो गया। आकाशीय देवता रुद्र, मूर्ति रूप में लिंग, योनि या मानवाकार की तरह स्थापित हो गये। यही पूजा शक्ति के आधार बने। वैदिक सभ्यता के पश्चात् उपनिषदों, पुराणों तथा ऐतिहासिक महाकाव्यों में भी शिवाराधना ईश्वर के रूप में की गई है। यह निर्विवाद रूप से स्वीकार करना होगा कि भारत में आज भी जितनी उपासना शिव की होती है, उतनी शायद किसी अन्य देवता की नहीं। जब राजा या कोई शासक शैव मत को स्वीकार कर लेते थे, उसी देवता के मन्दिर बनवाते थे तथा अपनी मुहर आदि पर भी शिव के ही चिह्न या रूप रखा करते थे। ऐसे अनेक सिक्के व अभिलेख हमें प्राप्त होते हैं।

इसी परम्परा में शिव-मन्दिरों के निर्माण की परम्परा भी सम्पूर्ण भारत में हमें प्राप्त होती है। शैव सम्प्रदाय की दृष्टि से देखा जाये तो मालवा क्षेत्र शैव क्षेत्र ही माना जाता है एवं

उज्जयिनी ऐसे ही सर्वपूज्य देवता का स्थान माना गया है, जहाँ महाकाल वन में महाकाल मन्दिर एवं शिव की आराधना हमें चिर काल से प्राप्त होती है। महाकाल उज्जैन के ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मालवा में भी आस्था के केन्द्र रहे हैं। यही कारण है कि उज्जयिनी के महाकाल के अतिरिक्त मालवा एवं मध्यक्षेत्र के निर्माण के विभिन्न स्थानों पर हमें महाकाल के अनेक मन्दिर प्राप्त होते हैं। स्वयं महाकाल मन्दिर परिसर में वृद्ध महाकाल का मन्दिर आज भी विद्यमान है। इनके अतिरिक्त यहाँ गूढ़ महाकाल और कालेश्वर के मन्दिर भी विद्यमान थे, जो आज अज्ञात हैं। निमाड़ के प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर के ऊपरी तल पर महाकाल का मन्दिर है। उज्जैन के महाकाल मन्दिर के ऊपरी तल पर ओंकारेश्वर का मन्दिर है। खरगौन जिले के ऊन में महाकाल के दो परमारकालीन मन्दिर हैं। रतलाम जिले के सुखेड़ा तथा देवास जिले के सुन्दरसी में छोटे महाकाल हैं। महिदपुर के पास मकला में भी महाकाल का मन्दिर है। धार जिले के पुरातात्विक महत्त्व की बाघ-गुफाओं के पास महाकाल का परमारकालीन मन्दिर है।¹ इस तरह महाकाल के अनेक मन्दिर सम्पूर्ण मालवा में पाए जाते हैं, किन्तु उज्जयिनी के महाकाल के पूजन-अर्चन का विशद विवरण हमें कालिदास के *मेघदूत* में भव्य रूप में प्राप्त होता है। साहित्यिक परम्पराओं में हमें महाकाल के अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं। पुरातन काल से ही आस्थावान् भक्तगण उज्जयिनी के महाकाल की अर्चना करते आ रहे हैं। शैवों, कापालिकों तथा पशुपतियों की यह प्राचीन काल से आराधना-स्थल रहा है। इसलिये भी उज्जैन कई मन्दिर-मठों की नगरी रही है। महाकाल असाधारण देव हैं, जिनके दर्शन सरलता से नहीं हो सकते। जनश्रुति है कि यहाँ के शाश्वत शासक महाकाल ही माने गये हैं। अतः कोई अन्य राजा या शासक रात्रि उज्जयिनी में नहीं ठहर सकता था। उज्जयिनी का गौरव महाकाल से है एवं ऐसा कोई भक्त नहीं, जो अपने इष्ट की प्राप्ति के लिए महाकाल के प्रति अगाध श्रद्धा न रखता हो। उपासक महाकाल की उपासना में वैदिक और तान्त्रिक— दोनों ही विधियों का आश्रय लेता है। वैदिक मंत्र संग्रह में वह रुद्राक्षधारी, रुद्रसूक्त, महामृत्युञ्जय मंत्र, आराधना एवं तंत्रक्रिया के अनुसार वस्तु-विशेष से अभिषेक करता है। साथ ही उपासक शिवोपासना में जल, केसर, चन्दन, धूप, दीप, कर्पूर, श्वेत एवं रक्तकमल, शंखपुष्प, द्रोण व कुशपुष्प, चमेली, तुलसीदल, गेहूँ, जौ, चावल, उड़द, श्रीफल, सुपारी, लवंग, तम्बाकू आदि उपकरणों का प्रयोग करता है। शिवपूजन में पञ्चामृत का विशेष महत्त्व है। इन सभी के अभाव में केवल बिल्व-पत्र से ही शिव प्रसन्न हो जाते हैं।

शैवों के उपास्य देव शिव हैं, जो सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वपितृ हैं एवं उपासक अपनी श्रद्धा एवं उपासना से उपास्य को मुग्ध नहीं करता, अपितु उसके साथ गहन सान्निध्य प्राप्त करते हुए एक्यानुभव भी करता है।

‘आत्मकेदं सर्वमिति स वा एष एवं
पश्यन्नेवं न्वान एवं विजानत्मात्परतिरात्यकोड
आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति ।’⁴

इस तरह ब्रह्माण्ड के तीन लोकों में जिन तीन शिवलिंगों को सर्वपूज्य माना गया है, उनमें भूलोक पृथिवी पर भगवान् महाकाल को ही प्रधानता मिली है।

‘आकाशं तारकलिंगः पातले हाटकेश्वर ।

भूलौके च महाकालोः लिंगमय ! नमोऽस्तुते ॥’

जहाँ उपासक अपने उपास्य की उपासना में स्वयं को सम्पूर्णता से अर्पित कर देता है।

सन्दर्भ :

1. डॉ० निगम, ब्रजबिहारी, *शैव धर्म एवं दर्शन*, श्री कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन, 2007, पृ० 19
2. डॉ. राजपुरोहित, भगवतीलाल, *उज्जयिनी और महाकाल*, प्राच्य निकेतन, ब्रजमोहन बिड़ला रिसर्च सेन्टर, उज्जैन, 1992, पृ० 112
3. *मेघदूतम्*, पृ० मे० 37-40
4. *छांदोग्योपनिषद्*, 7.25.2





3.

मन्दिरों का भारतीय समाज एवं संस्कृति को योगदान

डॉ० शिवा खण्डेलवाल

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, श्री अटल विहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं
वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर

मन्दिरों का समाजार्थिक तथा शैक्षणिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राचीन काल से ही दक्षिण भारत में नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम में मन्दिर थे। गुप्त काल में ही देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण तथा मन्दिरों में उनकी स्थापना किया जाना आरम्भ हो चुका था। भक्ति-आन्दोलन के आरम्भ हो जाने से पूर्व मध्य युग में मूर्तियों और मन्दिरों का निर्माण बहुत बड़ी संख्या में हुआ। भारतीय कला का जो उन्मुक्त विकास मन्दिरों के निर्माण में मिलता है, उसे एक बार भुला भी दें तो भी ये देवस्थान हमारे समाज तथा संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं।¹

मन्दिर के स्थापत्य एवं शिल्प से जीवन के प्रति अनास्था न होकर गहरी आस्था रहती थी। शिल्पी परम्परागत भावों का आश्रय लेकर मन्दिर की योजना तैयार करता, जिसमें अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करता था न कि नाम की ख्याति के लिए, यही कारण है कि रचयिता का नाम अज्ञात है। मन्दिर-निर्माण केवल आध्यात्मिक साधन तथा धार्मिक भावना का मूर्त रूप ही न था, बल्कि सामाजिक जीवन का केन्द्र भी था।² मन्दिरों की स्थापना तथा निर्माण से केवल वातावरण ही परिवर्तित न होता बल्कि आसपास की धार्मिक प्रवृत्तियों के जागरण में सहायता भी करता था। मन्दिर अपनी विशालता तथा दृढ़ता से उन विचारों को स्थायित्व प्रदान करता जिनका उद्देश्य आदर्शों तथा मूल्यों की रक्षा करना था। जिस भू-भाग में मन्दिर निर्मित होता,

उस क्षेत्र में बसी जनता की धार्मिक गतिविधि वहीं केन्द्रित हो जाती। आध्यात्मिक चिन्तन तथा जीवन के मूल्यों की सार्थकता अथवा जीवन-दर्शन का ज्ञान भक्तजन मन्दिर में प्रवेश कर ही प्राप्त कर सकते हैं।

धार्मिक दृष्टि से इन मन्दिरों का मुख्य योगदान भारतीयों की भक्ति-भावना और ईश्वर की उपासना को जीवित और प्रोत्साहित करना था। वे हिंदू देवी-देवताओं के प्रतिष्ठा-स्थल थे, तीर्थयात्राओं के केन्द्र स्थल थे तथा भजन-पूजन और कीर्तन-जैसी क्रियाओं द्वारा हिंदू-धर्म को जीवित रखने में सहायक थे। मुख्यतया उस काल में जबकि इस्लाम भारत में आक्रान्ता की दृष्टि से अपने को स्थापित कर रहा था। बड़े मन्दिर ही नहीं बल्कि गाँवों में स्थापित छोटे मन्दिर भी सम्पूर्ण देश में इस वाञ्छित उत्तरदायित्व की पूर्ति करने में सहायक थे। इस प्रकार पूर्व-मध्ययुग में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मध्ययुग में हिंदू-धर्म को जीवित बनाए रखने में भक्ति मार्ग और उसके माध्यम से बने हिंदू-मन्दिरों का अपूर्व योगदान रहा।^१

मन्दिर समाज के असहाय वर्ग के लिए अनाथालय तथा आवास की व्यवस्था करते थे। अंधे-लंगड़े, लूले, कोढ़ियों आदि के निर्वाह की व्यवस्था भी ये मन्दिर ही किया करते थे। प्रायः सभी मन्दिरों में भोजन-व्यवस्था होती थी। असहाय व्यक्तियों को मन्दिरों में निःशुल्क भोजन मिलता था। जो भी श्रद्धालु पुरुष यात्री इन मन्दिरों में जाते थे, उनको प्रसाद के साथ ठहरने की पूरी सुविधा मिलती थी। उनको वस्त्र, पूजन तथा दान के लिए सामग्री और आवश्यक धन भी ये मन्दिर उपलब्ध कराते थे और यात्रियों के यहाँ से इनके सेवक बाद में जाकर उधार दिए सामान का मूल्य ले आते थे।

विवाह, जन्म-मरण के संस्कार तथा ऐसे अन्य अवसरों पर जब आवश्यकता होती थी तो मन्दिरों से उनको बरतन, बिछावन, अन्न तथा द्रव्य आदि सामान भी मिल जाता था। ये मन्दिर अकाल, बाढ़ तथा अग्नि से हुए विनाश आदि जैसे संकटों के अवसरों पर दीर्घ काल के लिए भी अन्न या धन भी ऋण के रूप में देते थे। मन्दिर इस ऋण पर ब्याज भी लेते थे। व्यक्ति सुविधा होने पर अपनी शक्ति के अनुसार मन्दिर को अधिक-से-अधिक भेंट अर्पित कर सकता था।

उस काल में समाज में लूट-पाट तथा डकैतियाँ होती रहती थीं। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए चिन्तित रहता था। घर में गाड़कर रखने में भी सम्पत्ति की सुरक्षा निश्चित नहीं थी। अतः लोग अपनी सम्पत्ति को मन्दिर में रखते थे। अतः स्पष्ट है कि मन्दिर बैंकों के लॉकर का काम करते थे। मन्दिरों में गुप्त कोषागार होते थे और अधिकांश में गुम्बद के पोले भाग में बहुमूल्य रत्नों को रखने की व्यवस्था थी। मन्दिरों के अपने सशस्त्र रक्षक थे और चारों ओर परकोटा भी होता था। इन सब सुरक्षा साधनों के अतिरिक्त मन्दिरों को सुरक्षा की विशेष स्थिति प्राप्त थी। एक भारतीय हिंदू भले ही कितना बड़ा लुटेरा हो, किन्तु वह मन्दिरों को नहीं लूटता है। अतः जब तक विदेशी आक्रमणकारी नहीं आये, मन्दिरों को लूटे जाने का भय नहीं था। मन्दिरों को जनता की जो श्रद्धा प्राप्त थी, उसके कारण मन्दिर पर

आक्रमण करनेवाले को भी दस बार सोचना पड़ता था। मन्दिरों की इस सुरक्षात्मक स्थिति का लाभ जनता को प्राप्त होता था। लोग अपना बहुमूल्य सामान मन्दिरों में रखते थे। मन्दिरों में इन वस्तुओं का व्यवस्थित रूप से लिखित विवरण रखा जाता था। सामान जितने समय तक मन्दिर में रहता था, उसका जो मूल्य होता था उसके अनुसार मन्दिर को भेंट अर्पित करनी पड़ती थी।

मन्दिरों को राजा तथा धनवान् लोगों द्वारा सोना, चाँदी, रत्न, आभूषण तथा भूमि दान में दी जाती थी। आम जनता भी श्रद्धावन्त हो मन्दिरों को भेंट के रूप में धन-दौलत देती थी। उदाहरण के लिए चोल राजा राजराज तथा राजेन्द्र चोल ने स्वर्ण मुद्रा तथा आभूषणों के रूप में अतुल धनराशि मन्दिरों को दान में दी थी। अतः मन्दिरों के पास बहुत बड़ी मात्रा में धन-दौलत जमा हो गयी। भूमि से प्राप्त होनेवाली आय के अतिरिक्त कुछ प्रशासकीय कार्य भी इन्हें प्राप्त हुए, इस प्रकार दक्षिण भारत में बड़े-बड़े मन्दिरों की स्थिति सामन्तों या मध्यकालीन यूरोप के चर्च की भाँति हो गई थी।¹

धनराशि की वृद्धि के साथ मन्दिरों के कार्यक्षेत्र भी बढ़ गए। मन्दिरों से व्यापारियों तथा कृषकों के संबंध स्थापित हुए। ऋण के लेन-देन का कार्य भी होने लगा। मन्दिर ग्रामसभाओं को ब्याज पर धन, कर्ज देते थे। मन्दिर व्यापारिक श्रेणियों को भी ब्याज पर कर्ज देते थे।

मन्दिरों को जो धनराशि दान में दी गई थी, इसके परिणामस्वरूप इसके आंतरिक संगठन में भी परिवर्तन हुआ। मन्दिर के विभिन्न कार्यों का संपादन करने के लिए एक समिति बनाई गई थी। दान में मिली भूमि को बटाई पर दिया जाता था, इससे भी आय होती थी। दान में मिले गाँवों की पैदावार का राजकीय भाग मन्दिरों की आय हो जाता था। इस प्रकार मन्दिर एक ज़मीन्दार बन गए थे। चोलकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि मन्दिरों को दण्ड के रूप में धन वसूल करने का अधिकार था। इस प्रकार शासन एवं दण्ड-संबंधी करों को वसूल करने का अधिकार देने से मन्दिरों को शासन-संबंधी अधिकार भी मिल गये। इसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय सत्ता के दुर्बल होने पर मन्दिरों के इन अधिकारों ने सामन्ती व्यवस्था को जन्म दिया। मन्दिर राजनैतिक शक्ति के केन्द्र हो गए। मन्दिरों ने कृषि, व्यापार तथा उद्योगों की उन्नति के लिए धन देकर देश के आर्थिक विकास में योगदान दिया।

मन्दिरों के आर्थिक साधनों की वृद्धि होने के साथ-साथ मन्दिरों में कार्यरत कर्मचारियों की संख्या में भी वृद्धि हुई। तंजौर मन्दिर के अभिलेख से पता चलता है कि मन्दिरों की सेवा के लिए 400 गायिकाएँ, नर्तक, गायक, दुन्दभीवादक, दर्जी, स्वर्णकार आदि कर्मचारी नियुक्त किए गए थे। कथावाचक तथा कीर्तन करनेवाले भी मन्दिरों के वैतनिक कार्यकर्ता बनाए जाते थे।

मन्दिरों से सम्बद्ध कार्यों से अनेक व्यक्तियों की जीविका चलती थी। मन्दिरों में

पूजार्थ पुष्प, दीप, धूप, गन्ध आदि वस्तुओं को उपासक, देवता को अर्पित करने के लिए खरीदते थे। पर्वोत्सवों तथा विशेष तिथियों पर जन-समुदाय उमड़ पड़ता था, अतः पुष्प, गन्ध आदि के विक्रेता काफी धनोपार्जन करते थे। व्यापारीगण इन अवसरों पर सामग्रियों के विक्रय से अनगिनत पैसे प्राप्तकर आय में वृद्धि करते थे।

मन्दिरों में धन की अधिकता हो जाने से कभी-कभी उसका दुरुपयोग भी हुआ, चाहे वह देवदासियों की संख्या में वृद्धि के रूप में हुआ हो अथवा पुजारी, कर्मचारी आदि की संख्या में वृद्धि हो जाने से। यह वर्ग अकर्मण्य और शोषण करनेवाला वर्ग बन गया। इस प्रकार के धन व वैभव के संग्रह से पुजारी का प्रभुत्व बढ़ता गया और वह कई मन्दिरों का स्वामी बन गया।

अनेक मन्दिर शिक्षा के केन्द्र भी थे। उन्होंने शिक्षा-व्यवस्था का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया जिसके कारण मन्दिरों के साथ पाठशालाओं और विद्यालयों का भी निर्माण हुआ। दक्षिण भारत में मन्दिरों ने इस दिशा में अच्छी भूमिका निभायी। राजेन्द्र चोल के समय के एन्नरियम-अभिलेख से ज्ञात होता है कि यहाँ से लगा हुआ एक विद्या मन्दिर था जिसमें ग्रामसभा ने मन्दिर को 300 एकड़ भूमि दान में दी थी जिससे 340 विद्यार्थियों की पढ़ाई का खर्चा चलता था। यहाँ पर विद्यार्थियों तथा अध्यापकों का सारा व्यय मन्दिरों के द्वारा चलता था। इन विद्यालयों में मुख्यतः संस्कृत-भाषा और धर्मग्रन्थों के पढ़ने की व्यवस्था की जाती थी। इस कारण वे भारतीय धर्म और संस्कृति की सुरक्षा और विस्तार में सहायक थे।

भारतीय समाज को एकता प्रदान करने में हिंदू धर्म का बहुत बड़ा भाग रहा है। उस काल में भी मन्दिरों के माध्यम से उसने इस कार्य की पूर्ति की। मन्दिर धार्मिक तथा सामाजिक गोष्ठियों व सामाजिक समस्याओं का हल निकालने के भी स्थल थे, मुख्यतः गाँवों में।

सांस्कृतिक दृष्टि से मन्दिरों के निर्माण ने भारतीय कला के विकास में सहयोग दिया। मन्दिरों का निर्माण कई वर्षों तक चलता रहा जिससे अनेक शिल्पकारों को रोज़गार मिला व स्थापत्य-कला का विकास हुआ। अनेक मन्दिरों की दीवारों पर भित्ति-मूर्तियाँ बनाई गईं जिससे शिल्पकला की उन्नति हुई। मन्दिरों ने नृत्य व संगीत-कला को भी प्रोत्साहन दिया। तंजौर के शिव मन्दिर के अभिलेख से ज्ञात होता है कि यहाँ पर देवदासियों, नर्तकों और गायकों के लिए भूमि तथा आवास की व्यवस्था थी।

इस प्रकार मन्दिरों ने इस काल में धर्म, समाज, संस्कृति और कला को भी प्रभावित किया। भारत की आर्थिक स्थिति पर भी उसका प्रभाव पड़ा। निःसंदेह मन्दिर धर्म की रक्षा, समाज की एकता और संस्कृति के प्रसार में सहायक सिद्ध हुए।

सन्दर्भ :

1. दुबे, सत्यनारायण, *भारतीय सभ्यता व संस्कृति*, पृ० 184
2. उपाध्याय, डॉ० वासुदेव, *प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर*, पृ० 343
3. शर्मा, एल०पी०, *प्राचीन भारत*, पृ० 336
4. दुबे सत्यनारायण, *भारतीय सभ्यता व संस्कृति*, पृ० 185



4.

श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में योगदान

डॉ० दिनेशचन्द्र खण्डेलवाल

प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
उज्जैन

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्याम महाकाले ओंकारममलेश्वरम् ॥ 1 ॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्याम भीमशंकरम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारूकावने ॥ 2 ॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गोमतीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुसृणेशं च शिवालये ॥ 3 ॥
एतानि ज्योतिर्लिंग सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्म कृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥ 4 ॥

भ

गवान शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंग हैं। ज्योतिर्लिंग का तीसरा रूप महाकालेश्वर है। यह मध्यप्रदेश राज्य के उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर स्थित है। पहला ज्योतिर्लिंग सोमनाथ, गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्र में समुद्र किनारे, दूसरा ज्योतिर्लिंग श्रीमल्लिकार्जुन मद्रास राज्य के कृष्णा जिले में, कृष्णा नदी के निकट श्रीशैल पर्वत पर स्थित है।

मध्यप्रदेश के खण्डवा जिले में नर्मदा नदी के तट पर चतुर्थ ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर स्थित है। यहाँ ओंकारेश्वर तथा अमलेश्वर नामक दो पृथक्-पृथक् शिवलिंग हैं। परन्तु दोनों

एक ही ज्योतिर्लिंग के दो स्वरूप माने गए हैं। पाँचवें ज्योतिर्लिंग केदारेश्वर या केदारनाथ हिमालय के केदार नामक स्थान पर मन्दाकिनी नदी के किनारे स्थित है। वर्तमान में यह स्थान उत्तराखण्ड राज्य के अंतर्गत आता है। छठे ज्योतिर्लिंग भीमशंकर नासिक (महाराष्ट्र) के समीप भीमा नदी के किनारे स्थित है, परन्तु कुछ लोगों की मान्यता है कि नैनीताल जिले के उज्जैनक नामक स्थान में स्थित विशाल शिव मन्दिर भीमाशंकर ज्योतिर्लिंग है।

श्रीकाशी विश्वनाथ सातवें ज्योतिर्लिंग के रूप में काशी (उत्तरप्रदेश) में गंगा नदी के किनारे प्रतिष्ठित है। आठवें ज्योतिर्लिंग के रूप में त्र्यम्बकेश्वर महाराष्ट्र के नासिक जिले में गोदावरी नदी के तट पर तथा नवम ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथ बिहार के देवघर में स्थित है। परन्तु कुछ लोगों की मान्यता है कि दक्षिण हैदराबाद के पास परभनी नामक जंक्शन से परली स्टेशन के समीप परली गाँव के निकट वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग स्थित है।

दसवें ज्योतिर्लिंग नागेश्वर गुजरात के द्वारकाधाम के निकट विराजित है, परन्तु कोई-कोई दक्षिण हैदराबाद के औढ़ा गाँव में स्थित शिवलिंग को तथा कुछ अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड) से 17 मील उत्तर-पूर्व में स्थित योगेश या जागेश्वर को नागेश्वर ज्योतिर्लिंग मानते हैं। ग्यारहवें अवतार श्रीरामेश्वरम् ज्योतिर्लिंग मदुरै (तमिलनाडु) के समीप रामनाथस्वामी नामक स्थान पर समुद्र तट पर तथा बारहवें ज्योतिर्लिंग घृणेश्वर, महाराष्ट्र के दौलताबाद स्टेशन, बेरूलगाँव के पास, एलोरा की गुफाओं के निकट स्थित है। परन्तु कुछ लोग मानते हैं कि बारहवें ज्योतिर्लिंग घृणेश्वर नाम से शिवर, राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले में स्थित है।

महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश राज्य के प्राचीन एवं धार्मिक नगर अवन्तिका (उज्जैन) में स्थित है। मोक्षदायिका सप्तपुरियों में अवन्तिका भी एक है।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः ॥

उज्जैन एक धार्मिक एवं शैक्षणिक केन्द्र के रूप में प्राचीन काल से विख्यात है। महाकालेश्वर मन्दिर की व्यवस्था वर्तमान समय में जिलाध्यक्ष के निर्देश में श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा सञ्चालित एवं नियन्त्रित होती है। श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा नगर की प्राचीन धार्मिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक परम्परा के संवर्धन एवं संरक्षण के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में निम्नानुसार कार्य किया जा रहा है :

सामाजिक क्षेत्र में योगदान

अ. शैक्षणिक क्षेत्र में योगदान— श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा श्री महाकालेश्वर वैदिक प्रशिक्षण एवं शोध-संस्थान सञ्चालित किया जा रहा है। इसके प्रमुख उद्देश्य वेदों एवं अनुवर्ती साहित्य का अध्ययन-अध्यापन एवं प्रशिक्षण, प्राचीन उपासना-पद्धति का संरक्षण, वैदिक साहित्य का प्रचार-प्रसार तथा शैव एवं शाक्त दर्शन पर शोध करना है।

संस्थान में विद्यार्थियों को निःशुल्क उत्कृष्ट शिक्षा के साथ निःशुल्क आवास, कपड़ा एवं भोजन की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाती है। संस्थान में उत्कृष्ट एवं समृद्ध पुस्तकालय है। विद्यार्थियों को शिक्षा उपरांत रोज़गार के अनेक अवसर उपलब्ध होते हैं।

संस्थान द्वारा अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त प्रशिक्षण, संगोष्ठी, परिचर्चा एवं कार्यशाला का आयोजन किया जाता है। इसके अंतर्गत 26 से 28 दिसम्बर, 2012 के मध्य अखिल भारतीय सामार्चन समारोह आयोजित किया गया। समारोह में वेद, वेदों में आयुर्विज्ञान, नारी का स्थान, मानवीयता, पर्यावरण, वेद एवं व्याकरण, यज्ञों की वैज्ञानिकता, महाकाल की परम्परा-जैसे विषयों पर शोधपत्रों का वाचन किया गया। समारोह में श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा पं० श्री गोपाल गणेश सामक (गुरुजी) को महाकाल अलंकरण सम्मान के अंतर्गत एक लाख रुपये का नकद पुरस्कार एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया गया। श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा 'महाकाल अलंकरण सम्मान' प्रतिवर्ष देने की योजना है।

संस्थान द्वारा महाकाल सहित द्वादश ज्योतिर्लिंगों पर निरन्तर शोध-कार्य करने हेतु 2 शोध सहायकों की नियुक्ति एवं इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा के लिए शोध-छात्रवृत्ति स्वीकृत करने की योजना है।

ब. जनस्वास्थ्य के क्षेत्र में योगदान— संस्थान द्वारा प्राथमिक स्वास्थ्य-परीक्षण हेतु निःशुल्क मेडिकल वैन सञ्चालित की जाती है। यह वैन मंगलवार से शुक्रवार, प्रातः 10:00 से दोपहर 03:00 बजे तक नगर की गंदी एवं गरीब बस्तियों में भ्रमणकर एवं दोपहर 03:00 से 06:00 बजे तक संस्थान-परिसर में प्राथमिक स्वास्थ्य-परीक्षण एवं दवा-वितरण करती है। यह मेडिकल वैन सोमवार एवं शनिवार को पूरे समय संस्थान-परिसर में स्वास्थ्य-परीक्षण एवं दवा-वितरण करती है।

स. अन्नक्षेत्र का संचालन— श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा सुबह 11:00 से रात 09:00 बजे तक निःशुल्क भोजन का अन्नक्षेत्र सञ्चालित किया जाता है। यह अन्नक्षेत्र सभी के निःशुल्क है। इस हेतु भोजन-पर्ची का वितरण दर्शनार्थियों के लिये मन्दिर-परिसर से तथा धर्मशाला के आवासियों के लिये धर्मशाला के काउंटर से किया जाता है।

अन्नक्षेत्र का सम्पूर्ण व्यय श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा किया जाता है। परन्तु कोई भी व्यक्ति 21,000/- दान देकर अपने नाम से एक दिवस का निःशुल्क भोजन वितरित करवा सकता है। साथ ही कोई भी व्यक्ति अन्नक्षेत्र के लिए अपनी इच्छानुसार सामग्री दान भी कर सकता है।

द. अन्य योगदान— संस्थान निःशुल्क एम्बुलेंस सेवा तथा निःशुल्क शव-वाहन का सञ्चालन करता है। संस्थान के कर्मचारियों के लिये 'कर्मचारी भविष्य निधि' एवं कर्मचारियों

तथा पुरोहितों के लिए मेडिकलेम सुविधा उपलब्ध है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में योगदान

अ. उमा सांझी महोत्सव— यह महोत्सव प्रतिवर्ष अश्विन कृष्ण एकादशी से अश्विन शुक्ल द्वितीया तक किया जाता है। इसके अंतर्गत भजन संध्या, कथा, समूह नृत्य, नाटिका, रास आदि का आयोजन होता है। रंगोली प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती है। इस अवसर पर वर्ष में एक बार निकलनेवाली पार्वतीजी की सवारी भी निकाली जाती है।

ब. श्रावण-महोत्सव— यह महोत्सव श्रावण मास के प्रत्येक रविवार को आयोजित होता है। इसमें गायन, वादन एवं नृत्य-संबंधी शास्त्रीय महोत्सव होता है, जिसमें देश के राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कलाकारों की प्रस्तुतियाँ होती हैं।

स. सवारियाँ— श्रावण मास में प्रत्येक सोमवार को एवं भाद्रपद मास के प्रथम एवं द्वितीय सोमवार को भगवान् महाकाल नगर-भ्रमण को निकलते हैं। भाद्रपद के द्वितीय सोमवार को शाही सवारी निकलती है। कार्तिक, मार्गशीर्ष के प्रत्येक सोमवार को एवं विजयदशमी (दशहरा) को सवारी निकलती है।

द. हरिहर मिलन— वर्ष में एक बार वैकुण्ठ चतुर्दशी को रात 11 बजे बाबा महाकाल द्वारकाधीश से मिलने गोपाल मन्दिर जाते हैं। बाबा महाकाल द्वारकाधीश के लिये बिल्वपत्र की माला लेकर जाते हैं एवं द्वारकाधीश बाबा महाकाल को तुलसी की माला भेंट करते हैं।

संस्थान द्वारा महाशिवरात्रि के अवसर पर 105 वर्ष से कथा एवं हरिकीर्तन का कार्यक्रम एवं होली पर होलिका दहन कार्यक्रम भी आयोजित किया जाता है।

श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति द्वारा दान में प्राप्त राशि से मन्दिर परिसर की सुरक्षा एवं विकास के साथ, इस प्राचीन नगर की सांस्कृतिक परम्पराओं से संबंधित आयोजन एवं सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के कार्य के साथ ही तथा सामाजिक दायित्वों का निर्वहन भी किया जा रहा है।

सुझाव

1. भारतवर्ष में तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण विकास-योजनाओं का अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा है। 1961 में देश की जनसंख्या 43,92,34,771 थी। इस दशक की जनसंख्या-वृद्धि दर 21.64 प्रतिशत थी। इस तरह 1951-'61 के दशक में जनसंख्या में कुल 7,81,46,681 व्यक्तियों की वृद्धि हुई। 2011 की जनगणना के समय जनसंख्या-वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत है। परन्तु 2001 से 2011 के दशक में कुल जनसंख्या में 18,14,55,986 व्यक्तियों की वृद्धि हुई है। इस तरह देश की जनसंख्या-वृद्धि दर में कमी होने के बाद भी संख्यात्मक कुल जनसंख्या-वृद्धि 1961 की तुलना में 2011 में अधिक

है। श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति को जनसंख्या-वृद्धि रोकने के लिये होर्डिंग्स एवं अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से कार्य करना चाहिए। महाकाल मन्दिर में दर्शन के लिए देश के सभी क्षेत्रों एवं सभी वर्गों के लोग आते हैं। अतः इन प्रयासों के सकारात्मक परिणाम की अपेक्षा की जा सकती है।

2. महाकाल मन्दिर परिसर के आसपास के क्षेत्र में भिक्षावृत्ति की जाती है। इसको हतोत्साहित करने के प्रयास करना चाहिये। विशेषकर बच्चों के भीख मांगने पर कठोरता से रोक लगानी चाहिये।
3. श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति को महाकाल मन्दिर के महत्त्व एवं वर्षभर आयोजित किये जानेवाले कार्यक्रमों के कारण, उनके महत्त्व एवं कार्यक्रम की रूपरेखा से संबंधित एक पुस्तिका प्रकाशित करवाना चाहिये, ताकि श्रद्धालुओं को प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हो सके।

सन्दर्भ :

1. संक्षिप्त शिवपुराण, हनुमान प्रसाद पोद्दार (सं०), गीताप्रेस, गोरखपुर
2. http://en.wikipedia.org/wiki/Mahakaleshwar_Jyotirlinga/10-10-2013/19.17.46
3. <http://en.wikipedia.org/Jyotirlinga/10-10-2013/18.55.35>
4. <http://www.censusindia.gov.in/11-10-2013/08.35.54>
5. <http://www.censusindia.gov.in/2011-prov/indiaatglance.html/11-10-2013/08.45.26>
6. <http://www.censusindia.gov.in/2011prov-resulth/datafiles/india/finalPPT2011chapter3.pdf/11-10-2013/09.06.14>
7. श्रीमहाकालेश्वर मन्दिर प्रबन्ध समिति की जनसम्पर्क अधिकारी श्रीमती गौरी जोशी द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारी।





5.

राष्ट्रीय आन्दोलन व चेतना में मन्दिरों की भूमिका

प्रो० बी०एल० डावर

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय महाविद्यालय, थांदला

राष्ट्रीय आन्दोलन व चेतना के आधार तत्त्वों में सर्वोपरि है हमारी राष्ट्रीय संस्कृति, हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूल्य, हमारी राष्ट्रीय विभूतियाँ तथा हमारी साधना के तपस्थल मन्दिर, जिनके बिना हमारी राष्ट्रीयता का बोध अधूरा है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में असंख्य देशभक्तों के अनन्य बलिदान के फलस्वरूप अंत में स्वाधीनता के रूप में परिणित हुआ।

किसी भी राष्ट्र को स्वाधीन कराने में सामाजिक एवं धार्मिक चेतना को नगण्य नहीं किया जा सकता। राष्ट्रीय आन्दोलन एवं चेतना में धार्मिक गतिविधियों, विशेषकर मन्दिरों की अहम भूमिका रही है।

भारत के मन्दिरों में भारत के धर्म, अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति, परम्परा, पुरातत्त्व, पर्यटन, राजन्य और सामान्य जनजीवन की खुली झॉंकियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। मन्दिर राष्ट्रीय चेतना में सम्पूर्ण देश की धड़कन बन जाते थे। देश की रक्षा के लिये, राष्ट्रीयता के गठन के लिये भारतीय मन्दिरों ने यहाँ पर सदा स्वतंत्रता की मशाल जलाई है।

राष्ट्रीय आन्दोलन में मन्दिरों ने अपनी विशिष्ट संस्कृति, सांस्कृतिक सम्पदा, नैतिक प्रतिमान, धार्मिक मान्यताएँ तथा निर्धारित भौगोलिक क्षेत्रों के अतिक्रमण के विरुद्ध इन्हीं मन्दिरों से समय-समय पर आवाज उठायी। भारतीय समाज में मन्दिरों का महत्वपूर्ण स्थान है।

मन्दिरों में भक्तिभाव के माध्यम से साधक भगवान् के साथ साक्षात्कार करता है। भक्ति की भावना जनकल्याण से ओत-प्रोत होती है।

हमारे देशवासियों के राजधर्म और राष्ट्रधर्म-संबंधी विचारों और विश्वासों के निर्माण में निःसन्देह मन्दिरों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बहुत बड़ा योगदान रहा है। भारत में मन्दिरों द्वारा सुधार-कार्यक्रमों का सूत्रपात हुआ। इसी जागरण को धार्मिक और सामाजिक पुनरुत्थान नाम दिया जाता है। मन्दिरों में सामाजिक आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की जाती है, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण है ब्राह्म समाज, आर्य समाज, श्रीनारायण धर्मपरिपालन योगम्, श्रीराम मन्दिर संगठन, हरिजन सेवक संघ आदि, जहाँ से राष्ट्रीयता की शुरुआत हुई है।

धार्मिक कर्मकाण्ड और अंधविश्वासों के विरोध में आदिकाल से आन्दोलन होते आये हैं। मन्दिर केवल आस्था के साधन ही नहीं हैं, अपितु राष्ट्रीय चेतना के केन्द्र भी रहे हैं। मन्दिरों से हमें त्याग और बलिदान के साथ अपने राष्ट्र की उन्नति, सहिष्णुता, उदारता, महानता तथा नैतिकता की सीख मिलती है। धार्मिक समन्वय तो भारतीय संस्कृति की मूल प्रेरणा रही है। आज भी भारत के देवालय सहिष्णुता और उदारता के परिचायक हैं। यह भारतीय समन्वयवादी शैली का महान् रूप ही है।

भारत की राष्ट्रीय चेतना में उज्जैन का महाकालेश्वर, कीर्ति मन्दिर; मंदसौर का पशुपतिनाथ आदि मन्दिरों ने आदि अक्षय स्रोत बनकर इस पुण्यभूमि को सिञ्चित किया है। इन मन्दिरों ने प्रत्येक भारतीय के हृदय को उस आदर्श से भरकर उन्होंने भारतीय इतिहास का देदीप्यमान सूर्य और अटल ध्रुवतारा बनाया है।

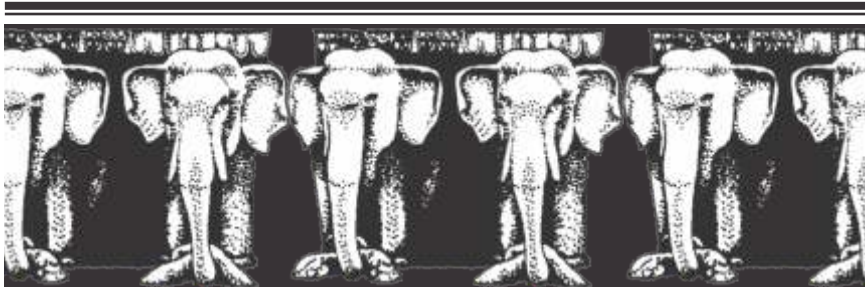
मन्दिरों द्वारा प्रदत्त धार्मिक जीवन का सर्वोपरि सत्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जाति को वह पूर्ण स्वतंत्रता और वे सुविधाएँ प्राप्त हों जिनमें वह अपनी अनुभूति और अपनी नैसर्गिक बुद्धि के अनुसार अपने जीवन का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर सकें और वह सत्य है - पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता।

हमारी कलाकृतियाँ हमारे राष्ट्र गौरव के अनुरूप ही भव्य होने के साथ ही विश्व के सर्वांगीण जीवन को प्रतिबिम्ब करती हैं। इसी कारण वाणभट्ट में उज्जयिनी वर्णन में 'दर्शिता विश्वरूपा' कहा है। मन्दिरों में विराजित भगवान् श्रद्धा व संवेदशनीलता का अनुपम उदाहरण हैं।

पराधीनता से पूर्व व पश्चात् मन्दिर राष्ट्रीयता की मिशाल थे। यहाँ न केवल श्रद्धा वरन् संस्कृति व सभ्यता का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण आवश्यक है। राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका निर्माण मन्दिरों के प्रागण में ही हुआ करता था। जनान्दोलन करने के लिए मन्दिरों के नाम से भीड़ उमड़ जाया करती थी। यह अन्य कारणों से कदापि एकत्रित नहीं की जा सकती थी। यहाँ आने पर उसकी आस्था राष्ट्र व राष्ट्र की धरोहर थी। राष्ट्र के संरक्षण व संवर्धन की यहीं कसमें खायी जातीं।

आधार-ग्रन्थ :

1. वामन काणे, पाण्डुरंग, धर्मशास्त्र का इतिहास
2. गुप्त, परमेश्वरीलाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख
3. तिवारी, आचार्य पूनमचन्द्र, खजुराहो
4. प्रसाद, राजेन्द्र, साहित्य शिक्षा और संस्कृति
5. गौतम, एन०सी०, राष्ट्र गौरव





6.

सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान का प्रतीक मोहनखेड़ा तीर्थ

डॉ० जीवनबाला लुणावत

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन

कि सी समय मालवा के परमारों की राजधानी रहा और वर्तमान मध्यप्रदेश के धार जिले की सरदारपुर तहसील में राजगढ़ से तीन किमी० की दूरी पर स्थित मोहनखेड़ा तीर्थ देवगुरु व धर्म की त्रिवेणी है। जैन सम्प्रदाय के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को समर्पित इस तीर्थ की स्थापना सन् 1884 ई० में त्रिस्तुतिक पंथ के प्रवर्तक पूज्य संत राजेन्द्रसूरीश्वर जी ने करवायी। 1906 ई० में राजगढ़ में उनके देवलोकगमन के पश्चात् मोहनखेड़ा में उनका अग्नि-संस्कार किया गया और यह क्षेत्र उनकी तीर्थस्थली के रूप में स्थापित हो गया। आज गुरुभक्तों की असीम श्रद्धा-भक्ति से मोहनखेड़ा महातीर्थ में परिवर्तित हो गया है। कभी बंजारों की बस्ती रहा खेड़ा आज का मोहनखेड़ा महातीर्थ, सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान का केन्द्र बना हुआ है। राजगढ़ से यहाँ जाने के लिये कभी कच्ची पगडण्डी हुआ करती थी। क्रमशः विकास ने इसे विशाल संस्था का रूप से दिया है।

वर्तमान में मोहनखेड़ा तीर्थ में विशाल मन्दिर परिसर है, जिसमें मूलनायक आदिनाथ भगवान् हैं। शंखेश्वर पार्श्वनाथ, चिन्तामणि पार्श्वनाथ तथा अन्य तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। तीर्थंकरों के गणधरों, चक्रेश्वरी, गोमुखयक्ष इत्यादि की मूर्तियाँ हैं।

आरम्भ में मन्दिर में 41 जिन-मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई थी। पश्चात् सन् 1935 में

दो मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ। द्वितीय जीर्णोद्धार एक प्रकार से तीर्थ का कायाकल्प था, उसे नवीन स्वरूप प्राप्त हुआ। आचार्य विद्याचन्द्र सूरेश्वर इस जीर्णोद्धार के प्रेरणास्रोत थे। आपके प्रयास से तीर्थ में अनेकानेक कार्य सम्पन्न हुए।

मुख्य मन्दिर के बायीं ओर आदिनाथ भगवान् की ही 16 फीट, 1 इंच ऊँची श्यामवर्णी प्रतिमा ध्यान की मुद्रा में खड़ी हुई है।

गुरु राजेन्द्रसूरिजी के देवलोकगमन के लगभग 17-18 वर्षों बाद यहाँ उनके समाधि-मन्दिर का निर्माण किया गया। वर्तमान में मोहनखेड़ा महातीर्थ गुरुदेव के भव्य समाधि-मन्दिर के कारण ही धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक धरोहर बन चुका है। सन् 2006 में श्री राजेन्द्रसूरिजी के निर्वाण-शताब्दी समारोह के अवसर पर इसे स्वर्ण मन्दिर का स्वरूप दिया जाने लगा। वर्तमान में मन्दिर का सम्पूर्ण गर्भगृह स्वर्ण से आच्छादित है, दीवारों पर आकर्षक कलात्मक स्वर्ण-पत्थरों पर की गई नक्काशी में गुरुजी के जीवन का चित्रण है। ऊपर पूरी छत पर नवग्रहों का नौ अलग-अलग खण्डों में अद्भुत अंकन है, मूर्ति की वेदिका और पद्म पत्रांकित प्रभामण्डल भी स्वर्णजड़ित है। तीनों द्वार चाँदी के बने हैं। मूलनायक आदिनाथजी का मुख्य मन्दिर भी स्वर्णमय हो रहा है। सम्पूर्ण तीर्थ में लगभग 15 किलोग्राम स्वर्ण और 300 किलोग्राम से अधिक चाँदी का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त तीर्थ में संगमरमर में सुन्दर नक्काशी देखी जा सकती है, यह स्थापत्य-कला का वर्तमान उदाहरण है, लगभग माउण्ट आबू जैसा। महातीर्थ में कलात्मक चाँदी का रथ, विभिन्न रत्नों की मूर्तियाँ व स्वर्ण रत्नजड़ित गुरु महाराज की आंगी (मूर्ति को सुसज्जित करने के लिये) है। सन् 2000 के पश्चात् श्री मोहनखेड़ा तीर्थ क्षेत्रों में ही निर्मित 'श्री राजेन्द्र जैन तीर्थ जयन्तसेन म्यूजियम' यहाँ का एक विशिष्ट आकर्षण है। णमोकार मंत्र के आधार पर नवखण्डोंवाले इस संग्रहालय में जैन सम्प्रदाय, दर्शन व तीर्थों, जैन संतों, सतियों व महापुरुषों की अद्वितीय, लुभावनी झाँकियाँ बनी हुई हैं। ये सभी यहाँ की समृद्ध कलात्मक धरोहर हैं।

मन्दिर-प्रबन्धन का कार्य श्रीआदिनाथ राजेन्द्र जैन श्वेताम्बर पेढ़ी (ट्रस्ट), श्री मोहनखेड़ा तीर्थ, राजगढ़ द्वारा होता है। पेढ़ी के प्रबन्ध व देखरेख में यहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक व मानव तथा प्राणीमात्र की सेवा की गतिविधियाँ निरन्तर सञ्चालित होती रहती हैं, जो मालवा क्षेत्र की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

संतद्वय श्री यतीचन्द्रसूरिजी व श्री विद्याचन्द्रजी की महती इच्छा थी कि यह महान् तीर्थ धार्मिक आस्था के साथ-साथ विद्यार्जन का भी केन्द्र बने। उन्हीं के प्रयासों से यहाँ शैक्षणिक व्यवस्था की गयी। वर्तमान में यहाँ शिक्षा के लिये 3 स्कूल सञ्चालित होते हैं।

1. श्रीआदिनाथ राजेन्द्र जैन गुरुकुल, जो धार्मिक शिक्षा का केन्द्र है, सन् 1979 में आरम्भ हुआ। आज इसके लिये पृथक् भवन 'ज्ञानशाला' है, जो सन् 2009 में निर्मित हुआ। यहाँ 60-65 विद्यार्थी रहते हैं, इनके निःशुल्क आवास व भोजन की व्यवस्था है। 100-150

रूपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है।

2. लौकिक शिक्षा के लिए आरम्भ में बच्चों को राजगढ़ भेजा जाता था। 1986 से श्री मोहनखेड़ा में ही शैक्षणिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलने लगी। नर्सरी से 5वीं तक के बच्चों का अलग विद्यालय राजेन्द्र विद्या वाटिका है। अंग्रेजी-माध्यम भी है।
3. 'राजेन्द्र विद्या हाईस्कूल' छठी से 10वीं तक के बच्चों का अलग विद्यालय है। कुल मिलाकर 800-900 बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं।

शैक्षणिक गतिविधियों के संपादन हेतु 'राजेन्द्र विद्या समिति' कार्यरत है जो सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था देखती है। इसमें शिक्षाविद् भी होते हैं। गरीब व असहाय बच्चों के लिये निःशुल्क शिक्षण की व्यवस्था है। गुरुकुल के बच्चों का अपना स्काउट दल व बैण्ड भी है। बच्चों को स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों, खेलकूद व धार्मिक यात्राओं का भी आयोजन होता है। शोध-कार्य के लिये 'श्री गुरु राजेन्द्र विद्या शोध संस्थान' व एक पुस्तकालय भी है जो 1986 में स्थापित हुआ। धार्मिक साहित्य के प्रकाशन के लिये 'श्री राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय' है।

मानव-सेवा और प्राणीमात्र की सेवा ही ईश्वर की सेवा व सच्चा धर्म है— इसे सार्थकता प्रदान करती है इस क्षेत्र में मानव और पशु-पक्षियों हेतु सञ्चालित संस्थाएँ, जिनमें चिकित्सालय, गोशाला, पक्षी-विहार और गरीब व बेसहारा महिलाओं के लिए 'श्री ऋषभ सिलाई केन्द्र' आदि। इस केन्द्र में महिलाओं को सिलाई-कढ़ाई, बुनाई, मेंहदी एवं दस्तकारी का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस केन्द्र को मध्यप्रदेश शासन के महिला एवं बाल विकास मंत्रालय से मान्यता एवं सहयोग प्राप्त है। मध्यप्रदेश शासन की तत्कालीन उपमुख्यमंत्री श्रीमती जमुनादेवी का इस केन्द्र को सशक्त बनाने में विशेष सहयोग रहा।

मानव सेवा के लिये मोहनखेड़ा व राजगढ़ में 'श्री गुरु राजेन्द्र मानव सेवा मन्दिर ट्रस्ट', जो 15 अगस्त, 1989 को स्थापित हुआ, मोहनखेड़ा में निरन्तर शिविरों का आयोजन करता रहता है, जिनमें कटे-फटे होठ एवं अन्य रोग-निदान शिविर, विकलांग-सहायता शिविर, रक्तदान-शिविर, प्राकृतिक आपदाओं के समय राहत शिविर आदि हैं। यह क्षेत्र आदिवासी बहुल है। अतः आदिवासियों में शाकाहार-प्रचार व व्यसन-मुक्ति हेतु भी शिविरों का आयोजन होता है। आसपास के ग्रामवासियों और आदिवासियों के लिए शिविर निःशुल्क होते हैं, जहाँ अन्य सुविधाएँ भी होती हैं। समय-समय पर विशेषज्ञ चिकित्सक भी यहाँ बुलाये जाते हैं। मानव जीवन में रोशनी फैलाने का अत्यधिक महत्वपूर्ण कार्य यहाँ के 'श्री राजेन्द्रसूरी नेपाजी लखमाजी नेत्र चिकित्सालय' द्वारा किया जाता रहा है, जिसका लोकार्पण 2002 में हुआ, इसमें 4 जनरल वार्ड और 10 प्राइवेट वार्ड हैं। दो एकड़ क्षेत्र में फैला यह चिकित्सालय दो मंजिला है। यहाँ आधुनिक तकनीक के साथ ही सारी व्यवस्थाएँ हैं व अनुसन्धान की भी सुविधाएँ हैं। यह चिकित्सालय यहाँ का विशेष आकर्षण केन्द्र है। यहाँ प्रतिमाह नयनतारा नेत्र शिविर का

आयोजन होता है, जिसमें 5,500 से अधिक ऑपरेशन किये जा चुके हैं।

मोहनखेड़ा महातीर्थ निरीह और मूक पशु-पक्षियों का भी आश्रय स्थल है। गायों के आश्रय व सेवा-सुश्रूषा के लिए यहाँ 1972 में गोशाला स्थापित की गयी है। 'श्री राजेन्द्रसूरिजी कुन्दन गौशाला' 5 एकड़ भूमि में फैली है। यहाँ लगभग 1,500 गायें हैं, गायों के लिये घास का गोदाम, पानी के लिये विशाल सुन्दर प्याऊ बना है व चिकित्सा की सम्पूर्ण व्यवस्था है।

पशुओं के लिये 35 फीट ऊँचा पक्षी-विहार बना है, यदि पक्षी यहाँ नहीं जाते हैं तो अलग से शेड बना है। मुख्य रूप में बतख, खरगोश और सफेद कबूतरों को यहाँ देखा जा सकता है। इस तीर्थ को मानव व अन्य प्राणियों का सेवा-केन्द्र बनाने का स्वप्न पूज्य गुरु विद्याचन्द्रसूरिजी ने देखा था, जिसे आचार्य हेमचन्द्रसूरिजी ने साकार किया और वर्तमान में मुनिश्री ऋषभविजय जी यहाँ मानव व अन्य प्राणियों की सेवा हेतु विभिन्न गतिविधियों का संचालन कर रहे हैं।

मोहनखेड़ा महातीर्थ अन्य कई रूपों में भी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक उत्थान का केन्द्र बना है। यहाँ विभिन्न अवसरों पर मेलों व समारोह का आयोजन होता है। यहाँ का मुख्य समारोह 'गुरु सप्तमी' (पौष शुक्ल सप्तमी अर्थात् दिसम्बर का अन्त व जनवरी का आरम्भ) है। यह तिथि श्री राजेन्द्रसूरिजी की जन्म व पुण्यतिथि है। इस समय 5-दिवसीय समारोह का आयोजन होता है, इसमें लगभग डेढ़ लाख यात्री आते हैं। ऐसे समय में आस्था व भक्ति का अद्भुत संगम देखा जा सकता है। इस महातीर्थ से इस क्षेत्र में पर्यटन-होटल उद्योग को बढ़ावा मिला है, यातायात-संचार के साधनों का विकास हुआ है।

सन्दर्भ :

1. स्वयं मोहनखेड़ा महातीर्थ का भ्रमण कर जानकारी प्राप्त करना।
2. 'श्री मोहनखेड़ा एक महातीर्थ', श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन श्वेताम्बर पेढ़ी, मोहनखेड़ा द्वारा प्रकाशित पुस्तिका।
3. वही
4. पेढ़ी पर कार्यरत दिलीप जी से चर्चा व अन्य कर्मचारियों से जानकारी।





7.

उज्जयिनी : शैव साधना का प्रमुख केन्द्र

सोनल अग्रवाल

उज्जयिनी में शैव सम्प्रदाय के प्रारम्भिक प्रमाण शिवाकृति की प्राचीन मुद्राएँ हैं। ये मुद्राएँ 300 से 200 ई०पू० के काल की हैं। इनपर कमण्डलु व दण्ड धारण किए शिव अंकित हैं। डॉ० जे०एन० बनर्जी ने उज्जयिनी की मुद्रा पर अंकित खड़ी हुई पुरुषाकृति का शिव से तादात्म्य किया है। इनमें शिव मानवीय आकृति में अंकित हैं। तीन मुखोंवाली खड़ी पुरुषाकृति को कनिंघम ने महाकाल से सम्बद्ध किया है, जिसे एलन ने कार्तिकेय कहा; परन्तु शैवग्रन्थों में शिव का त्रिमुखी रूप कहा गया है। अतः इस मुद्रा पर अंकित आकृति शिव की ही है, जिससे स्पष्ट होता है कि यहाँ शैवधर्म के अनुयायी थे और वे इसे पूज्य मानकर मुद्राओं पर अंकित करते थे। मुद्राओं पर प्रतीक-चिह्न जैसे तीन पर्वत व चन्द्रमा है, जिन्हें आनन्द के० कुमारस्वामी त्रिशिंग पर्वत मानते हैं। शिव की एक उपाधि शशांक-शेखर की थी। शिवलिंग का चिह्न भी मुद्राओं पर मिलता है। शिव वाहन नन्दी अथवा बैल का चिह्न व त्रिशूल चिह्न भी शैव सम्प्रदाय से संबंधित है। *महाभारत* में महाकाल, कोटितीर्थ, मद्रवट आदि का उल्लेख है जो अवन्तिका नगर में थे। इस प्रकार उज्जयिनी शैव सम्प्रदाय का केन्द्र था।

भास के नाटक *प्रतिज्ञायागन्धरायण* में उज्जयिनी के शिव-मन्दिर का उल्लेख मिलता है कि यहाँ स्कन्द प्रतिमाएँ थीं। डॉ० पुसालकर ने भास का समय 400-200 ई०पू० निर्धारित

किया है। साँची स्तूप दानदाताओं में उज्जयिनी के शिवनन्दी, नन्दीगुप्त, नन्दिगिरि आदि का उल्लेख है जो यह स्पष्ट करता है कि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में उज्जयिनी में शैव सम्प्रदायी थे जो शिव व उसके वाहन को पवित्र मानकर अपने नाम रखते थे।

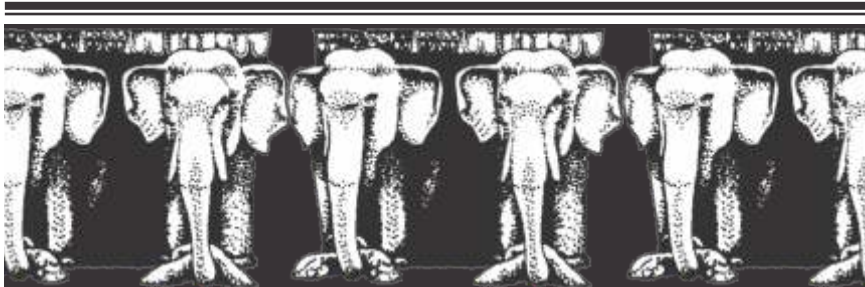
जैन-परम्पराओं में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के विक्रमादित्य के पिता गर्दभिल्ल को शिवोपासक कहा है व विक्रमादित्य को अपने पिता का अनुयायी बतलाया गया है। शैव सम्प्रदाय में आर्य व आर्येतर संस्कृति का समन्वित रूप होने से यह विदेशियों के लिए स्वीकारने योग्य धर्म था। यही कारण था कि शक क्षत्रप शासकों ने इस धर्म को स्वीकार किया व अपने नाम शिव की उपाधियों पर रखे, जैसे रुद्रदामन आदि।

कालिदास के वर्णन से प्रतीत होता है कि उज्जैन में शैव मतावलंबी बहुसंख्या में रहते थे। उन्होंने नगर में विद्यमान महादेव के पवित्र धाम चण्डीश्वर का उल्लेख किया है, जहाँ पर शिवभक्त रहा करते थे। उस समय यहाँ पर महाकाल का मन्दिर था, जहाँ संध्या के समय आरती उतारी जाती थी। इस मन्दिर में नर्तकियाँ नृत्य करती थीं, जिनके पैरों की किकिणी के शब्द से मन्दिर गूँज उठता था, वे मन्दिर में शिव-प्रतिमा के सामने रत्नजड़ित चँवर डुलाती थीं। कालिदास स्वयं शिवोपासक थे। *कुमारसम्भवम्* में ध्यानावस्थित शिव की वन्दना की गई है। वराहमिहिर ने शिव की मानवाकृति व लिंग-रूप में पूजा करने का उल्लेख किया है। शिव चन्द्राकृति मुकुट धारण किये व वृषवाहन ग्रहण किये त्रिनेत्र व हाथों में त्रिशूल धारण करनेवाले कहे गये हैं। उज्जैन से प्राप्त शिव की एक भग्न प्रतिमा इन्हीं लक्षणों में प्राप्त हुई है। अर्द्धनारीश्वर के लक्षणों की शिव-प्रतिमा व शिवलिंग का वर्णन वराहमिहिर ने किया है। इन्हीं लक्षणों में कुछ भग्न प्रतिमाएँ उज्जयिनी से मिलती हैं। वराहमिहिर के समय पाशुपत सम्प्रदाय का पर्याप्त प्रचलन हो गया था। क्योंकि वे शम्भु की प्रतिमा को भस्म रचानेवाले ब्राह्मणों से ही अभिषिक्त करने की विधान करते हैं।

टीकाकार उत्पल इससे पाशुपत सम्प्रदायी होने का उल्लेख करते हैं। पाशुपतों में दिन में तीन बार भस्म-स्नान व भस्म पर सोना प्रचलित था। कलचुरि-शासक कृष्णराज व बुद्धराज की पत्नी पाशुपत सम्प्रदाय माननेवाले थे। उज्जयिनी की अमोना ताम्रपत्र का दूतक स्वयं पाशुपत नामधारी था। लकुलीश प्रतिमाओं से, जो उज्जैन में प्राप्त हुई हैं, इसी बात की पुष्टि होती है। हेनसांग मालवा में ऐसे पाशुपतों से मिला था। छठी शताब्दी में उज्जैन में कापालिकों का भी सम्प्रदाय निवास करता था। वराहमिहिर ने मुण्ड कपालधारी कापालिकों का उल्लेख किया है।

स्कन्दमहापुराण में उज्जयिनी को शिव का निवास-स्थल व शैवधर्म का प्रमुख तीर्थ कहा गया है। महाकाल-वन में कल्प के अंत तक शाश्वत रहनेवाले शिव निवास करते हैं। यहाँ पर शिव की पूजा महाकाल के नाम से होती थी व शिव इस नगर के रक्षक थे। शिव के 84 ज्योतिर्लिंगों की स्थापना में यह तीर्थस्थल रूप में प्रसिद्ध था। महाकाल मन्दिर की प्रदक्षिणा का भौतिक एवं आध्यात्मिक लाभ माना जाता था। महाकाल मन्दिर में नृत्य, गीत, वाद्य, स्तोत्र का

आयोजन किया जाता था व नैवेद्य एवं उपहार अर्पित करते थे। इसे श्मशान, ऊखर व पौत्र शैव प्रभाव के कारण कहा गया। उज्जयिनी के महाकालेश्वर की द्वादश ज्योतिर्लिंगों में गणना की गयी व इसे शैवसम्प्रदायानुयायियों में सर्वाधिक पूज्य स्थल बताया गया है। नगर के पूर्व में पिंगलेश्वर, दक्षिण में कायावरोहणेश्वर, पश्चिम में बिल्वेश्वर, उत्तर में दुर्देश्वर प्रतिष्ठित है व इनके मध्य में प्रमुख कालाधिपति महाकालेश्वर स्थित हैं।





8.

उज्जैन के ऐतिहासिक देवी-मन्दिर

डॉ० प्रियंका चौबे

प्राचार्य, सुमन हाईस्कूल, विक्रम विश्वविद्यालय परिसर, उज्जैन

पीयूष पाण्डेय

शोधार्थी

प्राचीन काल से ही अवन्तिका का अपना विशेष पुरातन महत्त्व है। उज्जैन अनादि उज्जयिनी, भारत में विकसित अनेक मतों की प्रमुख केन्द्र रही है। यह शैव के साथ शाक्त मतों की दृष्टि से सम्पूर्ण भारत में सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थल है जहाँ दोनों का स्थान सर्वोपरि है। पुराणोक्त द्वादश ज्योतिर्लिंग तथा 51 शक्तिपीठों में से एक उज्जैन में ही अवस्थित है। उज्जयिनी में शक्तिपूजा के प्रमाण पुराण काल से पूर्व से उपलब्ध है। गढ़कालिका के उत्खनन से प्राप्त मृणमूर्ति पर अंकित बालक लिये माँ से स्पष्ट होता है कि यहाँ सप्तमृतिका या मातृदेवी के रूप में शक्ति की उपासना का प्रचलन कम-से-कम 2200 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो गया था। उज्जयिनी की मुद्रा में अंकित दो स्त्री आकृति सहित अनेक पुरातत्वीय प्रमाण भी सिद्ध करते हैं कि किसी-न-किसी रूप में देवी पूजा का प्रचलन था।

शिवपुराण में स्पष्ट रूप से ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि भारत के प्रख्यात शक्तिपीठों में से उज्जैन का ऐतिहासिक हरसिद्धि मन्दिर अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है उज्जैन के न्यायप्रिय राजा विक्रमादित्य की ये आराध्य देवी रही हैं। वर्तमान में विक्रमादित्य के एक से अधिक पुरातत्वीय प्रमाण हो जाने से इनका काल ईसा पूर्व निर्धारित होता दिखाई देता है। वहीं महाकवि कालिदास की देवी आराध्य देवी के रूप में गढ़कालिका का विशेषोल्लेख मिलता है। कालान्तर में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कन्नौज के शासक हर्षवर्धन

(606-647) ने 606 में करवाया। गढ़कालिका माता का ऐतिहासिक मन्दिर प्राचीन उज्जयिनी परिक्षेत्र के मध्य माना जाता है।

इस प्रकार दोनों मन्दिर उज्जैन के शाक्त धर्म को प्रबलता प्रदान करते हैं। दोनों ऐतिहासिक मन्दिरों की वर्तमान स्थापत्य कला व मूर्ति-शैली में प्राचीन मन्दिर में विशेष भग्नावशेषों का उल्लेख किया गया है। इससे इसकी प्राचीनता तो सिद्ध होती है, तथापि वर्तमान में बार-बार होते रहे जीर्णोद्धारों के चलते दोनों मन्दिर अपने मूल स्वरूप को खो चुके हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों मन्दिरों के गर्भगृह और सभामण्डप में परमारकालीन मन्दिर शैली व स्थापत्य के अवशेष दिखाई देते हैं। क्रमशः दोनों मन्दिरों का उल्लेख निम्नानुसार है।

उज्जयिनी के शाक्त केन्द्रों में देवी हरसिद्धि, गढ़कालिका, चौसठ योगिनी, नगरकोट की रानी, चौबीस खम्बा की महामाया देवी, चामुण्डा मन्दिर प्रमुख स्थापत्य के रूप में मिलते हैं।

हरसिद्धि देवी मन्दिर— प्राचीन काल से ही माना जाता है कि उज्जयिनी की रक्षा में जिन योगिनियों का पहरा रहता है, उनमें से एक हरसिद्धि भी हैं। हरसिद्धि वैष्णवी देवी हैं। हरसिद्धि का शाब्दिक अर्थ है हर कार्यों की सिद्धि होना। पुराणों में इस स्थान का धार्मिक महत्त्व बतलाया गया है। *शिवपुराण* के अनुसार दक्ष-यज्ञ से शिव द्वारा सती को उठाकर ले जाते समय सती की कोहनी यहाँ गिरी थी, अतः यह स्थान सिद्धपीठ कहलाता है। तंत्रग्रंथों में भी इसें सिद्धपीठ स्थान कहा गया है।

‘वध्वेतां देवि तौ दैत्यौ वधा मीति वचाब्रवीत्’

लिंगपुराण के अनुसार देवी को शिव ने चण्डी के रूप में चण्ड और प्रचण्ड नामक दो दानवों का वध करने के लिए स्मरण किया था। देवी द्वारा उक्त दानवों का वध करने से शिवजी ने प्रसन्नता से कहा—

‘हरस्तामाह हे चण्डि संहती दुष्टदानवी ।

नाम्ना ख्यातिं गमिष्यसि ॥

अर्थात्, ‘हे चण्डी ! तुमने इन दुष्ट दानवों का वध किया है, अतः समस्त लोक में हरसिद्धि नाम से प्रसिद्ध रहेगी।’

हरसिद्धि मन्दिर के परकोटे के चारों ओर द्वार है। मन्दिर का द्वार पूर्व दिशा की ओर है। दक्षिण में एक बावड़ी बनी हुई है, जो पुराणों के अनुसार एक तीर्थ है। बावड़ी के ऊपर एक प्राचीन कलापूर्ण स्तम्भखण्ड पर सं० 1447 अंकित है। मन्दिर के गर्भगृह में एक सिंहासन पर श्रीयंत्र की प्रतिष्ठा है। यही हरसिद्धि देवी के रूप में मान्य है। इसके ऊपर श्री अन्नपूर्णाजी की मूर्ति स्थापित है। सबसे नीचले भाग में देवियों की सात मूर्तियाँ हैं, जिसमें मध्य की काली और दोनों कोनों में महालक्ष्मी और महासरस्वती की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के सामने नीचे रुद्रसागर तालाब है। जिस समय यह जलमय रहता है, कमल के पुष्प खिले रहते हैं। मन्दिर के प्रांगण में

ही एक गुफा बनी हुई है, जहाँ प्राचीन काल में साधक रहा करते थे। मन्दिर में प्रायः दुर्गापाठ करके साधक सुधीजन वातावरण को पवित्र बनाए रखते हैं। मन्दिर के ठीक सामने दो विशाल दीपस्तम्भ बने हुए हैं। नवरात्रि के समय जब इन पर दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं, तो सुवर्ण की तरह उनकी ज्योति झिलमिलाती है। हजारों यात्री इस स्वर्णिम शोभा को देखने के लिए प्रतिदिन आते हैं। जगमगाते हुए ये दीपस्तम्भ अपने प्रकाश से सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। यह शोभा अवर्णनीय ही नहीं, दर्शनीय भी होती है। रुद्रसागर जब जल से भरा हुआ हो, तो ये दीपस्तम्भ अपने ज्योतिर्मय प्रतिबिम्ब से विशेष आकर्षक बन जाते हैं।

हरसिद्धि देवी सम्राट् विक्रमादित्य की आराध्य देवी हैं। इनके समक्ष, लोककथानुसार, वीर विक्रम ने 11 बार अपने मस्तक को अपने हाथों से अर्पित किया और 11 ही बार वह पुनः उनके शरीर से जुड़ गया। इस प्रकार 135 वर्ष उनका शासन यहाँ रहा है। उज्जयिनी के तान्त्रिक अपनी आराध्य को स्त्री रूप में स्मरण करते थे। वह नरमुण्डमाला धारण किए रौद्र रूप में अंकित होती थीं। इस प्रकार के चित्रों के रूप के अंकन भी हमें हरसिद्धि मन्दिर में मिलते हैं।

हरसिद्धि देवी की प्रामाणिकता— शिवाराधना, शक्ति आराधना के बिना पूरी नहीं होती है। शिव और शक्ति— दोनों परस्पर के पूरक हैं। अवन्तिका (उज्जयिनी) एक ऐसा तीर्थ है, जो मृत्युलोक में शिव तथा शक्ति का सबसे बड़ा तीर्थ माना गया है—

‘तत्पीठ देवे तयं हरसिद्धि सर्वमंगला जयति’

तंत्रचूड़ामणि में शक्तिपीठों की संख्या 52 दी गई है, *स्कन्दमहापुराण* में 108 शक्तिपीठ बताए गए हैं। संख्याएँ जो भी हों, माँ हरसिद्धि देवी एक सिद्ध शक्तिपीठ है। *शिवमहापुराण* के अनुसार दक्ष प्रजापति के यज्ञ से शिवाजी सती को ले जा रहे थे, सती की कोहनी यहाँ गिर गई थी एवं यहाँ श्रीयंत्र की पूजा होती रही। कालांतर में मन्दिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित हरसिद्धि देवी की प्रतिमा की पूजा आरम्भ हुई, जो आज भी हो रही है।

माँ हरसिद्धि देवी 51 शक्तिपीठों में से एक सिद्ध शक्तिपीठ हैं। मार्कण्डेयपुराणोक्त दुर्गासप्तशती के अनुसार न्यास की शक्ति में अं से क्षं तक 51 देवियों के नाम आते हैं।

हरसिद्धि महादेवी नित्यं व्योमस्वरूपिणीम् ।

हरसिद्धिः प्रपश्येद्यः सोभीष्टं लभते फलम् ॥

माँ हरसिद्धि का पौराणिक महत्त्व— भारतीय संस्कृति शक्ति-उपासना को महाकाली, महालक्ष्मी व महासरस्वती के रूप में सर्वोपरि मानती आई है। *मार्कण्डेयमहापुराण* में ब्रह्माणी, वैष्णवी, और शैव (रुद्राणी) के नाम से शक्ति को मान्यता दी गयी है, और श्रीदुर्गासप्तशती के पाठ का बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। श्री महाकालेश्वर मन्दिर स्थित कोटितीर्थ कुण्ड के उत्तरी-पश्चिमी किनारे पर रामजानकी मूर्ति के पीछे माहेश्वरी (पार्वती) देवी की मूर्ति स्थापित है। कालान्तर में इसी ही अवन्ति देवी कहा जाने लगा। यह भी

कहते हैं इसी स्थान पर सती माँ पार्वती देवी का ‘कूर्पर’ (कोहनी) का अंग गिरा था। *तंत्रचूड़ामणि* और *ज्ञानार्णव* के अनुसार अवन्तिका (उज्जैन) में सती शक्ति का नाम ‘चण्डिका’ और शिव (महाकाल) का नाम ‘कपिलाम्बर’ है। *देवीभागवतपुराण* के सप्तम स्कन्ध में भी बताया गया है—

आरोग्य वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी

मत्स्यमहापुराण की एक कथा के अनुसार रुद्र ने अवन्तिका के महाकाल वन में जब अंधकार से युद्ध किया था, तब उन्हें काली और महाकाली ने सहयोग दिया था। इसी से तंत्रग्रंथों में इसे सिद्धपीठ कहा गया है।

‘यस्मात् स्नानं हि मातृणां पीठं तनैव कथ्यते’

स्कन्दमहापुराण के अवन्तिकाखण्ड में माँ हरसिद्धि की महिमा ऋषिपुत्र सनत्कुमार बताते हैं कि माँ हरसिद्धि उत्तम सिद्धि देनेवाली शक्तिस्वरूपा हैं। पौराणिक परम्पराओं में महाकाल के महेश्वर और कालिका को माहेश्वरी कहा गया है। महाकाल की शक्ति देवी हरसिद्धि देवी का यह मन्दिर वर्तमान स्थान पर 18वीं शती में बना, जिससे महाकाल का मन्दिर सामने व दूर से दिखाई पड़ता है।

चौबीस खम्भा देवी— महाकालेश्वर मन्दिर से गोपाल मन्दिर जाने के मार्ग पर गुदरी चौराहे पर यह पुरातन चौबीस खम्भा द्वार है। इसके पास लगे हुए मुहल्लों का नाम ‘कोट’ है। इसी कोट के परकोटे का यह द्वार है। महाकालेश्वर मन्दिर में नगर में प्रवेश करने का यही पुरातन द्वार रहा है, ऐसा उल्लेख मिलता है—

‘सहस्रपदविस्तार्ण महाकलवनं शुभम् ।

द्वारं महर्घं रत्नाघैः खचिनं सौम्य दिग्भवम् ॥’

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह महाकाल वन का द्वार रहा है। इसके आगे ही एक छोटा द्वार और हुआ था। उस पर 12वीं शताब्दी का एक शिलालेख लगा था। उसमें लिखा था कि अनहिलपट्टन के राजा ने अवन्ति में व्यापार के लिए नागर और चतुर्वेदी व्यापारिकों को यहाँ लाकर बसाया था। चौबीस खम्भा के दरवाजे के 24 खम्बे बने हुए हैं और उसकी पट्टन के निवासियों की बस्ती रही है। वर्तमान में इस द्वार के दोनों ओर दो चबूतरों पर महामाया एवं महालया देवी की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। नवरात्रि में इन देवियों के देवालयों के समक्ष नवरात्रि के आयोजन और कन्या भोज आदि होते हैं।

चौबीस खम्भा द्वार का मध्यप्रदेश राज्य पुरातत्त्व विभाग द्वारा 1964-’65 में उत्खनन हुआ था। इस उत्खनन में यहाँ से अनेक शैव-शाक्त प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थीं। उत्खनन में यहाँ स्थित एक मिट्टी के टीले में छः प्रस्तर स्तम्भों की एक और तथा कुछ अन्य की दूसरी ओर कतारें प्राप्त हुई हैं। यहाँ हुए उत्खनन से यह अवश्य स्पष्ट हो गया है कि 12वीं शती के

आसपास इस स्थान पर एक बड़े द्वार सहित अर्द्धमण्डप, मण्डप या महामण्डप एवं गर्भगृह युक्त एक या अनेक मंज़िलोंवाला विशाल शाक्त मन्दिर रहा होगा।

गढ़कालिका देवी— यह स्थान उस भूमि में है, जहाँ पुरातन अवन्ति बसी हुई थी, जिसके ध्वंसावशेष भूगर्भ में दबे हुए हैं। इसी में खुदाई होने पर आद्यैतिहासिक काल की बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है। गढ़कालिका देवी महाकवि कालिदास की आराध्य देवी मानी जाती हैं। नगर से लगभग दो मील की दूरी पर यह मन्दिर एकान्त स्थान पर है।

गढ़कालिका देवी मन्दिर को शक्तिस्थल में रूप में मान्यता प्राप्त है। शक्तिपीठों के रूप में उज्जयिनी का 33वाँ स्थान है। *स्कन्दमहापुराण* में 24 शक्तिस्थान माने गए हैं। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार लगभग 606 ई० में सम्राट् हर्षवर्धन ने करवाया था। यहाँ दुर्गासप्तशती का पाठ और पूजा होती रहती है। नवरात्रि में उत्सव का माहौल होता है। यह तान्त्रिक सिद्धि स्थान है। *शक्तिसंगमत्र* में लिखा है— ‘अवन्ति संज्ञ के देशे कालिका यत्र तिष्ठति’। इसी कारण पुराणों में भी इस स्थान के माहात्म्य का वर्णन प्राप्त होता है। *लिंगपुराण* में कथा है कि जिस समय युद्ध में विजयी होकर राम अयोध्या को वापस जा रहे थे और रुद्रसागर के निकट ठहरे थे, उसी रात्रि को कालिका भक्ष्य रूप लेने पर देवी भयभीत हो गई। भागने के समय जो अंग गलित होकर गिर गया, वही स्थान यह कालिकामत हार, स्तनसूत्र, बलय, केयूर, कटिमेखला, कटिवस्त्र, कड़ा व नूपुर से अलंकृत है। महेश्वरी के पार्श्व भाग में चँवरधारणी को स्थानक मुद्रा में द्विभुजी प्रदर्शित किया गया है। दाहिने हाथ में चँवर एवं बायें हाथ में कटिप्रदेश पर अवस्थित है। इस प्रकार देवियों के समान ही चँवरधारणियों को बहुलंकृत किया गया है। अतः यह परमार कला का प्रतिनिधित्व कर रही है।

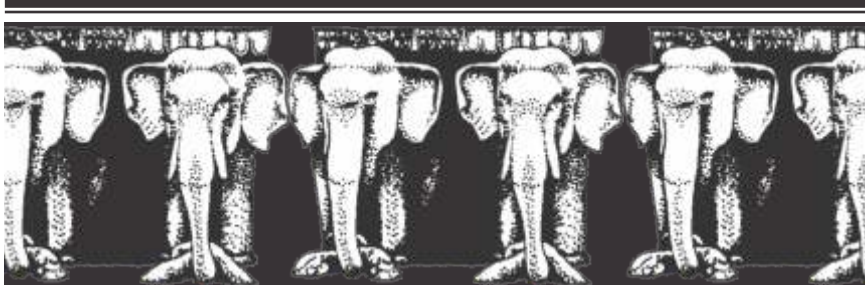
प्राचीन काल से उज्जयिनी में शाक्त धर्म का प्रभाव रहा था। विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न रूपों में देवी-आराधना की जाती रही है। शिव के साथ शक्ति को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है, जिसके फलस्वरूप शक्तिपीठों में उज्जयिनी का महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है, साथ ही पुरातात्विक एवं साहित्यिक दृष्टि से हम पाते हैं कि शाक्त परम्परा का जनमानस पर प्रभाव रहा है। पौराणिक परम्परा के अनुसार महाकाल को ‘महेश्वर’ व कालिका को ‘महेश्वरी’ कहा गया है। महाकाल वन में महेश्वरी का उल्लेख पाया जाता है। यह प्रसिद्ध शक्तिपीठ स्वरूप हरसिद्धि, गढ़कालिका, नगरकोट की रानी अन्य दैवीय स्वरूप की आराधना का प्रमुख केन्द्र रहा है।

उपसंहार

इस प्रकार इन दोनों पुरातन मन्दिरों के अतिरिक्त उज्जैन में अन्य शाक्त मन्दिर भी अपनी ऐतिहासिकता लिए हुए दिखाई देते हैं जिनमें नगरकोट की रानी, चौबीस खम्बा की महामाया-महालया देवी, चामुण्डा माता मन्दिर, योगेश्वरी टेकरी, चौंसठ योगिनी मन्दिर, पृथिवी देवी, विराजन टेकरी आदि का प्रमुख स्थान है।

सन्दर्भ :

1. देवीभागवतपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ० 62
2. मदर गॉड्स, नयी दिल्ली 1979, पृ० 17
3. माँ हरसिद्धि महिमा, पृ० 8-9
4. तंत्राज, स्टडीज आन देयर रिलीजन एण्ड लिटरेचर, पृ० 52
5. उज्जयिनी प्रतिकल्पा, दिल्ली, 1992; Preliminary Report of Trial Digging Choub is Khamba Ujjain in 1964-65 by S.K.Dixit, pp. 100-106
6. स्कन्दपुराण, अवन्तिखण्ड, 64.8-9
7. प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृ० 113-14, 137-38
8. उज्जयिनी और उसका गौरवशाली अतीत, पृ० 158-59
9. गांगुली, डी०सी०, परमार राजवंश का इतिहास, ढाका, 1920
10. गर्ग, आर०एस०, शाक्त प्रतिमा, भाग 3
11. माँ हरसिद्धि महिमा, पृ० 11-12





9.

उज्जयिनी की शैव परम्परा में कालभैरव-उपासना

डॉ० अंजना सिंह गौड़

व्याख्याता, डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं
पुरातत्त्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

‘गणेश द्वारकाधीशं हरसिद्धीं च भैरवम् ।

वन्दे काली महाकालं शिप्रामुज्जयिनी श्रियम् ॥’

भै

रव शब्द तीन अक्षरों से बना है— भ, र एवं व । ‘भ’ भरण या विश्व के पालन का
द्योतक है । ‘र’ रवण अथवा सृष्टि के निर्वर्तन का द्योतक हैं तथा ‘व’ वमन
अथवा सृष्टि की उत्पत्ति का द्योतक है ।

उज्जयिनी की शैव एवं तान्त्रिक परम्परा का तीर्थ ‘कालभैरव’ मन्दिर
शिप्रा नदी के उत्तर में स्थित है । उज्जयिनी-दर्शन करते समय सर्वप्रथम
कालभैरव के दर्शन का विधान है । चेतना की परमावस्था की प्राप्ति ही कालभैरव है । यह
चेतना का आदर्श उज्जयिनी में न केवल शैव-ग्रंथों में निहित है, अपितु लोकजीवन की विभिन्न
कथाओं में, तान्त्रिक अनुष्ठानों कला एवं साहित्य में भी व्याप्त है ।

स्कन्दमहापुराण में कालभैरव की उपासना की विविध विधियाँ और अनुष्ठानों का
वर्णन प्राप्त होता है, जैसे पत्र, पुष्प, अर्घ्य, गंध और नैवेद्य, ताम्बूल अर्पण; ब्राह्मण-भोजन
आदि । कालभैरव चतुर्भुज होकर उनके दो हाथों में कृपाल एवं दण्ड है तथा दो में गदा व शंख
है । उनके वक्षस्थल में श्रीवत्स अंकित है । गले में मुण्डमाला, कटि में मूँज की मेखला है ।

वे योगिनियों तथा डाकिनियों को त्रास देनेवाले हैं। वे नवमातृकाओं को अपने वश में रखते हैं। ये नवमातृकाएँ महामारी, पूजना, कृत्या, शकुनि, रेवती, खला, कोटरी, तामसी तथा माया के नाम से जानी जाती हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि यहाँ मातृकाएँ लोकमातृकाएँ हैं जिनका पूजन विविध उत्पातों तथा रोगों को दूर करने के लिए तथा काम्य वस्तुओं के प्राप्ति के लिए जनसाधारण द्वारा किया जाता है।

तंत्रालोक में कहा गया है कि भैरव अपने भक्तों का संसार के भय से तारण करते हैं—

‘भीरुणाम् अयं हितकृद इति भैरवः’

भैरव उन सभी नक्षत्रों पर स्वामित्व रखते हैं जो काल के अंतर्गत हैं—

‘काल ग्रास समाधि रुढ़ावधानां योगिनः ।

तेशु अयं स्वामी तत्त्वेद प्रकटः स्फुरितः इति भैरवः ॥’

तंत्रानुसार दस महाविद्याओं के दस भैरव ये हैं— 1. महाकाली के महाकाल भैरव, 2. तारा के तारा भैरव, 3. बाला भुवनेशी के बाल भुवनेश भैरव, 4. षोडशी श्री विद्या के षोडशीश्री, 5. भैरवी गिरिजा के भैरव, 6. छिन्नमस्ता के छिन्नामस्तक भैरव, 7. धूमावती के धूम्रवान् भैरव, 8. बगलामुखी के बगलामुख मृत्युञ्जय भैरव, 9. मातंगी के मातंग भैरव एवं 10. कमला के कमल भैरव।

शक्तिसंगमतंत्र में शैव-साधकों के सात प्रकार बतलाए गए हैं— शिखी, मुण्डी, जटी, द्विदण्डी, त्रिदण्डी, एकदण्डी और वीर शैव।

प्राचीन काल से उज्जयिनी में सिद्धों का वर्चस्व और साधकों का निवास था। साधना के लिए सर्वप्रथम उपयुक्त स्थल उज्जैन को ही माना गया है, क्योंकि अवन्तिखण्ड (1.247) में कहा गया है—

‘श्मशानमूषरं क्षेत्रं पीठं तु वनमेव च ।

पचचैकत्र न लभ्यन्ते महाकालवनाद ऋते ॥’

अर्थात्, 1. श्मशान, 2. ऊषर, 3. क्षेत्र 4. पीठ और 5. वन में पाँचों (साधनोपयोगी स्थल) महाकाल वन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होते हैं।

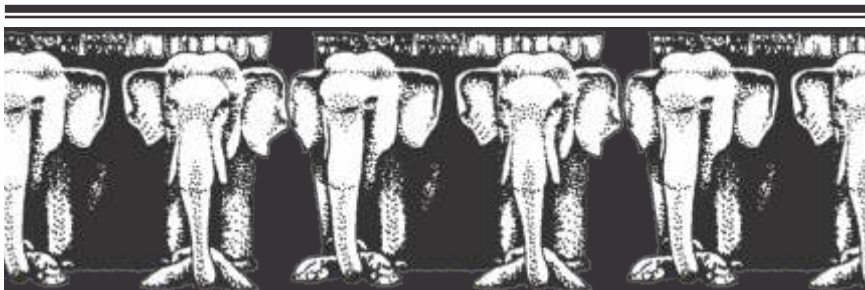
उज्जयिनी में पद-पद पर शिव के स्थान हैं और शिव तथा भैरव की एकरूपता के आधार पर भैरवनाथ के भी स्थान (मन्दिर) विभिन्न स्थानों पर बने हुए हैं। लौकिक तथा अन्य साहित्य में कापालिकों द्वारा भैरवोपासना विशेष रूप से आती है। बाणभट्ट के *हर्षचरितम्* में भैरवाचार्य का रोचक वर्णन है। वे रुद्राक्ष पहने, भस्म, लगाए, स्फटिक कुण्डल पहले वर्णित हैं। राजा पुष्पभूति के लिए वह श्मशान में शव में विभिन्न अनुष्ठान करता है, क्योंकि इस साधना में वह सभी भेद दृष्टियों से परे हो जाता है। अंत में राजा को अजेय होने का वरदान मिलता है और भैरवाचार्य विद्याधर योनि को प्राप्त होता है।

इस प्रकार कापालिक साधना में कपाल का प्रयोग तथा महाव्रत, कालभैरव की कथा पर आश्रित है। इसमें भक्ति की तीव्रता भक्त द्वारा भगवान का अनुकरण करने से बढ़ती है। अतः भक्तों के कपाल प्रयोग से रहस्यमय साम्य भैरव के साथ हो जाता है, जिससे सिद्धियों को भक्त के पास आना सरल हो जाता है।

अतः हम देखते हैं कि कालभैरव उपासना प्राचीनकाल से ही शैव सम्प्रदाय के रूप में उज्जयिनी की गौरवशाली परम्परा के रूप में रही है।

आधार-ग्रन्थ :

1. ठाकुर जयदेव सिंह, *विज्ञानभैरव*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
2. *स्कन्दमहापुराण*, अवन्तिखण्ड, गंगाधर वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
3. *मत्स्यपुराण*, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
4. राजपुरोहित भगवतीलाल, *उज्जयिनी और महाकाल*, प्राच्य निकेतन, उज्जैन
5. पाण्डे सुस्मिता, *प्राचीन भारत का सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक इतिहास*, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
6. गोपीनाथ कविराज, *गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह*, वाराणसी
7. बैन्यतोष भुचार्य, *शक्तिसंगमत्रय*, बड़ौदा
8. गौर अंजना सिंह, *उज्जयिनी का नगरीकरण*, शारदा प्रकाशन, नईदिल्ली
9. कानूनगो शोभा, *उज्जयिनी का सांस्कृतिक इतिहास*, इंदौर
10. दीक्षित स०का०, *उज्जयिनी व पुरातत्त्व*
11. मर्सिका इलियेट्स, *कॉस्मस एण्ड हिस्ट्री*
12. डेविस लॉरेन्जेन, *द कापालिकास एण्ड कालामुखास*
13. ठाकुर, सावित्री, *शिवपुराण*





10.

लक्ष्मी का ऐतिहासिक महत्त्व एवं उज्जयिनी का गजलक्ष्मी मन्दिर

डॉ० एकता व्यास

द्वारा, डॉ० सौदानसिंह मकवाना, 163/1, साई धाम कॉलोनी, नीलगंगा रोड,
उज्जैन

ह मारे प्राचीन ग्रंथों में लक्ष्मी का वर्णन प्रायः हमें शोभा, कान्ति, ऐश्वर्य, सम्पदा, वैभव आदि के रूप में प्रयुक्त प्राप्त होता है। कार्तिक अमावस्या का दिन दीपावली का दिन होता है एवं प्रत्येक जनसाधारण अपने घरों को स्वच्छ कर रात्रि में दीपकों का आलोक में लक्ष्मी पूजन कर लक्ष्मी-आगमन की प्रतीक्षा करते हैं इस विश्वास के साथ कि वे प्रत्येक घर में ऐश्वर्य वैभव व धन के साथ उपस्थित होंगी।

देवता व दानवों के संघर्ष में समुद्र-मंथन करते समय उत्पन्न 14 रत्नों में से लक्ष्मी भी एक रत्न थीं, वे कमलासन पर बैठी हुई कमल धारण किए हुए प्रकट हुई थीं। साहित्यों में लक्ष्मी-पूजन व सौन्दर्य का अभूतपूर्व वर्णन हमें प्राप्त होता है। इन्द्र स्वयं अपने हाथ से उनके लिए आसन रखते हैं। गंगा आदि पवित्र नदियाँ अपने जल से लक्ष्मी का स्नान करवाने उपस्थित होती हैं एवं स्वर्ण-कलशों में जल भरकर सर्वलोक महेश्वरी देवी का अभिषेक कराया जाता है। पृथिवी अभिषेक के योग्य ओषधियाँ प्रदान करती है, गायों ने पञ्चगव्य तथा वसन्त ऋतु ने सभी प्रकार के पुष्पों को प्रदान करती है। ऋषियों ने उनका अभिषेक किया, स्नान के पश्चात् विश्वकर्मा ने आकर उनके अंग-प्रत्यंग में अनेक प्रकार के आभूषण पहनाये। क्षीर सागर ने उन्हें खिले हुए कमल पुष्पों की माला प्रदान की बादल मूर्तिमान होकर वाद्य बजाने लगे एवं लक्ष्मी हाथ में कमल लेकर सिंहासन पर विराजमान हो गयीं। कमल ही उनका निवास स्थान है।

अग्निपुराण में लक्ष्मी को चतुर्भुजी कहा गया है, जिसमें वे क्रमशः दाहिनी भुजाओं में चक्र व शंख व बायीं भुजाओं में गदा व कमल धारण करती हैं।¹ साहित्यों में वर्णित लक्ष्मी का अंकन हमें मूर्तिकला में भी देखने को मिलता है, जिसमें वे विष्णु के चरण दाबती हुई कमलासना एवं गजलक्ष्मी के रूप में प्राप्त होती हैं। लक्ष्मी का गजलक्ष्मी रूप अत्यंत ही प्रसिद्ध है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में लक्ष्मी अष्टदलोंवाले सुन्दर कमल पर आसीन बताई गई हैं, जिसमें वे अपनी भुजाओं में बड़ी नालवाला कमल, अमृत घट, बिल्वफल व शंख धारण किए हुए हैं एवं पृष्ठभाग में सुन्दर हाथी अपनी सूंडों से जल छिड़कते हुए प्रदर्शित हैं।⁴

वाल्मीकीयरामायण में लक्ष्मी कुबेर के साथ संबंधित मिलती हैं। महाभारत में लक्ष्मी भद्रा नामक सोम की पुत्री के साथ कुबेर की स्त्री के स्वरूप में उपस्थित होती हैं। कालिदास ने रघुवंश में लक्ष्मी को पद्महस्ता, राजलक्ष्मी के रूप में वर्णन किया है।⁵

उपर्युक्त एवं अन्य प्रकार के लक्ष्मी-स्वरूपों का अंकन हमें भरहुत, साँची, बोधगया, अमरावती व अन्य स्थानों से प्राप्त होता है। इनमें लक्ष्मी का अंकन खड़ा व बैठा हुआ प्राप्त होता है, जिसमें वे कमलासना या दो हाथियों से स्नान करती हुई प्राप्त होती हैं।⁶

लक्ष्मी का महत्त्व एवं ऐतिहासिकता के सन्दर्भ में प्राचीन गजलक्ष्मी माता का मन्दिर उज्जैन में नयी पेट रंगमहल के पास स्थित है। यहाँ लक्ष्मी गज पर सवार हैं एवं इन्हें महालक्ष्मी माता के नाम से भी संबोधित किया गया है। महालक्ष्मी का वर्णन हमें शक्ति के विभिन्न रूपों में 24 मातृकाओं के रूप में स्कन्दमहापुराण के अवन्तिखण्ड में प्राप्त होता है।⁷ मन्दिर के पुजारी श्री रमेशचन्द्र शर्मा के अनुसार यहाँ कार्तिक शुक्ल अष्टमी को दर्शनार्थियों की भीड़ लगती है, जहाँ उस दिन अनाज से बने आभूषण लक्ष्मी देवी पर चढ़ाए जाते हैं। दीपावली पर तो यहाँ के दर्शन विलक्षण होते हैं। प्रातः महाआरती से प्रारम्भ कर दुग्धाभिषेक एवं 56 भोगों से देवी को प्रसन्न किया जाता है। नवरात्रि में हवन-पूजन किया जाता है। श्रीसूक्त, जो लक्ष्मी को अत्यन्त प्रिय है, यहाँ करवाये जाते हैं। विशेष दिवसों के अतिरिक्त प्रति शुक्रवार को विशेष पूजन-पाठ किए जाते हैं। इस तरह गजलक्ष्मी के मन्दिर में वर्षभर त्योहारों का मेला लगा रहता है। माँ लक्ष्मी, जो जगज्जननी हैं, वैभव प्रदाता हैं, वही इसमें चेतना का संचार करती हैं। उज्जयिनी के इस मन्दिर में दर्शनार्थी श्रद्धानुसार लक्ष्मी की सेवा समर्पण भाव से करते हैं।

सन्दर्भ :

1. विष्णुपुराण, 1. 9.102-103, गीताप्रेस, गोरखपुर
2. वही, 1.9.104
3. अग्निपुराण, 50.20, आनन्दाश्रम प्रेस, पूना
4. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 82.3-8, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
5. राम गोविन्दचन्द्र, प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, पृ० 8, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1964
6. मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, पृ० 159, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1972
7. राजपुरोहित भगवतीलाल, उज्जयिनी और महाकाल, पृ० 39, प्राच्य निकेतन बृजमोहन विड़ला रिसर्च सेन्टर, उज्जैन, 19962



11.

सुन्दरगढ़ और महाकाल मन्दिर

मायापति मिश्र

ऐ

तिहासिक तथ्यों के आधार पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय को ही मालवा का लोकनायक विक्रमादित्य माना जा सकता है, क्योंकि वह अति धर्मानुरागी एवं पराक्रमी राजा था। 'मंगल को जन्मे मंगल को ही करते मंगलमय श्री हनुमान्', यदि इस उक्ति को देवकथाओं में मालवा की पहचान कहे जानेवाले महान् न्यायप्रिय एवं धर्मानुरागी सम्राट् विक्रमादित्य के सन्दर्भ में कहा जाये तो यूँ कहेंगे— 'अवन्तिका से निकले तो महाकाल सुन्दरगढ़ में अटके, जीवनभर महाकार्य में भटके विक्रमादित्य महान्'। विक्रमादित्य कुल कितने भाई-बहन थे, इसका कोई प्रामाणिक (ऐतिहासिक) उल्लेख नहीं है, किन्तु लोककथाओं के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि सुन्दराबाई नाम की उनकी एक अतिप्रिय बहन थीं। मालवा में प्रचलित लोकथाओं में सुन्दराबाई को भी विक्रमादित्य के समान शिवभक्त, महाकालोपासक एवं धर्मानुरागी बताया गया है। भाई-बहन में अटूट प्रेम था, दोनों प्रतिदिन उज्जैन में महाकाल एवं माँ हरसिद्धि के दर्शन करने साथ-साथ जाते थे, तत्पश्चात् अपना दैनिक कार्य प्रारम्भ करते थे। समय के साथ बहन सुन्दराबाई युवती हो गई थी। यथानाम तथागुण के अनुरूप लावण्य की धनी बहन सुन्दराबाई का विवाह महाराजा विक्रमादित्य ने मालवा के ही राठौरवंशीय राजपूत राजा भगत सिंह से कर दिया। उज्जैन से लगभग 100 किलोमीटर एवं शाजापुर से 20 किलोमीटर दूर

भगत सिंह कालीसिंध नदी के तट पर बसी एक रियासत के युवा एवं सुन्दर राजकुमार थे। इन्हें गणेश सिंह राठौर के नाम से भी जाना जाता है। मालवा के महान् सम्राट् विक्रमादित्य की बहन सुन्दराबाई को ब्याह कर लाने के पश्चात् भगतसिंह राठौर ने उनके सम्मान में अपनी रियासत का नाम 'सुन्दरगढ़' रख दिया।

स्थानीय लोककथाओं के अनुसार उज्जैन से सुन्दरगढ़ ससुराल आने के पश्चात् अपनी दिनचर्यानुसार सुन्दराबाई ने भगवान् भोलेनाथ महाकाल के दर्शन से पूर्व अन्न जल नहीं ग्रहण करने का फरमान सुना दिया। सुन्दराबाई की भावनाओं को विक्रमादित्य तक पहुँचा दिया गया। प्रिय बहन की इच्छापूर्ण करने विक्रमादित्य पूरे लाव-लशकर के साथ सुन्दरगढ़ आये और शीघ्र ही भगवान् भूतभावन महाकाल का दिव्य मन्दिर सुन्दरगढ़ में बनवाकर महाकाल की स्थापना करवा दिया। विक्रमादित्य समर्थवान् एवं तिलिस्मी राजा के रूप में विख्यात हैं। बेताल उनके प्रत्येक प्रश्नों एवं समस्याओं के हल के रूप में उनके साथ था। ऐसे में बहन की इच्छा भला कैसे पूरी न कर पाते? महाकाल के साथ-साथ माँ हरसिद्धि की स्थापना भी सुन्दरगढ़ में करते हुए विक्रमादित्य ने मन्दिर-प्रांगण में ही सूरजकुण्ड का भी निर्माण करवा दिया। महाकाल, माँ हरसिद्धि और सूरजकुण्ड को पाकर बहन सुन्दराबाई में ही दूसरी अवन्तिका का आभास करते हुए प्रसन्नतापूर्वक जीवन निर्वाह करने लगीं। महाकालेश्वर भगवान् भूतनाथ भोलेनाथ का महाकाल मन्दिर वर्तमान गाँव सुन्दरसी से दक्षिण दिशा में लगभग पाँच सौ मीटर की दूरी पर स्थित है। काले पत्थरों से निर्मित यह प्राचीन मन्दिर वर्तमान में अपने मूल रूप में नहीं बचा है, परन्तु जितना शेष है, वह अपनी भव्यता एवं महत्ता की गौरवमयी कहानी दोहरा रहा है। स्थापत्य-कला का बेजोड़ नमूना सुन्दरसी का महाकाल मन्दिर, उज्जैन के महाकाल मन्दिर की पूर्ण प्रतिकृति-सा लगता है। उज्जैन के महाकाल के समान ही सुन्दरसी के महाकाल भी, भूमितल से 10 फीट नीचे स्थित मन्दिर के गर्भगृह में विराजते हैं। गर्भगृह में ही खम्भों पर टिके गर्भगृह की दीवारें पत्थरों की हैं। गर्भगृह में ही शिवलिंग के समक्ष 2 फीट चौड़ा, 3 फीट लम्बा और 20 फीट गहरा एक कुण्ड है। पहले इस कुण्ड में जल भरा रहता था और इसी कुण्ड के पवित्र जल से भगवान् महाकाल का अभिषेक किया जाता था। गर्भगृह में प्रवेश से पूर्व एक सभामण्डप है, जिसके तीन द्वार पूर्व, उत्तर एवं दक्षिण में खुलते हैं। पश्चिम दिशा का आन्तरिक द्वार गर्भगृह का मुख्यद्वार है, जो द्वारपालों, गणिकाओं एवं सुन्दर कलाकृतियों से अलंकृत है। सभामण्डप में भी एक शिवलिंग स्थापित है, जिसका दर्शन सर्वप्रथम प्रवेश करते ही स्वयं हो जाता है। सभामण्डप के पूर्वीद्वार पर भगवान् शिवगण नन्दी की वृषभ मूर्ति विद्यमान है, इसलिये यही मन्दिर का मुख्यद्वार है। सभामण्डप नक्कासीदार सुन्दर कलाकृतियों से युक्त गोल खम्भों पर आधारित है। वास्तुशास्त्र एवं स्थापत्य कला के इस अनूठे नमूने महाकाल मन्दिर की एक विशेषता यह है कि प्रातःकाल भगवान् भाष्कर की प्रथम किरण सभामण्डप के 5 फीट (अनुमानतः) ऊँचे पूर्वी द्वार से होकर अन्दर सभामण्डप (लगभग 15 फीट) को पार करती हुई गर्भगृह में प्रवेश करके महाकाल के समक्ष दीवार के ओटले पर स्थापित पार्वतीजी की मूर्ति पर

पड़ती है। सभामण्डप से 10 फीट नीचे गर्भगृह तक सूर्य की किरण पहुँचते ही एक अलौकिक आभा पूरे गर्भगृह में फैल जाती है। यह विक्रमादित्य की विचित्र संरचना है या फिर बेताल का तिलिस्म? जो भी हो, पर है तो शोध का विषय। सभामण्डप के एक खम्भे पर एक लेख उत्कीर्ण है। परन्तु अत्यधिक मात्रा में पेंट की कई पर्तें जम जाने के कारण लेख की लिपि के गड्ढे भर गए हैं, जिससे लिपि अस्पष्ट हो गयी है। फोटो खींचने पर भी कुछ स्पष्ट नहीं हो पाता है।

मन्दिर की बाहरी दीवारें नक्कासीदार विशाल पत्थरों से बनी है। मन्दिर का बाहरी रूप उज्जैन के महाकाल मन्दिर के समान ही है। 15-20 फीट तक ही मन्दिर का मूल रूप शेष रह गया है। शिखर भाग बाद में निर्मित किया गया। बाद का निर्माण खण्डित मन्दिर या अधूरे मन्दिर को पूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया है। मन्दिर-प्रांगण में बिखरे पड़े बड़े-बड़े खम्भों एवं कलात्मक शिलाखण्डों से लगता है कि ये मन्दिर के ही भग्नावशेष हैं, जो किन्हीं कारणों से ढह गए हैं। मन्दिर में उत्तरी भाग की दीवारों में कुछ मूर्तियाँ उड़ीसा शैली की भी दिखती हैं। प्रांगण में कमल की पंखुड़ियों की आकृतियों एवं अन्य बेलबूटों की आकृतियोंवाले शिलाखण्ड बिखरे पड़े थे, जिन्हें सीढ़ियों एवं प्राचीरों में लगा दिया गया है। इस प्रकार चित्रों की आकृतियाँ भूतनाथ मन्दिर शृंखला आशापुरी (रायसेन) में भी मिलती हैं। इतिहास एवं पुरातत्त्वताओं के लिए यह विचारणीय प्रश्न होना चाहिए। सुन्दरगढ़ के महाकाल मन्दिर के संरक्षक एवं जीर्णोद्धार का प्रथम प्रयास वहाँ के पूर्व महंत ब्रह्मलीन स्वामी परमानन्द महाराज ने प्रारम्भ किया था, जिसे निवर्तमान महंत श्री हरिकृष्ण शरण बापू जी ने आगे बढ़ाया है। जनसहयोग से इस मन्दिर में उज्जैन महाकाल मन्दिर की सारी परम्पराओं, जैसे— अभिषेक, भस्मरती, महाकाल की सवारी आदि का आस्थापूर्वक निर्वाह किया जा रहा है। माँ शिप्रा को चुनरी चढ़ाने की परम्परा का अनुसरण करते हुए माँ कालीसिंध नदी को भाद्रपद मास के दूसरे सोमवार को 329 फीट लम्बी चुनरी बापूजी के सान्निध्य में ओढ़ायी जाती है।

एक ओर अवन्तिका का सुन्दरगढ़, विक्रमादित्य के आगमन से पूर्व भगवतगढ़ था। भगवतगढ़ गुप्त काल में भगवान् विष्णु का अनुयायी भी हो सकता है, जो बाद में चलकर महाकाल भगवान् शिव का अनुयायी हो गया। विष्णु के तीसरे अवतार वराह की एक लघु मूर्ति सुन्दरसी में काली सिंध की रेती में दबी मिली है, जो भागवत प्रसंग का द्योतक है। पूर्व में यह नगर सुदृढ़ दीवारों से घिरा हुआ था, जिसके भग्नावशेष आज भी देखे जा सकते हैं। वीर राठौर राजपूतों की राजधानी सुन्दरगढ़ ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। अभी आसपास के गाँवों में राजपूतों की बहुलता है। इन राजपूतों के गाँवों एवं सुन्दरगढ़ में स्थित अनेक असती स्तम्भों को देखने से ऐसा लगता है कि कभी यहाँ मुगलों या बाह्याक्रांताओं से घोर युद्ध हुआ था। बड़ी संख्या में स्थानीय सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए थे। कहीं-कहीं तो 4-4 सती स्तम्भ बने हैं, जो राजस्थान के सामूहिक जौहर व्रत की याद ताजा कर जाते हैं। अपने गौरवमयी स्वर्णिम काल में यह स्थान व्यापार का भी मुख्य केन्द्र रहा है। नगर के पूर्व में 2 कि.मी. दूर लाल बाजार नामक स्थान है, जहाँ मुख्य व्यापार केन्द्र रहा होगा। इसी प्रकार कालीसिंध नदी के तट पर रेशम टीला

नामक स्थान है। रेशम के उत्पादन में मध्यप्रदेश आज भी अग्रणी है। रेशम टीला पर रेशम उद्योग रहा होगा, जहाँ से रेशम का व्यापार होता होगा। टीला के मैदानी भाग से स्थानीय लोगों को कई बार सुल्तान जलालुद्दीन के समय के सिक्के भी मिले हैं। इससे सिद्ध होता है कि बाहर के व्यापारी भी रेशम के व्यापार हेतु सुन्दरगढ़ आते रहे हैं। सुन्दरगढ़ में जैन बस्ती का भी आभास मिलता है और रंगरेजों की बस्ती का भी। ग्वालियर, इन्दौर, धार एवं देवास रियासतों की 'सामलात कचहरी' सुन्दरगढ़ में थी। इससे यह पता चलता है कि सुन्दरगढ़ से पूरे मालवा क्षेत्र पर दृष्टि रखी जा सकती थी। 1857 की महान् क्रान्ति के समय स्वयं तात्या टोपे मालवा में क्रान्ति की चिनगारी भड़काने के उद्देश्य से सुन्दरगढ़ में रहे थे। यदि *आइन-ए-अकबरी* में वर्णित सुनेरी दरवाजा महाराजा दरवाजा वाले सुन्दरगढ़ को यही मान लें तो इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। सुनेरी दरवाजा सुन्दरबाई का ही स्वागत द्वार हो सकता है। यहाँ भगवतगढ़ की कोई विशेष चर्चा नहीं हुई है, क्योंकि इतिहास के पन्नों में यहाँ इतिहास का अध्याय सुन्दरगढ़ के नाम से ही प्रारम्भ होता है। पूर्व का इतिहास स्थानीय अरुचि एवं अनभिज्ञता के कारण धीरे-धीरे महान् सम्राट् विक्रमादित्य एवं उनकी बहन सुन्दरबाई के भव्य आभामण्डल में समाहित हो गया और समय के क्रूर कालचक्र ने वैभवशाली सुन्दरगढ़ को आज अतीत का एक खण्डहर बना कर रख दिया। बदलते हुए परिवेश में विचार एवं भावों के साथ भाषा भी बदलती है, इसी कारण सुन्दरगढ़-जैसा दृढ़ शब्द भी वर्तमान में असहाय सुन्दरसी-जैसे अपभ्रंश के आवृत्त में नज़र आने लगा। शाजापुर ज़िले की शुजालपुर तहसील का सुन्दरसी गाँव आज भी अपने भग्नावशेषों में महाराजा विक्रमादित्य के लाव-लश्कर के पदचापों को सुना करता है। प्राचीन नगर के बाहर एक बड़ा नाला था, जो 'नगर खाल' के नाम से जाना जाता है। नगर खाल नगर को दो भागों में बाँटता है। नगर खाल से भगवान् दत्तात्रेय की एक सुन्दर मूर्ति मिली है, जिसे लोग ब्रह्मा की मूर्ति भी बताते हैं।

आधार-ग्रन्थ :

1. एक और अवन्तिका सुन्दरगढ़, महाकाल हरसिद्धि आश्रम, सुन्दरसी, शाजापुर
2. चौमासा-सुन्दरसी की महाकाल सवारी, आदिवासी लोककला परिषद्





12.

रतलाम जिले के प्रमुख ऐतिहासिक मन्दिर

डॉ० अनिल कुमार जैन

सहायक प्राध्यापक राजनीतिविज्ञान, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम

भा रतीय संस्कृति में धार्मिक स्थलों का महत्त्व प्राचीन काल से रहा है। जिन स्थानों को धार्मिक अथवा तीर्थस्थल घोषित किया गया है, उनमें नदियों के घाट, नदी के तट, जंगल में स्थित ऋषि-मुनियों के आश्रम, पर्वत, घाटियों आदि सम्मिलित हैं। तीर्थस्थल से धार्मिक भावनाएँ जुड़ती हैं। तीर्थस्थलों को केवल सनातन धर्मावलम्बी ही नहीं अन्य धर्मावलम्बी भी स्वीकार करते हैं। इससे सांस्कृतिक विकास में भी योगदान प्राप्त होता है। प्राचीन काल में शासकों ने भी अनेक धार्मिक स्थलों के निर्माण में अपना योगदान दिया है।

रतलाम जिला मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र के पश्चिम का ऐसा स्थान है, जहाँ मालवा, राजस्थान और गुजरात की लोक संस्कृतियों का अनूठा संगम देखने को मिलता है। राज्यों के पुनर्गठन के बाद यह मध्यप्रदेश राज्य का एक जिला है।

भौगोलिक दृष्टि से रतलाम जिला मध्यप्रदेश के पश्चिम में मालवा के पठार पर 23.5 से 23.55 उ० अक्षांश और 74.30 से 75.42 पू० देशान्तर रेखाओं के मध्य स्थित है। उत्तरी गोलार्द्ध की कर्क रेखा निकट से होकर गुजरती है। रतलाम जिले के उत्तर में मंदसौर जिला, झालावाड़ (राजस्थान) तथा शाजापुर जिला है, पूर्व में उज्जैन तथा दक्षिण में धार तथा झाबुआ जिला है। पश्चिम में बाँसवाड़ा एवं चित्तौड़ (राजस्थान) जिले हैं। इस प्रकार भौगोलिक संरचना की दृष्टि से रतलाम जिला मध्यप्रदेश राज्य के मालवाञ्चल की पश्चिमी सीमा पर स्थित है।

रतलाम जिले में पाँच तहसीलें हैं— रतलाम, जावरा, आलोट, सैलाना एवं बाजना। इस जिले में प्रमुख रूप से माही एवं मनाली नदियाँ बहती हैं।

रतलाम जिले का इतिहास अनेक उतार-चढ़ावों का साक्षी रहा है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान तक इस जिले में अनेक सांस्कृतिक सभ्यताओं को संचरणशील मानव ने जन्म दिया है जो समय के प्रवाह में अपनी छाप छोड़कर विलीन हो गयीं। लगभग प्रथम सहस्राब्दि ई०पू० में जनपदों एवं नगरों के अभ्युदय से पूर्व रतलाम जिले का क्षेत्र प्रागैतिहासिक एवं ताम्रशासीय संस्कृतियों का क्षेत्र रहा है। परमार काल में रतलाम क्षेत्र अत्यन्त समृद्ध रहा है, ग्राम बिलपांक में स्थित विरमाक्ष महादेव का मन्दिर चालुक्य शैली (परमार के समकालीन) का उदाहरण है।

रतलाम जिले में सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विभिन्न संगठनों की गतिविधियाँ चलती रहती हैं। संस्कृति को पल्लवित करने की वाटिका मांगल्य मन्दिर, शिवशक्ति साधना केन्द्र व नित्यानन्द आश्रम में देखी जा सकती है।

रतलाम जिले के प्राचीन मन्दिर/धार्मिक स्थलों में प्रमुख है बिलपांक का बिलकेश्वर का शैव मन्दिर, धराड़ का शिवमन्दिर, आलोट का धारोला शिवमन्दिर, शिपवारा मन्दिर, राजापुरा का गढ़खंखई माताजी का मन्दिर, सैलाना का केदारेश्वर महादेव मन्दिर, अमराजी मन्दिर, जावरा का अयाना महादेव का मन्दिर, जावरा की हुसैन टेकरी, रतलाम का कालिका माता मन्दिर, महालक्ष्मी मन्दिर, बरबड़ हनुमान मन्दिर, सागौद एवं बिबडौद जैन मन्दिर, ऊंकाला गणेश मन्दिर, गीता मन्दिर, रानीजी का मन्दिर, सिद्धिविनायक मन्दिर आदि। इनमें प्रमुख मन्दिर का विवेचन करना समीचीन होगा।

सैलाना का केदारेश्वर धाम— शिवगढ़ मार्ग पर सैलाना से 4 कि०मी० दूर सुरम्प पहाड़ियों के बीच स्थित धार्मिक स्थल केदारेश्वर धाम में शिव मन्दिर स्थापित है। श्रद्धालु केदारेश्वर महादेव मन्दिर का दर्शन व जलाभिषेक कर पुण्य लाभ लेते हैं। राजा जयसिंह ने सन् 1730 में सैलाना बसाया था, तब से लगभग केदारेश्वर का इतिहास भी है। वर्ष 1734 में महाराजा जयसिंह के समय से ही इस स्थल का नाम केदारेश्वर पड़ा। केदारेश्वर में वर्ष में दो बार— वैशाख एवं कार्तिक पूर्णिमा पर मेला लगता है। श्रावण मास में एवं शिवरात्रि पर यहाँ दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहता है। यहाँ तीर्थस्थल एवं पर्यटन स्थल— दोनों का लाभ श्रद्धालुओं को प्राप्त होता है।

गढ़खंखई माता का मन्दिर— प्राचीन समय में ऊच्वानगढ़ एवं रन्तललाम के नाम से पहचाने जानेवाला यह स्थल अब राजपुरा माताजी के नाम जाना जाता है। माँ गढ़खंखई का मन्दिर ऊँचाई पर ही है। इसके समीप हज़ारों फीट नीचे माही नदी बहती है। चैत्र नवरात्र में मन्दिर-परिक्षेत्र में नौ दिनों का मेला भी लगता है। इस मेले में हज़ारों वनवासी भाग लेकर माँ के सम्मुख नतमस्तक होते हैं। माँ गढ़खंखई के दरबार में मन्त्रों भी मांगी जाती हैं जो पूरी होने पर

श्रद्धालु धार्मिक अनुष्ठान भी करते हैं।

कालिका माता मन्दिर— यह रतलाम शहर के हृदय स्थल में स्थित प्रसिद्ध माँ कालिका का मन्दिर है। इस मन्दिर की स्थापना रतलाम राजपरिवार द्वारा की गई थी। मन्दिर के पास झाली तालाब नाम का तालाब है। यहाँ पर प्रति वर्ष चैत्र एवं शारदीय नवरात्र पर श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता है। शारदीय नवरात्र में यहाँ पर नगर निगम द्वारा मेला भी लगाया जाता है। मन्दिर के अन्दर तीन देवियों की मूर्तियाँ हैं। इनमें मध्य की मूर्ति बड़ी एवं आकर्षक है, यही माँ कालिका की मूर्ति है। मन्दिर के समीप ही माँ संतोषी, सीताराम, हनुमान्, झूलेलाल एवं लक्ष्मीनारायण का प्राचीन मन्दिर भी स्थित है।

बिबड़ौद जैन मन्दिर— रतलाम से 8 कि०मी० दूर स्थित प्राचीन जैन मन्दिर है। यहाँ पर केषरिया नाथजी भगवान् आदिनाथ की चामत्कारिक प्रतिमा है। बिबड़ौद में प्रतिवर्ष मेला भी लगता है जिसमें जैन एवं अन्य मतावलम्बी सम्मिलित होते हैं।

सागौद एवं करमदी जैन मन्दिर— रतलाम के निकट जैन मन्दिर है। करमदी में तीन मन्दिर हैं, जबकि सागौद में एक मन्दिर है।

बिलपांक का बिलकेश्वर शैव मन्दिर— बिलपांक में बिलकेश्वर का एक महत्त्वपूर्ण शैव मन्दिर है। मन्दिर का गर्भगृह एवं विशाल सभामण्डप सुरक्षित है, जबकि शिखर नष्ट हो चुका है। मन्दिर के चारों ओर चार उपमन्दिर भी हैं, जिनका अधिकांश भाग सुरक्षित है। मन्दिर का शिवलिंग भग्नावस्था में है। अन्मतराल की छत पर उमा-महेश्वर, अर्द्धनारीश्वर, शिव आदि की प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। मन्दिर के पास ही ग्रामवासियों की खुदाई से प्राप्त गुजरात के चालुक्य राजा जयसिंह, सिद्धराज का संवत् 1198 का एक पूर्ण अभिलेख प्राप्त हुआ है। यह शिवमन्दिर वास्तुशिल्प का श्रेष्ठ एवं विकसित उदाहरण है।

धराड़ का शिव मन्दिर— रतलाम जिले का धराड़ में स्थित शिवमन्दिर परमारकालीन मन्दिर वास्तुकला की सबल अभिव्यक्ति है। पुनर्निर्माण के कारण मन्दिर का मूल स्वरूप अब स्पष्ट दिखाई नहीं देता है। गर्भगृह तारकाकृत है, जिसमें पञ्चमुखी शिवलिंग विद्यमान है। इसी मन्दिर के शिखर ललाट बिम्ब पर एक वाराह-प्रतिमा है। प्रवेशद्वार पर शिव, नवदुर्गा, महिसासुरमर्दिनी की प्रतिमाएँ भी उत्कीर्ण हैं। परमारकालीन परम्परा को आगे बढ़ाता हुआ धराड़ का यह मन्दिर मालवा की सहिष्णुता को प्रदर्शित करता है।

सतरूण्डा माता का मन्दिर— रतलाम से 25 कि०मी० दूर तक छोटी पहाड़ी पर स्थित माँ सतरूण्डा का यह मन्दिर भी धार्मिक आस्था का केन्द्र है। माता को प्रसाद के रूप में मद्यपान कराया जाता है। नवरात्रि पर यहाँ श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता है।

इस प्रकार रतलाम जिले में सभी वर्ग धर्मावलम्बियों के ऐतिहासिक महत्त्व के मन्दिर एवं तीर्थस्थल हैं जो लोगों की आस्था के केन्द्र हैं। इन मन्दिरों ने संस्कृति के विकास महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।



13.

रतलाम जिले के ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल

डॉ० कमलेश मेहर

डॉ० नीरज सारवान

डॉ० सुशीला आर्य

मा लवा की माटी की भीनी-भीनी खुशबू देनेवाला जिला रतलाम मध्यप्रदेश के पश्चिमी भू-भाग पर बसा एक मिलनबिंदु है जहाँ गुजरात, राजस्थान और मालवा की लोक संस्कृतियों का सम्मिश्रण भाषा, त्योहार एवं वेशभूषा में देखने को मिलता है।

भौगोलिक दृष्टि से इस जिले की सीमा राजस्थान की भूमि को स्पर्श करती है तो प्राकृतिक दृष्टि से यह दो भागों में विभाजित है। जिले के पूर्वी भाग में मालवा का पठार है वहीं पश्चिमी क्षेत्र चट्टानी पहाड़ियों से पटा हुआ है। एक ओर विंध्याचल एवं अरावली पर्वत-शृंखलाओं ने अनेक छोटी-छोटी सरिताओं को अपने आँचल में स्थान दे रखा है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति ने भी अपनी सम्पूर्ण उदारता से इस जिले को हरियाली से आच्छादित कर मनमोहक एवं रमणीय बना रखा है। प्राकृतिक वैभव सम्पदा से भरपूर यह मालवा का एक उन्नत जिला है, यहाँ की जलवायु समशीतोष्ण है।

पुरातात्विक दृष्टि से रतलाम की प्राचीनता के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। किन्तु इतिहास के साहित्यिक साधनों के आधार पर रतलाम का ज्ञात इतिहास 450 वर्षों का है। रतलाम की लोककथाओं में यह मत प्रचलित है कि रतलाम नगर का पूर्व नाम रतनपुरी अथवा रत्नललाम था। मुगलकाल में रतलाम परगना मुगलों के अधीन था। शाहजहाँ ने जालोर के

तत्कालीन शासन रतनसिंह राठौड़ को जालोर (राजस्थान) के बदले मालवा में रतलाम की जागीर प्रदान की थी। रतनसिंह से बहुत पहले मुग़ल सम्राट् अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुल फजल ने *आइन-ए-अकबरी* में रतलाम को सूण मालवा का एक महल बतलाया है। सूबा मालवा की राजधानी उज्जैन थी। अपनी स्थापना से लेकर रतलाम के अन्तिम महाराज (1947 ई०) के राज्य तक यह जिला विद्रोह-विध्वंस, उन्नति-अवनति से जुड़ी बहुत-सी छोटी-बड़ी घटनाओं और गाथाओं का साक्षी रहा है।

आधुनिक रतलाम के विकास का श्रेय राजा रणजीत सिंह (1864-1893) के समय नगर के अधीक्षक मीर-मुंशी शाहमत अली को जाता है। रतलाम के तत्कालीन सुनियोजित बसाव, विस्तार और उनकी कल्पनाशीलता का ही परिणाम है। साथ ही तत्कालीन वास्तु, शिल्प एवं पाषाणकला को उकेरनेवाले अनेक निर्माण-कार्य उनके प्रयासों से ही रतलाम धरा की अमूल्य निधि बन सके हैं। साथ ही साथ रतलाम ज़िले के कई ऐतिहासिक धार्मिक, शिल्प एवं स्थापत्य कला के अनेक केन्द्र विकसित हुए, जिन्होंने यहाँ के इतिहास एवं संस्कृति को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया।

विरुपाक्ष महादेव मन्दिर, बिलपांक

रतलाम जिले के दक्षिण की ओर 18 किलोमीटर की दूरी पर महु-नीमच मुख्य मार्ग से पूर्व की ओर छोटा-सा गाँव बिलपांक बसा है। यहाँ पुरातत्वीय सम्पदा से भरपूर ऐतिहासिक एवं दर्शनीय विरुपाक्ष महादेव का अति प्राचीन मन्दिर स्थित है।

यह मन्दिर परमार, गुर्जर एवं चालुक्य (गुजरात) की सम्मिश्रित शिल्प शैली का अनुपम उदाहरण है। मन्दिर का शिल्प-सौन्दर्य तथा स्थापत्य उस काल की शिल्प शैली का परिचय देता है। मन्दिर में गर्भगृह, अर्धमण्डप तथा सभामण्डप निर्मित है। सभामण्डप की दीवारों पर विभिन्न वाद्य यंत्रों के साथ नृत्यांगनाओं को आकर्षक मुद्राओं में दर्शाया गया है। सभामण्डप में स्थापित मौर्यकालीन स्तम्भ इस बात का प्रमाण देता है कि यह मन्दिर मौर्य काल में अस्तित्व में था। इस स्तम्भ पर हंस और कमल की आकृतियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर में लगे स्तम्भ तत्कालीन शिल्पकला की उत्कृष्टता की छाप छोड़ते हैं।

मध्य में मुख्य मन्दिर के चारों कोनों में चार लघु मन्दिर हैं। पञ्चायतन शैली के इस मन्दिर में जैन, सनातन, बौद्ध एवं मुस्लिम शिल्पकला का लाजवाब संगम नज़र आता है। खुदाई के दौरान प्राप्त शिलालेख की शब्द-रचना तत्कालीन चक्रवर्ती कवि जैनाचार्य श्री पाल ने की थी। उन्होंने मात्र एक दिन में ही शिलालेख के 30 श्लोकों के महाप्रबन्ध को रचा था। शिलालेख पर शब्द-टंकन गंगाधर नामक ब्राह्मण-शिल्पी द्वारा किया गया था। वास्तुशिल्प की यह अप्रतिम धरोहर आज भी अपने निर्माण के प्रामाणिक इतिहास की प्रतीक्षा कर रही है।

केदारेश्वर महादेव मन्दिर, सैलाना

रतलाम से 20 किलोमीटर दूर सैलाना जिले की एक आदिवासी बहुत तहसील है। यहाँ से 4

किलोमीटर दूर शिवगढ़ मार्ग पर विंध्य पर्वतमाला के सुरम्य एवं रमणीय पर्वतों के बीच ऐतिहासिक मन्दिर स्थित है। सन् 1736 ई० में सैलाना के राजा जयसिंह के शासनकाल में यह मन्दिर केदारेश्वर महादेव मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्कालीन राजा दुलेसिंह (1859-1895) ने इस मन्दिर एवं जलकुण्ड का निर्माण करवाया था। यहाँ का शिवलिंग स्व-प्रकट माना जाता है। शिवलिंग के पार्श्व में शंकर-पार्वती, गणेश जी एवं हनुमान् जी की प्रतिमाएँ भी दर्शनीय हैं। यहाँ का नागफणी उद्यान (कैक्टस गार्डन) एशिया में प्रसिद्ध है।

मुख्य सड़क के नीचे मन्दिर की ओर जाने का मार्ग पहाड़ों को चीरकर बनाया गया है। यहाँ प्रातःकाल में स्वर्णिम प्रभात, हरी-भरी धरती और प्रकृति के समस्त उपदान मन को मोह लेते हैं। पहाड़ी के तलहटी पर मन्दिर बना है। मन्दिर के सामने एक बड़े जलकुण्ड में वर्षा के समय ऊँचाई से गिरनेवाला झरना इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य में वृद्धि करता है। यहाँ निर्मित स्तम्भों एवं छतरियों की शिल्पकारी राजपूतकालीन है। शिवरागी एवं वैशाख पूर्णिमा को यहाँ मेला लगता है।

कालिका मन्दिर, रतलाम

कालिका मन्दिर नगर का सबसे प्रमुख एवं प्राचीन मन्दिर है। गर्भगृह के मध्य कालिका मन्दिर की प्रतिमा, एक और चामुण्डा तथा दूसरी ओर दक्षिणावर्ती सँडवाले गणपति विराजित हैं। गणपति के समीप अन्नपूर्णा की प्रतिमा है। उसके सामने शिवलिंग है। ये देवी रतलाम के राजवंश की कुलदेवी हैं। रतलाम नगर के नागरिक कालिका माता के मन्दिर को जागृत और पवित्र मानते हैं। मन्दिर के द्वार चाँदी के बने हैं, जिन पर कृष्ण, काली, हनुमान्, राम, सरस्वती एवं गणपति की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इस क्षेत्र में प्रतिवर्ष शारदीय नवरात्र में नवदिवसीय भव्य मेले का आयोजन किया जाता है जो व्यापारिक समागम के साथ-साथ संस्कृतियों के मिलन का केन्द्र बिन्दु है।

झाली तालाब, रतलाम

मान्यता है कि तत्कालीन रतलाम के विकास-क्रम में स्थापत्यकला के साथ-साथ तंत्रशास्त्र पर आधारित तालाबों एवं मार्गों का निर्माण भी हुआ है। कालिका माता मन्दिर के सामने कलात्मक अष्टकोणीय झाली तालाब एवं वर्तमान दो बत्ती पर बना छः मार्गों को परस्पर जोड़नेवाला षण्मार्ग इस सत्य के विश्वसनीय उदाहरण हैं। माना जाता है कि इनके निर्माण के बाद अनेक तान्त्रिकों ने इस तालाब एवं षण्मार्ग के किनारे बैठकर तंत्र साधना की थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय रतलाम के तत्कालीन महाराजा सज्जन सिंह द्वारा युद्ध में भागीदारी करने पर उनकी कुशलता का अनुष्ठान भी इसी तालाब के किनारे सम्पन्न किया गया था।

तत्कालीन राजा रणजीत सिंह (1864-1893) की पहली पत्नी महारानी राजकुँवर झाली की स्मृति में निर्मित इस राजसागर तालाब का मुहूर्त 15 जनवरी, 1883 को किया गया था। 52 सीढ़ियों तथा 86 फीट गहरे, तराशे गए लाल-गुलाबी पाषाणों से निर्मित इस तालाब

की ऐतिहासिक एवं धार्मिक आस्था के केन्द्र के रूप में है। वर्तमान में यह झाली तालाब के नाम से जाना जाता है।

रानीजी का मन्दिर

नगर के धानमण्डी क्षेत्र में स्थित 'भैरव अजब कुंजबिहारी' के भव्य एवं कलात्मक मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा अब से 110 वर्ष पहले रतलाम राज्य के तत्कालीन राजा भैरो सिंह की पत्नी महारानी अजब कुँवर ने की थी।

मन्दिर में राधा-कृष्ण की प्रतिमा विराजित है। मन्दिर की बाहरी दीवारों पर चारों ओर विभिन्न आकृतियों में आकर्षक पुतलियाँ निर्मित हैं। महारानी अजब कुँवर कृष्णभक्त थीं और कृष्ण की भक्ति में इतनी गहराई तक डूबी थीं कि लोग उन्हें 'रतलाम की मीरा' कहते थे। रामानुज सम्प्रदाय के महंत ओंकारदासजी उनके गुरुदेव थे एवं उनसे ही महारानी ने दीक्षा ग्रहण की थी। वर्तमान में यह मन्दिर 'रानीजी का मन्दिर' के नाम से पहचाना जाता है।

यह मन्दिर एक महान् घटना का भी साक्षी है। रतलाम के तत्कालीन महाराजा लोकेन्द्र सिंह ने महात्मा गाँधी के विचारों से प्रेरित होकर, अस्पृश्यता को मानव समाज का कलंक मानते हुए 24 अक्टूबर, 1947 को हजारों नागरिकों की उपस्थिति में शहर के हरिजनों को इस मन्दिर में प्रवेश दिलाते हुए सम्मानित किया था।

रणजीत विलास पैलेस, रतलाम

रणजीत विलास पैलेस भारतीय इतालवी वास्तुकला की एक अनुपम कृति है। रतलाम के प्रथम शासक रतनसिंह ने सर्वप्रथम राजपुताना शिल्पशैली में एक गढ़ी का निर्माण कराकर उसमें एक महल बनवाया था। इसी पीढ़ी के राजा रणजीत सिंह जब दो वर्ष के थे, उनके कार्यकाल में ही इस महल का भव्यता एवं कलात्मक स्वरूप देकर रणजीत पैलेस नाम दिया गया। पैलेस में झरोखों का अधिक निर्माण राजपरिवार की महिलाओं के लिए किया गया था। अंदर बने दरबार हॉल की बनावट आकर्षित करती है। हॉल में निर्मित स्तम्भ उसकी विशालता को बढ़ाते हैं, स्तम्भों के ऊपर गुम्बद में काँच तथा उस पर लगी लोहे की सुरक्षा जालियाँ दरबार हॉल की प्रकाश-व्यवस्था बनाए रखती हैं। फर्श के लिए संगमरमर का कलात्मक उपयोग किया गया है। पैलेस में पक्षी चित्रवाले वॉल पेपर कहीं-कहीं आज भी पैलेस की शोभा बढ़ा रहे हैं। इसके भीतरी हिस्से में बग़ीखाना, अस्तबल, टकसाल, शस्त्रागार आदि का निर्माण भी किया गया था। वर्तमान में पैलेस के अधिकतर हिस्से जीर्ण-शीर्ण हैं। प्राचीन रतलाम का यह ऐतिहासिक राजमहल आज भी इस नगर की अमूल्य ऐतिहासिक धरोहर है। उसका उचित संरक्षण किया जाना चाहिए एवं पर्यटन-केन्द्र के रूप में विकसित किया जाना उचित है।

गढ़खंखई माता मन्दिर, बाजना

मालवा अंचल का परमार परिवार काल में स्थापत्य तथा शिल्पकारों में चतुर्दिक् विकास हुआ।

इसी के परिणामस्वरूप हमें यत्र-तत्र सर्वत्र वैभव के अवशेष देखते को मिलते हैं। ऐसा स्थल रतलाम-बाजना मार्ग पर रतलाम से लगभग 35 किलोमीटर दूर जिले का परमारकालीन गढ़खंखई माताजी (राजापुरा) का प्रसिद्ध मन्दिर है, जो उच्चानगढ़ के नाम से भी जाना जाता है। आदिवासी समाज के लिए श्रद्धा का केन्द्र माताजी मन्दिर पाँच सौ वर्ष पुराना है। यहाँ चैत्र नवरात्र में तीन दिन— सप्तमी से नवमी तक मेला लगता है। मेले में मुख्य रूप से आदिवासी समाज के लोग ही आते हैं। एक दशक पूर्व तक बलि-प्रथा का प्रचलन था।

यह स्थल विंध्य पर्वत के पठार पर स्थित प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी अत्यन्त सुन्दर है। यह करन और माही नदी के समीप है। देवालय के दक्षिण-पश्चिम की ओर माही और उत्तर में करन नदी है। यहाँ से 3 किलोमीटर दूर दोनों नदियों का संगम स्थल अत्यन्त सुरम्य है।

इस प्रकार रतलाम जिले आभिलेखिक साधन-स्रोतों में कई स्थान मिलते हैं। आवश्यक है कि सभी आभिलेखिक सामग्री का सर्वेक्षण कर उन्हें एकत्र कर प्राचीन स्थान, नामों की पहचान की जाये। इससे रतलाम के प्राचीन ऐतिहासिक सांस्कृतिक गौरव के कई अज्ञात पृष्ठ उजागर होंगे व भारतीय इतिहास के प्राचीन पक्ष में इस जिले के ज्ञात एवं विलुप्त इतिहास को स्थान मिलकर सम्पूर्ण विस्तृत परिप्रेक्ष्य में इसका आकलन होगा। पुरातन रतलाम के तत्कालीन स्थापत्य कला से भरपूर अनेक स्थलों से इस समूचे जिले को समृद्धशाली बनाया है। जिले की यह प्राचीन धरोहर विगत कई दशकों से इतिहासकारों एवं पुरातत्त्वविदों को भी आमन्त्रित करती आ रही है।

सन्दर्भ :

1. रतलाम एक संक्षिप्त परिचय, रतलाम जिला प्रशासन द्वारा प्रसारित, सूचना प्रकाशन विभाग, रतलाम
2. रतनसिंह का संक्षिप्त जीवन चित्रण, नारायण गणेश सिसलाकर, 1894
3. भारतीय संस्कृति, प्रभाकर माचवे और सी०पी० छाजेड़ पत्रिका
4. जिला पुरातत्त्व संघ, रतलाम, म०प्र०





14.

नरसिंहगढ़ तहसील के ऐतिहासिक मन्दिर

मुकेश कुमार जाटव

शोधार्थी, डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

भा रतवर्ष के प्राचीन इतिहास में नगरों का अपना विशिष्ट स्थान रहा है। साथ ही इस महत्त्व को अक्षुण्ण बनाने के लिये मनीषियों ने इन नगरियों के साथ धार्मिक महत्त्व भी जोड़ दिया ताकि अपने महत्त्व को चिरस्थायी रख सकें। राजगढ़ का प्राचीन नाम झंझनीपुर था। राजगढ़ जिले की प्राचीनता आदि मानव के सांस्कृतिक विकास क्रम से जुड़ी हुई है।

जिला ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्वीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। नरसिंहगढ़ के विहार कोटरा से प्राप्त प्रस्तर, उपकरण शैलाश्रय उनमें प्राप्त चित्रों में इसकी पुष्टि होती है। तलेन नामक गाँव से भी ताम्रश्मयुगीन संस्कृति के अवशेष प्रकाश में आये हैं।

मध्यकाल में इस भूभाग पर परमारों का शासन रहा। धार के परमारों की एक शाखा इस क्षेत्र में स्थापित हो गयी। उमट परमारों के कारण यहाँ भूभाग उमटवाड़ी कहा जाने लगा। मुस्लिम-काल में इस भूभाग पर खीचियों का भी आधिपत्य रहा। कोटरा स्थित हाजीवली दरगाह, साका की छतरी विशेष उल्लेखनीय है। श्यामसिंह खीची की 17वीं शती की छतरी राजपूत कला एवं स्थापत्य-कला की उत्कृष्ट कृति है। परमारों के शासनकाल में शैव-वैष्णव, शाक्त एवं जैन मतों के चरमोत्कर्ष का काल था।

नरसिंहगढ़, भोपाल से 85 किमी दूर दक्षिण-पश्चिम में राष्ट्रीय मार्ग क्रमांक 12 पर

स्थित है। यह 23°41' उ० अक्षांश एवं 77°5' पू० देशान्तर पर अवस्थित है। इस राज्य की स्थापना परसराम जी ने सन् 1681 ई० में की। परमार-शासकों का काल अन्य शासकों की तुलना में स्वर्ण युग माना जाता है।¹

नरसिंहगढ़ राज्य में परमार शासकों द्वारा बनाए गए मन्दिरों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

श्री नृसिंह मन्दिर – नगर के प्रथम शासक रावत परसराम जी ने 1681 में नृसिंह मन्दिर का निर्माण कराया, क्योंकि भगवान् नृसिंह परसराम जी के कुलदेवता हैं। इसी के आधार पर नगर का नाम नरसिंहगढ़ रखा गया है। अष्टधातु की यह प्रतिमा 280 किग्रा वजनी है। इस प्रतिमा को नेपाल से मँगाया गया था।²

परसराम सागर व जल मन्दिर— यह मन्दिर भी प्रथम शासक परसराम जी द्वारा 1681 में बनवाया गया। तालाब और नगर का सौन्दर्य निहारने के लिये इसके बीच जल मन्दिर बनवाया। यहाँ भगवान् शिव के पशुपति स्वरूप की स्थापना की गई। शरद पूर्णिमा पर प्रतिवर्ष यहाँ बड़ा उत्सव मनाया जाता है।³

श्री वैजनाथ शिवालय— ‘बड़ा महादेव’ के नाम से प्रसिद्ध दसवीं शताब्दी के इस शिवालय के आसपास लगभग एक हजार वर्ष पूर्व आदिवासियों की बस्ती टोपल्या महादेव के नाम से आबाद थी। नरसिंहगढ़ की स्थापना से पूर्व से यहाँ मन्दिर पूजा जाता रहा है। मन्दिर के ऊपरी हिस्से में देवी पार्वती की दुर्लभ चतुर्भुजी प्रतिमा और परमारकालीन शिवालय स्थित है।⁴ अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में महाराज हनवन्त सिंह ने इसे वर्तमान स्वरूप प्रदान किया। काशी विश्वनाथ की परम्परा के अनुसार यहाँ हर वर्ष महाशिवरात्रि पर शिवविवाह की रस्म निभाई जाती है। इस दौरान यहाँ पर पन्द्रह दिन का मेला भी लगता है। यहाँ पर बारह महीने पहाड़ों के बीच से झरना बहता रहता है। प्रतिवर्ष श्रावण मास में बड़ी संख्या में श्रद्धालु दर्शन के लिये आते हैं। श्रावण मास में एक माह का मेला लगता है।

श्री बड़बड़ी हनुमानगढ़ी— सन् 1681 में नगर-स्थापना के शुरुआत में इस स्थान पर किले का निर्माण किया जा रहा था। एक आलौकिक संकेत के आधार पर रावत परसराम जी ने यह किला-निर्माण रोककर सामने पूर्व की पहाड़ी पर किला का निर्माण किया। यहाँ विराजित प्रतिमा को नगररक्षक माना जाता है। कहा जाता है कि यहाँ प्रतिमा बरगद के पेड़ को फाड़कर भाद्रपद मास में दिन के 12 बजे प्रकट हुई। इस प्रतिमा का मुख ईशान कोण में है। अयोध्या की ओर मुँह किये हनुमान् जी की यहाँ प्रतिवर्ष हनुमज्जयन्ती पर भव्य आयोजन होता है।⁵

गढ़कालिका— यह प्राचीन मन्दिर कोटरा के जंगल के पहाड़ों पर अवस्थित है। यहाँ पहाड़ों के बीच से रास्ता जाता है। यहाँ के राजा माता से प्रत्यक्ष रूप से बात किया करते थे। भारत में गढ़कालिका के मात्र तीन मन्दिर हैं— 1. कलकत्ता में, यह प्रतिमा खड़ी हुई है; 2.

उज्जैन में, यह प्रतिमा बैठी हुई है और 3. नरसिंहगढ़ में, यह प्रतिमा नरसिंहगढ़ के कोटरा ग्राम के मन्दिर में लेटी हुई अवस्था में है।⁶

श्याम जी का मन्दिर— 17वीं शताब्दी का यह मन्दिर नरसिंहगढ़ से 20 किमी दूरी पर स्थित है। यह देवनारायण के नाम से भी जाना जाता है। इसका निर्माण राजपूत शासक श्यामसिंह खीची की पत्नी महारानी भाग्यवती द्वारा कराया गया है। मन्दिर में लक्ष्मीनारायण की प्रतिमा विराजित है। मुख्य मन्दिर पर धार्मिक दृश्यों का अंकन है। इसके पूर्व की दिशा की ओर गणेश, भैरव, द्वारपाल के अंकनवाला शिव मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर नागर शैली में बना हुआ है।⁷

श्री रघुनाथ जी मन्दिर— नरसिंहगढ़ के द्वितीय शासक रावत मोतीसिंह जी ने एक आलौकिक संकेत के आधार पर 1765 में इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। यहाँ स्थापित भगवान् राम की प्रतिमा को नगर का राजा मानकर उमट परमार राजवंश ने शासन किया। प्रतिवर्ष दशहरा महोत्सव यहीं से शुरू होता है।⁸

श्री करणीमाता मन्दिर— करणीमाता के मन्दिर पूरे भारत में केवल दो ही मन्दिर हैं— बीकानेर और मध्यप्रदेश के नरसिंहगढ़ में। यहाँ शक्ति के दुष्ट संहारिणी स्वरूप के विग्रह की स्थापना 1940 में तत्कालीन शासक महाराज विक्रम सिंह ने करवायी थी।⁹

श्री कँवररानी जी का मन्दिर— अंग्रेजों के साथ युद्ध करते हुए 1824 ई० में शहीद हुए नरसिंहगढ़ रियासत के राजकुमार कुचैन सिंह की स्मृति में उनकी पत्नी ने राम-सीता मन्दिर का निर्माण करवाया। नगर की सबसे विशाल सीताराम जी की प्रतिमा यहाँ स्थापित है। मन्दिर में मालवा शैली में पौराणिक प्रसंग चित्रित हैं।

जगदीश मन्दिर— महाराज हनवन्त सिंह के शासनकाल में 1910 में इसका निर्माण हुआ। एक बार रानी ने राजा से जगदीशपुरी जाने की ज़िद की। राजा ने मना कर दिया। तभी रानी ने अनशन ले लिया और शरीर मरणासन्न हो गया। तब राजा ने उनसे पूछा कि आप कहें तो मैं जगदीश मन्दिर यहीं पर बनवा दूँ जिससे आप दर्शन कर सकें। रानी ने मान लिया। राजा ने तत्काल मन्दिर-निर्माण की आज्ञा दी। रानी दर्शन कर वशीभूत हो गयी और जगदीश (जगन्नाथ स्वामी), बलभद्र और बहन सुभद्रा— तीनों की स्थापना की। प्रतिमा बड़ी ही विचित्र और दर्शनीय है। नरसिंहगढ़ के गणमान्य लोगों ने संवत् 1968 में रथयात्रा महोत्सव प्रारम्भ किया। महोत्सव में जगदीश का भात बँटता है। कहावत है— ‘जगदीश का भात जगत पसारे हाथ’। जगन्नाथपुरी की परम्परानुसार रथयात्रा प्रारम्भ की जो आज भी जुलाई माह में निकाली जाती है।¹⁰

राम, सीता, लक्ष्मण मन्दिर— इस विशाल मन्दिर का निर्माण किले के पास किया गया है। इसमें विराजित प्रतिमा चाँदी की थी एवं सोने के मुकुट थे। लेकिन वर्तमान में केवल

प्रस्तर की शिला रखी हुई है। इसके सामने पूर्व दिशा में हनुमान् जी का मन्दिर बना हुआ है।¹¹

सन्दर्भ :

1. पंकज, राग, राजगढ़ का पुरातत्त्व, पृ० 123.
2. मन्दिर के सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त जानकारी
3. वही
4. वही
5. मन्दिर के सर्वेक्षण के दौरान महंत पं० रामदास तिवारी से प्राप्त जानकारी
6. मन्दिर के सर्वेक्षण के दौरान पं० कमलेश वैष्णव से प्राप्त जानकारी
7. पंकज, राग, पूर्वोक्त, पृ० 152
8. मन्दिर के सर्वेक्षण के दौरान पं० विनोद कुमार मेहता से प्राप्त जानकारी
9. सर्वेक्षण के दौरान पत्रकार योगेश मैथिल से प्राप्त जानकारी
10. मन्दिर के सर्वेक्षण के दौरान पं० गोपाल दीक्षित से प्राप्त जानकारी
11. सर्वेक्षण के दौरान स्थानीय लोगों से प्राप्त जानकारी





15.

कमाली का मन्दिर

कविता मालवीय

शोध-छात्रा, भोपाल

भा रत के कोने-कोने में संतों, महात्माओं, पवित्र मन्दिरों की श्रृंखला विद्यमान है। इस पावन भूमि पर श्रद्धा और विश्वास की गंगा-जमुना प्रत्येक हृदय में चलायमान है, जहाँ आस्था और हठयोग ने बड़े-बड़े राजों का मानमर्दन किया और उनके विश्वास पर विश्वास करने को विवश किया।

ऐसे ही अनूठे विश्वास की एक छोटी सी कथा भारत देश के मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में स्थित कमाली मन्दिर की स्थापना की है।

बात उन दिनों की है, जब भोपाल में नवाबों का शासन था, तभी किसी अज्ञात स्थान से एक पुण्यात्मा संत शिरोमणि योगी श्री कमाली बाबा, जिन्हें कमलदास के नाम से भी जाना जाता है, यहाँ आए और आज का कमाली मन्दिर जो उन दिनों नवाब के बगीचे के रूप में था, यहां विश्राम करने के उद्देश्य से रुक गये।

कमाली बाबा मूल रूप से चैतन्य महाप्रभु, जिन्होंने सर्वप्रथम कीर्तन की शुरुआत की थी, के अनुयायी थे तो स्वभावतः वे भजन-कीर्तन गाया करते थे। संतश्री एक पीपल के वृक्ष के नीचे रहने लगे, वह प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में भजन-कीर्तन के पश्चात् अपना एक विशेष शंख बजाया करते, शंख का यह नाद, नवाब बहादुर के आराम में खलल डालता तब नवाब ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया कि जाओ, पता लगाओ कि ये कौन हमारे बगीचे में रहने लगा है

और डरा-धमकाकर इस शंख की आवाज को बंद करवाओ। किन्तु बाबा का शंख सूर्य की किरणों के साथ नियम से प्रातः बजता। नवाब को बहुत गुस्सा आया उन्होंने संत की हत्या का आदेश दिया, जब उनके सिपाही संतश्री को मारने गये तो बाबा को अचेतावस्था में पाया, सिपाहियों को लगा चलो एक हत्या से बचे और शंख से पीछा भी छूट गया, अगले दिन शंखनाद फिर सुनाई दिया। नवाब ने संत के अंग-भंग करने के आदेश दिये, सिपाही जब बाबा के सम्मुख गये तो उनका शरीर वहाँ पहले से ही क्षत-विक्षत अवस्था में था, वे वापस आए और नवाब को सारा हाल सुनाया, नवाब को निश्चय हो गया कि अब इस शंखनाद से उन्हें छुटकारा मिल गया है। अगली सुबह फिर शंख बजा, तब नवाब स्वयं बाबा से मिलने आए और बाबा की शक्ति को माना।

यह ठीक वही समय था जब भोपाल रियासत की राजनैतिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन हो रहा था, यह वह समय था जब भोपाल में बेगमों का शासन प्रारम्भ हो रहा था। जनश्रुतियों के अनुसार भोपाल रियासत की पहली बेगम कुदसिया सुल्ताना, जो कमाली बाबा के आशीर्वाद से ही गद्दी पर बैठी थी और इससे प्रसन्न होकर व बाबा के चमत्कारिक रूप से प्रभावित होकर ही उन्होंने बेगम कुदसिया ने ही कमाली बाबा को ताम्रलिपी पर यहाँ ठहरने की अनुमति दे दी और अपने बगीचे में आठ एकड़ ज़मीन उन्हें भेंट स्वरूप दी।

इस तरह बाबा की ख्याति बढ़ने लगी। कुछ समय प्रश्चात् जब बेगम शाहजहाँ सिंहासन पर बैठीं, उनका एक मूल्यवान् हार गुम हो गया, सभी जगह ढूँढ़ने पर जब उनका हार नहीं मिला तब वे बाबा के पास आईं। बाबा ने उन्हें देखा और उनके एक शब्द कहे बिना ही उन्होंने उन्हें उनके आने का प्रयोजन बताते हुए कहा कि उनका हार उनके तख्त के नीचे एक लाल कपड़े में रखा हुआ है, तब बेगम बाबा के पास ही रुकीं और उनके सिपाही महल में जाकर उनका हार बाबा के बताए स्थान से प्राप्तकर बेगम के पास ले आए। तब बेगम शाहजहाँ ने प्रसन्न होकर मन्दिर का निर्माण-कार्य पूर्ण करवाया।

कमाली बाबा की आस्था की गंगा न केवल जनसाधारण में वरन् सम्पूर्ण राजशासन में भी बह रही थी, तभी कुदसिया बेगम से लेकर शाहजहाँ बेगम व बाद में नवाब साहब तक यह परम्परा चलती रही। वास्तव में कुदसिया बेगम की पुत्री सिकन्दरजहाँ बेगम, जिन्होंने मोती मस्जिद का निर्माण 1860 में किया था, ने ही कमाली मन्दिर का निर्माण-कार्य लगभग इसी समय प्रारम्भ कर दिया गया था; जबकि शाहजहाँ बेगम, जिन्होंने ताजुल मस्जिद का निर्माण प्रारम्भ करवाया था, ने कमाली के मन्दिर का निर्माण पूर्णरूपेण सम्पन्न करवाया (इससे पूर्व खुले प्रांगण में बाबा पूजा-अर्चना करते थे), अर्थात् कमाली मन्दिर का निर्माण लगभग 1860 से 1870-85 तक माना जा सकता है।

जब बाबा की ख्याति बढ़ रही थी, तभी किन्हीं आसामाजिक तत्त्वों की ईर्ष्या भी बढ़ रही थी, जिसके परिणामस्वरूप कुछ आसामाजिक तत्त्वों ने कमाली मन्दिर व बाबा को नुकसान पहुँचाने के उद्देश्य से मन्दिर पर हमला किया, तभी नवाब हमीद-उल्लाह-खान ने मन्दिर की

सुरक्षा के लिये एक निगेबाह चौकी स्थापित की जो कालान्तर में हनुमानगंज चौकी व आज हनुमानगंज थाने के रूप में विद्यमान है।

यहाँ इतिहास का एक रोचक पहलू सामने आता है। जहाँ कुछ समय पूर्व कालविशेष में मन्दिरों को तोड़ा जा रहा था, वहीं कमाली बाबा के कमाल से यहाँ कमाली मन्दिर की स्थापना की गयी थी।

इस मन्दिर के ट्रस्टी जी ने बताया कि भोपाल रियासत के अंतर्गत आनेवाले सारे फरियादी पहले यहाँ कमाली बाबा के पास आकर ठहरते थे, तत्पश्चात् महल जाया करते थे।

कमाली बाबा न सिर्फ धर्म से जुड़े थे, वरन् समाज सेवक भी थे, उन्होंने मन्दिर के अंतर्गत ही बच्चों के देखभाल के लिए अनाथाश्रम की स्थापना की। आज भी मन्दिर ट्रस्ट की ओर से अनाथाश्रम की देखभाल की जा रही है।

मन्दिर बनने से पूर्व 17वीं-18वीं शती में जब बाबा यहाँ आकर रुके थे, सर्वप्रथम पूर्वमुखी श्रीराधाकृष्ण और दक्षिणमुखी स्वयंभू श्रीहनुमान् की मूर्तियाँ स्थापित कीं और इस तरह यहाँ कमाली के मन्दिर की स्थापना हुई और इस क्षेत्र को हनुमानगंज क्षेत्र के रूप में प्रसिद्धि मिली, जो भोपाल में नवाबी दौर से लेकर वर्तमान तक एक जाना-पहचाना स्थान है। यह आज पुराने भोपाल के एक मुख्य व्यावसायिक क्षेत्र के रूप में भी जाना जाता है। इस मन्दिर में राधाकृष्ण और हनुमान् जी के अतिरिक्त माताजी की मड़, जिसे चौरासी देवों का गढ़ माना जाता है, बलदाऊ जी, कमाली बाबा का मन्दिर एवं बाबा जी की समाधि-स्थल है। सबसे नवीन स्थापित मूर्ति श्री वैष्णव देवी की अम्बे रूप में (माँ शेरावाली) के रूप में है।

आज भी यहाँ तीन प्राचीन वृक्ष विद्यमान हैं— पीपल, जिसके नीचे बाबा ध्यान रमाते थे, बरगद व कदम्ब। पहले यहाँ श्रावण मास में मेला लगा करता था।

वर्तमान में मन्दिर का पुनर्विकास-कार्य गतिमान है, जिसकी देखभाल कमाली मन्दिर ट्रस्ट द्वारा की जा रही है, जिसकी स्थापना अक्टूबर, 1964 में की गयी थी। इसके वर्तमान अध्यक्ष महंत श्री राधामोहन दास हैं।

हनुमानगंज थाने से लगा यह मन्दिर भोपाल रेलवे स्टेशन से करीब 2 किमी० पर है। नादिरा बस स्टैण्ड से एक किमी० है। कमाली मन्दिर के तीनों ओर घोड़ा निक्कास, सब्जीमण्डी व हमीदिया रोड विद्यमान है।

श्री कमाली मन्दिर के महंत

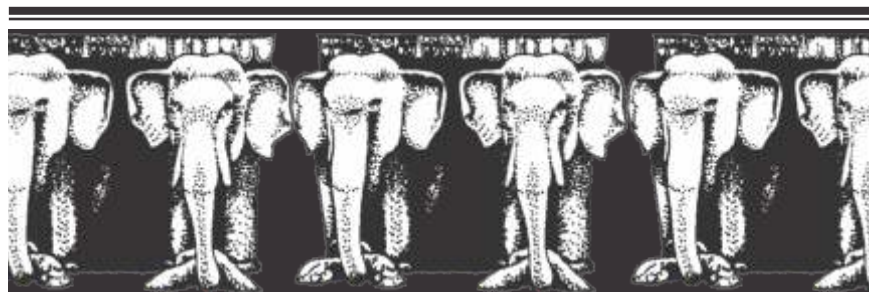
1. परम पूज्य संत शिरोमणि (योगीराज) श्री कमाली जी महाराज (मन्दिर-संस्थापक) (ब्रह्मलीन)
2. पूज्य श्री महंत सारंग दास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
3. पूज्य श्री महंत लक्ष्मण दास जी महाराज (ब्रह्मलीन)

4. पूज्य श्री महंत कुमारदास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
5. पूज्य श्री महंत रामदास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
6. पूज्य श्री महंत मानदास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
7. पूज्य श्री महंत कल्याण जी महाराज (ब्रह्मलीन)
8. पूज्य श्री महंत लक्ष्मणदास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
9. पूज्य श्री महंत सेवादास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
10. पूज्य श्री महंत नारायणदास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
11. पूज्य श्री महंत हीरानन्द जी महाराज (ब्रह्मलीन)
12. पूज्य श्री महंत जमुना जी महाराज (ब्रह्मलीन)
13. पूज्य श्री महंत चरणदास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
14. पूज्य श्री महंत भगवतदास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
15. पूज्य श्री महंत मदनमोहन दास जी महाराज (ब्रह्मलीन)
16. पूज्य श्री महंत राधामोहन दास जी महाराज (ब्रह्मलीन)

भोपाल में उपस्थित बिड़ला मन्दिर, गुफा मन्दिर, खेड़ापति मन्दिर, गणेश मन्दिर, माँ काली मन्दिर, करश्यूवाली माता का मन्दिर आदि के बीच कमाली बाबा के कमाली मन्दिर का उल्लेख आपके सम्मुख मन्दिर की लोकप्रियता भोपाल से बाहर न केवल भारत, अपितु विश्वस्तर पर लोगों के ध्यान में लाना है।

सन्दर्भ :

1. मन्दिर के मुख्य पुरोहित संत श्रीश्री 108 मदनमोहन दास जी महाराज से वार्तालाप के आधार पर
2. सर्वश्री वृजेश शर्मा जी (प्रबन्ध न्यासी, कमाली मन्दिर), सत्यनारायण वर्मा (पत्रकार), राजकुमार नाथ जी से वार्तालाप के आधार पर
3. दास्तान-ए-भोपाल





16.

मुरैना के प्रमुख शिव-मन्दिरों का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ० सुनील कुमार सक्सेना

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय कमला राजा कन्या स्वशासी

महाविद्यालय, ग्वालियर

अशोक सिंह नरवरिया

शोध-छात्र, इतिहास, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर

वर्तमान मुरैना, भारतीय गणराज्य के मध्यप्रदेश के उत्तर में स्थित एक अत्यन्त महत्वपूर्ण जिला है। मुरैना चम्बल सम्भाग का सम्भागीय कार्यकाल भी है जिसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण एवं राज्य पुरातत्त्व सर्वेक्षण के आधीन किये गये विभिन्न पुरातात्विक उत्खननों से यहाँ पर मानव जीवन के संकेत अत्यन्त प्राचीन काल से मिलते हैं।

मुरैना अत्यन्त प्राचीन रहा है तथा यहाँ से ऐतिहासिक सूचनाएँ छठी शताब्दी से ही प्राप्त होती हैं। इससे पूर्व के काल की सूचनाएँ भी हमें इस क्षेत्र से उपलब्ध साक्ष्यों से प्राप्त होती हैं। इस क्षेत्र के उत्खननों एवं पुरातात्विक साक्ष्य इस क्षेत्र के इतिहास का दो लाख वर्ष प्राचीन होने के प्रमाण मिलते हैं।

मुरैना जिला चम्बल संभाग में मध्यप्रदेश के पश्चिम-उत्तर कोने में स्थित है। कहा जाता है कि मुरैना जिला में मोर पक्षी बहुतायत में पाया जाता है। अतः इसी आधार पर मुरैना का नामकरण किया गया है। मुरैना जिला को 'मध्यप्रदेश का प्रवेशद्वार' कहा जाता है। मुरैना जिले के दक्षिण-पश्चिम में कोटा जिला, उत्तर-पश्चिम में सवाई माधोपुर एवं धौलापुर जिला स्थित है जो राजस्थान राज्य में है। उत्तरप्रदेश का आगरा जिला मुरैना के दक्षिण में, मध्यप्रदेश का भिण्ड जिला पूर्व में स्थित है एवं श्योपुर जिला भी मुरैना के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पार्वती नदी

द्वारा घिरा हुआ है। नदियों की ये स्थिति ऐसी लगती है जैसे कोई सैनिक जिले की रक्षा कर रहा है। यह जिला चंबल घाटी का प्रसिद्ध जिला है। जिले की सीमाएँ प्राकृतिक हैं जो चम्बल एवं पार्वती के अलावा, आसन तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा बनाई गई है।

मुरैना जिला का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 11,594 वर्ग किमी० है। जिले की पूर्व से पश्चिम तक की लम्बाई 230 किमी० व पश्चिम की ओर 72 किमी० तक है। मुरैना जिले की समुद्रतल से ऊँचाई 150 से 300 मीटर तक है। सबसे नीचा बिंदु मुरैना जिला की पोरसा तहसील में ग्राम प्रेमपुरा के समीप है जो 157 मी० मध्य समुद्र स्तर के ऊपर है। जिला-मुख्यालय की ऊँचाई 239 मी० समुद्र स्तर के ऊपर है।

भारत में मन्दिर-निर्माण की परम्परा प्राचीन काल से देखने को मिलती है। भारत में शैव सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन सम्प्रदाय है। शिव-मन्दिरों का निर्माण-विवरण पुरातात्विक उत्खननों से पुरावशेषों के रूप में प्राप्त होता है। मुरैना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है तथा यहाँ पर शैव सम्प्रदाय का प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

सर्वेक्षण में मध्य शिव-मन्दिरों का जो विवरण प्राप्त हुआ है, उसे ऐतिहासिकता की कसौटी पर परीक्षण कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

कुन्तेश्वर महादेव का मन्दिर

कुन्तेश्वर महादेव का मन्दिर कुन्तलपुर में स्थापित है। इस मन्दिर में भगवान् शिव, श्रीगणेश परिवार, कुन्तीदेवी, हनुमान् जी की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर का क्षेत्रफल 5,625 वर्गफुट है। समस्त मन्दिर-परिसर वृक्षों से घिरा हुआ और बहुत मनोहर है। मन्दिर की स्थापना को लेकर कोई स्पष्ट अभिलेख नहीं है। परन्तु जनश्रुतियों के आधार पर यह मन्दिर महाभारतकालीन है। जब कुन्तल नगर की स्थापना हुई, उससे पूर्व यहाँ सूर्य-मन्दिर होने के संकेत मिलते हैं। कुन्तलपुर नगर की स्थापना के समय महाराज कुन्तीभोज ने यहाँ भगवान् शिव की मूर्ति स्थापित की।

कुन्तलपुर नगर के विषय में भागवत में संक्षिप्त विवरण मिलता है। वासुदेव की पाँच बहिनें थीं— प्रभा (कुन्ती), श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रभा और राजाधि देवी।

वर्तमान गर्भगृह एवं भवन का निर्माण श्री रामचरणदास जी महाराज ने 1938 ई० में कराया था। उसके बाद राधावल्लभदास जी महाराज ने उसमें निर्माण-कार्य करवाया। वर्तमान में आशारामदास त्यागी जी महाराज द्वारा भी इसमें निर्माण-कार्य करवाया जा रहा है जो मन्दिर-परिसर में ही रहते हैं।

यह मन्दिर महाभारतकालीन है। यहाँ पर महामुनि दुर्वासा जी ने पाण्डव-माता कुन्ती को दिव्य मंत्र दिये। यही पर कुन्ती द्वारा भगवान् सूर्य का आह्वान करना एवं सूर्य द्वारा पुत्र-प्राप्ति का वरदान देना जिससे कर्ण का जन्म हुआ। प्राचीन ढंग के मन्दिर का पुनर्निर्माण कुन्तलपुर निवासी श्री पन्नालाल वैश्य ने कराया। यहाँ पर आसन नदी बहती है। इसके तट पर सूर्य के रथ

के घोड़ों के पदचिह्न पाये गये हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से कुंतलेश्वर शिव मन्दिर मुरैना नगर में स्थित शैव सम्प्रदाय के प्राचीनतम मन्दिरों में से एक है। उपर्युक्त विवेचना के बाद हम कह सकते हैं कि कुंतलेश्वर मन्दिर का महाभारतकालीन इतिहास से संबंध है।

मार्कण्डेश्वर महादेव मन्दिर

मार्कण्डेश्वर महादेव मन्दिर नगर में हनुमान् चौराहे पर स्थित है। इस मन्दिर का नाम मार्कण्डेश्वर महादेव इसलिए पड़ा क्योंकि इसमें शिव के साथ मार्कण्डेश्वर ऋषि विराजमान हैं। मन्दिर में शिव-परिवार और मार्कण्डेश्वर ऋषि, श्रीरामदरबार, लक्ष्मीनारायण आदि की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर का क्षेत्रफल लगभग 2,500 वर्गमीटर है। यह मन्दिर 1906 ई० में स्थापित हुआ है इसकी स्थापना चन्द्र पाराशर ने की तथा वह इस मन्दिर के पुजारी भी रहे। लगभग 45 वर्ष तक इस मन्दिर की सेवा की। उनके बाद दो पुजारी हुए जिन्होंने इनकी सेवा की। विगत 41 वर्षों से श्री प्रभुदयाल पचौरीजी इस मन्दिर की सेवा कर रहे हैं जो वर्तमान समय में भी मन्दिर परिसर में ही निवास करते हैं।

इस मन्दिर की स्थापना के समय यहाँ पर सिंधिया-शासकों का राज्य था। इस मन्दिर में 1997 ई० अखण्ड ज्योति प्रज्वलित हो रही है जो महेशचन्द्र बंसल द्वारा की जा रही है।

श्री महाकालेश्वर मुक्तिधाम

श्री महाकालेश्वर मुक्तिधाम मन्दिर बडोश्वर, मुरैना में स्थित है जिसमें महाकालेश्वर, मृत्युञ्जय महादेव, श्री मोक्षेश्वर, ऊँकारेश्वर महादेव, नवग्रह और भैरव की मूर्तियाँ हैं। 1983 ई० में जनता के सहयोग से इस मन्दिर का निर्माण हुआ। इस मन्दिर का क्षेत्रफल 9 बीघा है। मन्दिर के सामने दो दीपस्तम्भ हैं जिनकी ऊँचाई लगभग 15 फुट है। एक दीपस्तम्भ पर एक साथ 108 दीप एकसाथ जलाये जा सकते हैं। महंत श्री मिट्टलाल नागकर्णि प्रभाकर ब्रह्मचारी वर्तमान में देखरेख कर रहे हैं। महंत जी का ऐसा मत है कि उज्जैन के महाकाल के बाद मध्यप्रदेश में इसका दूसरा स्थान है। भगवान महाकाल के भक्तों का यहाँ जमघट लगा रहता है। मन्दिर में एक शिलालेख लगा है जिस पर अंकित है— ‘शिव सदा चिताभस्म से युक्त हैं फिर भी शिव परम पवित्र कहलाते हैं। शिव अखण्ड योगीराज कहलाते हैं। घर नहीं और भूषण नहीं, फिर भी शिव महादानी कहलाते हैं। दिखते भयंकर पर नाम शिवशंकर। अशुभ का नाश करते तो भी नाथ कहलाते हैं।’

नर्मदेश्वर महादेव का मन्दिर

नर्मदेश्वर महादेव का मन्दिर मुरैना नगर में कोतवाली, पड़ाव में स्थित है। मन्दिर-परिसर में शिवपरिवार, राधाकृष्ण, शीतला माता, रामदरबार की प्राण-प्रतिष्ठा नर्मदेश्वर शिवलिंग के साथ की गई है। उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर में स्थित शिवलिंग दिन में तीन बार अपना स्वरूप बदलते हैं। स्थानीय विश्वास के अनुसार स्थापित नर्मदेश्वर शिवलिंग दिन में तीन बार

अपना रंग बदलते हैं। स्थानीय लोग इस शिवलिंग के प्रति अपनी पूर्ण श्रद्धा रखते हुए प्रतिदिन पूजन करते हैं।

मन्दिर में शिवलिंग की स्थापना लगभग 200 वर्ष पूर्व की गई थी। मन्दिर की सर्वेसर्वा 90 वर्षीया श्रीमती कस्तूरीबाई ने बताया कि इस शिवलिंग पर बनी लकीरें सुबह, दोपहर तथा श्याम को रंग बदलती हैं। इन रंगों को कभी भी बदलते हुए देखा जा सकता है।

कस्तूरी देवी ने बताया कि एक बार शिवलिंग के ऊपर जल की धार छोड़नेवाला मटका गिर गया जिससे शिवलिंग पर घाव के चिह्न बन गये। हमने इन घावों पर घी लगाया तब कहीं जाकर ये ठीक हुए। मन्दिर की प्राचीनता के बारे में उन्होंने बताया कि मन्दिर में एक घंटा लटका हुआ है जिसे रिटायर्ड दीवान रामनारायण ने संवत् 1982 (1925 ई०) में चढ़ाया था।

पशुपतिनाथ महादेव का मन्दिर

पशुपतिनाथ का मन्दिर, पशुपतिनाथ पार्क, बेरियल कॉम्प्लेक्स, मुरैना में स्थित है, जिसका परिसर वनस्पतियों एवं वृक्षों से आच्छादित है। मन्दिर-परिसर में मुख्य मूर्ति शंकरजी की है और हनुमानजी की मूर्ति भी है। मन्दिर लगभग 5.5 बीघा क्षेत्र में फैला हुआ है। शेष भूमि मन्दिर से जुड़ी हुई है। इस मन्दिर का निर्माण एजाद खाँ ने करवाया। इसका पुनर्निर्माण श्री राधाकृष्ण गुप्त एवं सेवाराम गुप्त ने संवत् 2040 (1983 ई०) में करवाया था।

इस मन्दिर में नाग-नागिन रहते हैं जा वर्ष में एक बार श्रावण के महीने में शिवलिंग से लिपट जाते हैं तथा इनके दर्शन उसी समय होते हैं।

सिद्धेश्वर महादेवजी का मन्दिर

सिद्धेश्वर महादेव जी का मन्दिर, पशुपतिनाथ पार्क गालगोदम, मुरैना में स्थित है तथा जिसमें शिवपरिवार, हनुमानजी, रामदरबार, राधा-कृष्ण, दुर्गा माँ, शिरडी के साई बाबा एक व्यवस्थित स्वरूप में विद्यमान हैं। मूर्तियाँ अत्यन्त आकर्षक हैं। मन्दिर का कुल क्षेत्रफल 840 वर्गफुट है। इसका निर्माण 1994 ई० में हुआ है। इसका निर्माण सार्वजनिक सहयोग से निर्मित किया गया। इस मन्दिर में सिद्धेश्वर महाराज की मूर्ति के सामने जो भी मनोकामना मांगी जाती है, वह पूर्ण हो जाती है, ऐसी भक्तजनों की मान्यता है।

मन्दिर-परिसर में देवी-देवताओं के सम्मुख अखण्ड ज्योतियाँ भक्तजनों के मनोकामना पूर्ण होने पर भक्तजनों के मनोकामना पूर्ण होने पर भक्तजनों के सहयोग से जलायी जाती हैं। शिवरात्रि, श्रभ्रामनवमी, जन्माष्टमी और हनुमज्जयन्ती प्रत्येक वर्ष बड़े धूमधाम से मनायी जाती है।

शिव मन्दिर, रुई की मण्डी

शिव मन्दिर, मुरैना नगर की प्रसिद्ध रुई की मण्डी क्षेत्र में स्थित है तथा इस मन्दिर में

शिवपरिवार, राधाकृष्ण, शीतला माता एवं हनुमान् जी की मूर्तियाँ सुशोभित हो रही हैं। समस्त मूर्तियाँ सजीव लगती हैं। मन्दिर के परिसर का कुल क्षेत्रफल लगभग दो बीघा है। मन्दिर 1966 ई० के लगभग बनाया गया। इस मन्दिर की स्थापना वासुदेव ने करवायी। अब वर्तमान में मन्दिर की देखरेख अनिल शर्मा द्वारा की जा रही है जो शिव मन्दिर में निवास करते हैं। शिव मन्दिर का पुनर्निर्माण सेवक केदारनाथ वादिल तथा सावित्री देवी द्वारा संवत् 2032 (दिनांक 05.10.76) में कराया गया। इनकी लगातार नौ लड़कियाँ होने के बाद मनत माँगती थी। मेरे लड़का हो जाये तो मैं इस मन्दिर का पुनर्निर्माण करूँगा। इनकी मनोकामना पूर्ण हुई इसलिए उन्होंने मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया। मन्दिर का निर्माण एवं स्थापत्य आधुनिक काल है।

वनखण्डेश्वर महादेव का मन्दिर

वनखण्डी महादेव का मन्दिर, जो वनखण्डी रोड, मुरैना पर स्थित है। मुरैना नगर प्रसिद्ध शिव मन्दिरों में एक है। मन्दिर-परिसर में शिव का परिवार के अतिरिक्त हनुमानजी, दुर्गाजी आदि की प्रतिमा बहुत मनोहर है। यह मन्दिर लगभग 12 विस्तार में बना हुआ है।

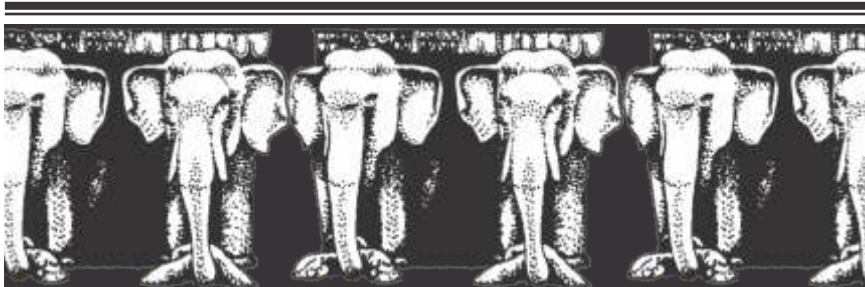
यह मन्दिर लगभग 1906 ई० में बनाया गया है। मन्दिर में एक पीपल का पेड़ था जिनके नीचे शिवलिंग प्रकट हुए। बाद में मन्दिर का निर्माण स्थानीय जनता के सहयोग से कराया गया। वर्तमान समय में मन्दिर-परिसर की देखरेख श्री कैलाश गिरि द्वारा की जा रही है जो मन्दिर परिसर में लगभग 6 वर्षों से निवास कर रहे हैं। मन्दिर की स्थापना सिंधिया शासनकालीन है। अतः मन्दिर के निर्माण एवं भवन-विन्यास पर तत्कालीन स्थापत्य का प्रभाव है।

मुरैना के शैव सम्प्रदाय के शिव-मन्दिरों का सर्वेक्षण करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुरैना के मन्दिर प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के हैं, जिनका न केवल धार्मिक महत्त्व है बल्कि सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्त्व भी है।

सन्दर्भ :

1. ए०एम० सिन्हा, मध्यप्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियस, मुरैना, भोपाल 1996, पृ० 1
2. प्रमिला कुमार, मध्यप्रदेश एक भौगोलिक अध्ययन, पृ० 3
3. वही
4. प्रमिला कुमार, पूर्वोक्त पृ० 31
5. रजनी गुप्ता, ग्वालियर चम्बल सम्भाग का ऐतिहासिक भूगोल, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर प्रकाशित शोध-प्रबन्ध, पृ० 23
6. वही
7. वही
8. महाभारत, सभापर्व, 12.72
9. मन्दिर पर अंकित पट्टिका से प्राप्त सूचना के आधार पर
10. वही

11. भगवद्गीता, 3.31-36
12. श्री आशाराम दास त्यागी, मन्दिर के मुख्य पुजारी से प्राप्त जानकारी के अनुसार
13. महामण्डलेश्वर महादेव मन्दिर, मुरैना के मुख्य द्वार पर मन्दिर-निर्माण विवरणिका से प्राप्त जानकारी के अनुसार
14. श्री महेशचन्द्र बंसल, व्यवसायी मुरैना के परिवार से प्राप्त जानकारी के अनुसार
15. श्री महंतबाबा मिट्ठूलाल नाग, व्यवस्थापक कार्णि प्रभाकर ब्रह्मचारी मन्दिर, मुरैना से प्राप्त जानकारी के आधार पर
16. कस्तूरीबाई शर्मा, निवासी-नर्मदेश्वर महादेव मन्दिर, मुरैना से प्राप्त जानकारी के आधार पर
17. वही
18. वही
19. वही
20. श्री शिशुपाल शर्मा, निवासी-वनखण्डी रोड, मुरैना के पास उपलब्ध मन्दिर न्यास से संबंधित प्रपत्रों के आधार पर।
21. श्री महेन्द्र सिंह गुर्जर, मकान नं० 25, चंबल कॉलोनी, मुरैना, निवास से व्यक्तिगत साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी
22. वही
23. वनखण्डेश्वर महादेव मन्दिर, मुरैना पर अंकित निर्माण-तिथि पट्टिका के आधार पर





17.

श्योपुर जिले के ऐतिहासिक मन्दिर : एक सर्वेक्षण

डॉ० पूनम पाराशर

भा रतीय जीवन सदैव धर्म से प्रभावित रहा है। भारतीय जीवन में धर्म एवं संस्कृति सदैव सहचर रहे हैं। भारतीय जीवन का कोई भी क्षेत्र धर्म से अछूता नहीं रहा। 'धर्म' एक ऐसा व्यापक शब्द है जो सामने आते ही किसी जाति या समाज का इतिहास और उसके जीवन की भूमिका प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। 'धर्म' शब्द में जातिविशेष की सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा जीवन-प्रणाली की प्रक्रिया और निदर्शन आदि तत्त्व सामान्यतया समाविष्ट होते हैं। 'धारणाद्धर्म इत्याहु' के अनुसार धर्म जीवन का मूलाधार है। इसी से मनुष्य को प्रेरणा और प्रकाश उपलब्ध होता है। यही धर्म जीवन की गतिविधि और प्रगति में सहायक होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म संकुचित नहीं अपितु विशद, महान् और स्वत्व तो है ही किंतु हिंदू-धर्म और हिंदू-जाति की अपनी विशेषता और महत्ता रही है। हिंदू-धर्म अन्य सभी धर्मों और जातियों का समादर और सम्मान करने में सदैव अग्रणी रहा है। धर्म का निवास मनुष्य के मन में है। यह स्वयं मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है। बाकी प्रत्येक वस्तु विलीन हो सकती है। परन्तु ईश्वर में विश्वास जो संसार के सब धर्मों की परम स्वीकृति है, शेष रह जाता है। 'धर्म' शब्द का अर्थ बहुत विशद और व्यापक है। एक ही निश्चित और सीमित अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग नहीं होता। 'धर्म' शब्द का सबसे व्यापक अर्थ इसके व्याकरणगत मूलधातु 'धृ' पर आश्रित है। 'धृ' का अर्थ 'धारयेति धर्म' अर्थात् धारणा करना है।¹

महाभारत में धारणा के आधार पर ही धर्म की परिभाषा बताते हुए भीष्म कहते हैं कि धर्म नाम 'धर्म' इसलिए पड़ा है कि वह सबको धारण करता है अर्थात् अधोगति में जाने से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है।⁵

मनुस्मृति (6.92) के अनुसार कहा गया है कि दृढ़ता, क्षमा, मन को विषयों से रोकना, चोरी न करना, शौच, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि को शास्त्राध्ययन द्वारा बढ़ाना, विद्या, सत्य तथा क्रोध न करना— ये धर्म के दस लक्षण हैं—

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥'**

अतः स्पष्ट है कि 'धर्म' शब्द भारतीय परिप्रेक्ष्य में संकीर्ण अर्थ में कभी नहीं लिया गया। इसका उद्देश्य बहुत व्यापक रहा है। व्यक्ति जिस स्थान पर अपने धर्म की अभिव्यक्ति करता है, वह स्थान है मन्दिर। भारत में मन्दिर निर्माण की परम्परा अति प्राचीन है। मन्दिर सदैव से ही आस्था के केन्द्र रहे हैं। 'मन्दिर' शब्द की व्युत्पत्ति मन्द+किश्च से हुई है जिसका तात्पर्य है आवास भवन। कालिदास के रघुवंश महाकाव्य में 'क्षीराढिधमन्दिरः' उल्लेख आता है अर्थात् क्षीरसागर जिनका निवास है यही। 'मन्दिर' शब्द देवालय के लिए प्रयुक्त होने लगा और मनुष्यों के निवास के अर्थ से दूर होता गया और अब यह पूर्णरूपेण देवी-देवताओं के निवास के लिये प्रयुक्त होता है। सम्पूर्ण भारत में मन्दिर-स्थापत्य के अप्रतिम उदाहरण देखने को मिलते हैं। यह शैली स्थानीय स्तर पर अधिक विकसित हुई। चम्बल सम्भाग के अंतर्गत श्योपुर जिला भी मन्दिर-वास्तुकला का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ शैव, वैष्णव, शाक्त— सभी के मन्दिरों की अधिकता है। कुछ मन्दिर अति प्राचीन हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मध्यप्रदेश के अन्तिम छोर व राजस्थान की सीमा से लगा श्योपुर जिले का गठन 25 मई, 1998 को हुआ। इसके पूर्व यह मुरैना जिले में सम्मिलित था।

यहाँ लम्बे समय तक शासनरत रहे गौड़ राजपूत राजा शिव के अनन्य भक्त थे। क्षेत्र में स्थान-स्थान पर बने शिव मन्दिर इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। राजा इंद्र सिंह गौड़ (1641 संवत्) राजा नृसिंह दास, मनोहरदास आदि शिवभक्त थे। क्षेत्र के नामकरण में भी यही तर्क दिया जाता है कि क्योंकि यहाँ के राजा शिव के अनन्य भक्त थे एवं यहाँ शिव को 'श्यो' कहने का रिवाज है। इसीलिए इस क्षेत्र का नाम श्योपुर पड़ा। ये यहाँ पर शैव सम्प्रदाय विद्यमान होने का एक अतिरिक्त प्रमाण है। जिले के कुछ प्रमुख मन्दिर, जो क्रमशः शैव, वैष्णव व जैन सम्प्रदाय से संबंधित होने के साथ-साथ ऐतिहासिक दृष्टि से अति प्राचीन और महत्वपूर्ण हैं वे हैं।

श्री गुप्तेश्वर महादेव

सदैव कदवाल नदी में डूबे रहने के कारण यह मन्दिर गुप्तेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध है। इसका निर्माण गौड़ राजपूत राजाओं द्वारा करवाया गया था, जो शिवभक्त थे। राजा मनोहरदास

के समय एक स्टॉप डेम (बंजारा डेम) का निर्माण कराया गया। वहां प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार उस डेम के भूमिपूजन के समय सोने से तुलादान कराया गया व एक शिवलिंग स्थापित किया गया। कालांतर में जीवाजीराव सिंधिया के समय इस डेम की ऊँचाई बढ़ाई गई, जिसके कारण महादेव का मन्दिर डूब गया और यह गुप्तेश्वर महादेव कहलाया। स्थानीय लोगों के कथनानुसार पहले इस मन्दिर का नाम महादेव मन्दिर था। मन्दिर के पानी में डूबने के बाद इस मन्दिर के सामने एक चबूतरा बनवाया गया जहाँ इस मन्दिर के नाम से पूजा-अर्चना होती है।

श्री भूतेश्वर महादेव, नागदा

श्योपुर से 3 किमी० दूर स्थित नागदा को ऋषि सुलोचना की जन्मस्थली बताया जाता है। एक छोटी सी नदी, जो आगे सीप नदी में मिल जाती है के किनारे सिद्धेश्वर, नागेश्वर एवं भूतेश्वर महादेव के सुन्दर मन्दिर हैं। पथरीली नदी के एक दो स्थानों पर छोटे-छोटे झरने निर्मित हो गए हैं, जो वहाँ के दृश्य को अत्यन्त मनोहारी बनाते हैं। शिवरात्रि को यहाँ मेला लगता है, जिसे स्थानीय भाषा में 'सोरति का मेला' कहते हैं। जिस नदी के किनारे ये मन्दिर स्थापित हैं, उस नदी का प्रवाह पूर्व दिशा की ओर है तथा उसका आकार ॐ की भाँति है। स्थानीय लोगों में यह मान्यता है कि पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होनेवाली नदी के समीप जो मन्दिर बनता है, वह स्वयं में तीर्थस्थल है, जिसके कारण यहाँ के निवासियों में इस स्थान पर बहुत श्रद्धा है। सिद्धेश्वर मन्दिर के बाहर ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दियों की मूर्तियों के कुछ अवशेष प्राप्त होते हैं जो अत्यन्त कलात्मक हैं।⁶

शिव मन्दिर, उतनबाड़

अहेली नदी के किनारे बसे उतनबाड़ को राजा उत्तानपाद की नगरी कहा जाता है। यह अत्यन्त रमणीय स्थान है। यहाँ स्थापित शिव मन्दिर पञ्चमुखी है। स्थापत्य-कला की दृष्टि से यह मन्दिर अत्यन्त सुंदर है। मन्दिर के बाहर विशाल कुण्ड बने हुए हैं, क्षेत्र के लोगों की इस स्थान के प्रति बहुत आस्था है, वे लोग जो अपने परिजनों के मरणोपरांत उनके अस्थि-विसर्जन के लिये किसी अन्य तीर्थस्थल पर नहीं जा पाते, वे यहाँ स्थित कुण्ड में अस्थि-विसर्जन कर देते हैं। इस प्रकार इस मन्दिर के प्रति स्थानीय लोगों की गहरी आस्था है।

जल मन्दिर, बाड़ौदा

खींची-राजाओं द्वारा निर्मित इस किले को राजा इंद्रसिंह गौड़ ने जीतकर श्योपुर रियासत का एक भाग बना दिया। सन् 1809 ई० में दौलतराव सिंधिया से हारने के बाद श्योपुर के गौड़ राजा बाड़ौदा की इस छोटी-सी रियासत के जागीरदार बनकर रह गये। यहाँ शिवरात्रि पर तीन दिन का मेला लगता है। यह मन्दिर पूर्वाभिमुख और चंद्रासागर तालाब के पूर्वी किनारे पर जल के अन्दर बनाया गया है। इसका केवल मुख्य प्रवेश द्वार थल मार्ग से जुड़ा है। राजस्थानी शैली में निर्मित यह मन्दिर चारों ओर मेहराबदार तिवारों (परकोटा) से घिरा हुआ है। यह मन्दिर दो मंजिला है जिसकी एक मंजिल पानी में डूबी हुई है और ऊपर की मंजिल में शिव जी की मूर्ति

स्थापित है।

शिव मन्दिर, भूरवाड़ा

श्वोपुर से 48 किमी० दूर स्थित भूरवाड़ा का यह शिव मन्दिर अति प्राचीन है, सम्भवतः यह 9वीं-10वीं शताब्दी का है। यह मन्दिर पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है। बिना शिखर का यह मन्दिर पत्थरों से निर्मित है। इसके आस-पास बड़ी-बड़ी शिलाएँ हैं। यहाँ से प्राप्त भग्नावशेष बताते हैं कि प्राचीन समय में यह मन्दिर अत्यन्त विशाल रहा होगा। मन्दिर के बाहर हनुमान् जी की आठ फीट ऊँची प्रतिमा स्थापित है।

श्री जगदीश मन्दिर, चन्द्रपुरा

चन्द्रपुरा में स्थित श्री जगदीश मन्दिर प्रस्तर-शिल्प का एक उत्कृष्ट नमूना है। इस मन्दिर के बाहर एक शिलालेख लगा है जिसके अनुसार इस मन्दिर का निर्माण ग्वालियर के महाराजा जीवाजीराव के शासनकाल में रतनलाल व गोपाल मीना ने करवाया था। इस मन्दिर का निर्माण 1851 ई० में प्रारम्भ हुआ तथा 1853 ई० में प्राण-प्रतिष्ठा हुई। इस मन्दिर में प्रस्तर-खण्डों पर सुन्दर नक्काशी का कार्य है। गर्भगृह का द्वार भी पत्थर से निर्मित है। इसमें प्रस्तर-खण्डों पर फूल, पत्तियाँ व गमले आदि बनाए गए हैं। मध्य के खुले वर्गाकार स्थान के चारों ओर कुल 16 स्तम्भ बने हैं। इन स्तम्भों के ऊपरी भाग पर कृष्ण व गोपिकाओं की प्रस्तर-प्रतिमाएँ बनाई गई हैं। दो स्तम्भों पर बाँसुरी बजाते कृष्ण बने हैं। शेष पर विभिन्न मुद्राओं में वाद्य-यंत्र बजाती गोपिकाएँ बनाई गई हैं। एक पर बालक को दुग्धपान कराती गोपिका बनी है। पत्थरों पर इतनी सुन्दर नक्काशी क्षेत्र में एक-दो स्थानों पर ही देखने को मिलती है।

रामजानकी मन्दिर

राजा नृसिंह गौड़ ने किले के पीछे एक शिव मन्दिर का निर्माण करवाया। किले के शिव के दर्शन प्रत्यक्ष होते थे। जिन्हें करने के पश्चात् ही राजा व रानी भोजन करते थे। बाद में इस मन्दिर में शिव की प्रतिमा हटाकर राम की प्रतिमा स्थापित की गई। यह सम्भवतः इन्द्रसिंह गौड़ द्वितीय के समय की घटना है। यह मन्दिर अत्यन्त सुन्दर एवं मनमोहक है। मन्दिर में प्रवेश करते ही गर्भगृह के नीचे शिवचिह्न अंकित है, जो यहाँ पहले शिव-मन्दिर होने की पुष्टि करते हैं।

लक्ष्मीनारायण मन्दिर, उतनबाड़

ऐसी मान्यता है कि ये राजा उत्तानपाद की नगरी है, जिसका अपभ्रंश उतनबाड़ है। जब शाहजहाँ सम्राट् थे और विट्ठलदास उनके माण्डलिक थे, तब कुँवर महाराज सिंह द्वारा इस मन्दिर के निर्माण का उल्लेख यहाँ से प्राप्त भित्तिलेख में मिलता है जो वि०सं० 1704 का है। इसकी लिपि नागरी तथा भाषा हिंदी है। इस मन्दिर के बाहर दो प्राचीन कलात्मक स्तम्भ बने हुए हैं, जो लगभग दसवीं-ग्यारवीं शताब्दी के हैं। यह मन्दिर पुरातत्त्व-विभाग के संरक्षण में है।

श्रीजी मन्दिर ढोढर

श्योपुर से 40 किमी० दूर प्राचीन ऐतिहासिक कस्बा ढोढर में श्रीजी मन्दिर स्थापित है। इस मन्दिर पर लगे शिलालेखों के अनुसार इसका निर्माण संवत् 1848 (1791 ई०) में चरनदास जी महाराज के बाद महंत बने हरकिशन जी ने करवाया था। इस मन्दिर में कृष्ण बालरूप में स्थापित हैं। यहाँ लोग मनौती मानते हैं। समय-समय पर धार्मिक आयोजन होते रहते हैं।

बृजगोपाल मन्दिर, चन्द्रपुरा

गौड़ राजा किशोरदास जी की माँ ने इस गाँव को अपने नाम पर बसाया था। उन्होंने इस स्थान पर बाबड़ी, बाग व मन्दिर का निर्माण कराया था। यहाँ पर एक शिलालेख मिला है जिसके अनुसार बृजगोपाल जी का मन्दिर रानी चंद्रावती ने बनवाया था। इसमें इसकी निर्माण-तिथि का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः यह तिथि संवत् 1841 (1784 ई०) रही होगी। क्योंकि इस तिथि में बाबड़ी बनवाने का उल्लेख शिलालेख में है। सम्भवतः ये दोनों समकालीन ही हो।

इस मन्दिर में कृष्ण जी की सुन्दर मूर्ति स्थापित है। मन्दिर में अभी भी सेवा-पूजा होती है। इस मन्दिर में जालियाँ बनी हुई हैं। इस मन्दिर के नीचे तलघर भी बना है। ऐसा कहा जाता है कि इसमें बड़ौदा तथा श्योपुर तक सुरंगें बनी हैं, किन्तु यह बात विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती। सम्भवतः ये सुरंगें कुछ दूरी तक बनी हों या मुस्लिम आक्रमणकारियों से मूर्ति को बचाने के लिये इन सुरंगों का निर्माण कराया गया होगा। श्योपुर किले में संवत् 1083 (1026 ई०) का एक जैन-स्तम्भ प्राप्त हुआ है जो किले की प्राचीनता को भी दर्शाता है। यहाँ जैन-सम्प्रदाय होने के प्रमाण लगभग 9वीं-10वीं शताब्दी से प्राप्त होते हैं। क्षेत्र में असंख्य जैन-स्तम्भाभिलेख यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। कुछ जैन-मूर्तियाँ किला-स्थित संग्रहालय में रख दी गई हैं, जो इस क्षेत्र में इस सम्प्रदाय की समृद्धता को प्रदर्शित करती हैं।

श्रीशान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर

किला क्षेत्र में स्थित ये मन्दिर यहाँ के प्रमुख जैन मन्दिरों में से एक है। मन्दिर के दो प्रवेश द्वार हैं। मन्दिर में प्रवेश करते ही बड़ा सा बरामदा पड़ता है। उसके पश्चात् मन्दिर है। जिसमें शान्तिनाथ जी की मूर्ति स्थापित है। इसी मन्दिर में किले से प्राप्त जैन स्तम्भलेख को रखा गया है। मन्दिर में अनेक छोटी-छोटी जैन मूर्तियाँ स्थापित हैं जो अन्य तीर्थकरों की बतलायी जाती हैं। वर्तमान समय में मन्दिर के बाहर उद्यान निर्मित कर दिया गया है।

धनाइचा का जैन मन्दिर

यह 14वीं शताब्दी का विशाल जैन मन्दिर है। जिसमें एक पद्मासान में बैठी पार्श्वनाथ जी की करीब 6 फीट ऊँची प्रतिमा है। यहाँ कई मूर्तियों पर लेख प्राप्त हुए हैं। वि०सं० 1390 (1333 ई०) का मूर्ति लेख, जिसकी लिपि नागरी तथा भाषा संस्कृत है, प्राप्त हुआ है। यहाँ दो चौबीसियाँ हैं। एक चौबीसी में कुछ भग्न प्रतिमाएँ पड़ी हैं दूसरे में प्रतिमाएँ नहीं हैं।

जैन मन्दिर, भूरवाड़ा

यहाँ एक प्राचीन भग्न जैन मन्दिर है जिसकी बहुत प्रतिमाएँ खुले मैदान में पड़ी हैं तथा कुछ वहीं मन्दिर में रख दी गई हैं। कुछ किला-स्थित संग्रहालय में हैं। यहाँ एक विशाल आमलक प्राप्त हुआ है जिसमें उस प्राचीन जैन-मन्दिर की विशालता का पता चलता है। ये मूर्तियाँ लाल पत्थर की बनी हैं।

जैन मन्दिर, डोव

दसवीं शताब्दी में कच्छपघात राजाओं की राजधानी रहा डोव, श्योपुर से 52 किमी० दूर स्थित है। यहाँ दो जैन-मन्दिरों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। मूर्तियाँ अभी भी सुरक्षित हैं। यहाँ से प्राप्त शिलालेख, जो अभी गूजरी महल संग्रहालय (ग्वालियर) में सुरक्षित हैं, में 61 पंक्तियाँ हैं, प्रथम पंक्ति के कुछ भाग एवं 56 से 61 पंक्तियों को छोड़ इसमें संस्कृत में श्लोक हैं। लेख से स्पष्ट है कि विक्रम सिंह कच्छपघात, जिन्हें शिलालेख में 'महाराजाधिराज' लिखा गया है, इन्हीं के समय में जैन मुनि शान्तिषेण के शिष्य विजयकीर्ति द्वारा विशाल जैन मन्दिर का उल्लेख है। लेख की 51वीं पंक्ति में मन्दिर-निर्माण के विषय में लिखा गया है।⁶ इसके अतिरिक्त एक ओर जैन-मन्दिर यहाँ है। यद्यपि मन्दिर अब भग्नावस्था में है, तथापि उसका उत्कृष्ट स्थापत्य आज भी देखनेवाले का मन मोह लेता है। इसमें 81 वर्गफुट की एक वर्गाकार चौबीसी है। प्रत्येक का द्वार अत्यन्त कलात्मक स्तम्भों व लालट पटल से बना है। इनमें द्वारपाल, यक्ष-यक्षिणियों का उत्कीर्णन मन्दिर के मुख्य द्वार के स्तम्भ बहुत ही सुंदर है। इस मुख्य द्वार के दाहिनी ओर तीन विशाल मूर्तियाँ लगी हैं।⁷ बीच की प्रतिमा महावीर स्वामी की है, जो लगभग 12 फीट ऊँची है। इसके दाहिनी ओर की तीर्थंकर प्रतिमा खण्डित है। बायीं ओर की विशाल तीर्थंकर प्रतिमा गिरने के कारण तीन भागों में बँट गई है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मन्दिर-स्थापत्य की दृष्टि से यह स्थान बहुत समृद्ध है एवं ऐतिहासिक, किन्तु कुछ मन्दिरों की मूर्तियाँ भग्नावस्था में हैं। कुछ मन्दिर बहुत प्राचीन हैं। आवश्यकता है इनके उचित रखरखाव की। प्रशासनिक तौर पर इन पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है। अन्यथा ये ऐतिहासिक धरोहर अतीत का पृष्ठ बनकर रह जायेंगे।

सन्दर्भ :

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 1 का प्रकाशकीय : लीलाधार शर्मा पर्वतीय
2. वही, भाग 3 का प्रकाशकीय : काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'
3. धर्म : तुलनात्मक दृष्टि में, डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, पृ० 14
4. हिंदुओं का जीवन-दर्शन, डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, पृ० 74
5. 'धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मो धारयति प्रजाः' — महाभारत, शान्तिपर्व
6. शोध-प्रबन्ध : श्योपुर जिले का सांस्कृतिक इतिहास : एक अध्ययन, डॉ० पूनम पाराशर, पृ० 127
7. वही, पृ० 134
8. 'श्योपुर की धरोहर कच्छपघात साम्राज्य की राजधानी डोव', नवभारत टाइम्स, ग्वालियर, 22.04.2000



18.

नगरी माता मन्दिर (अंजड़)

जीतेन्द्र राठौर

स्नातकोत्तर, इतिहास, बड़वानी

बड़वानी मुख्यालय से 16 किमी० दूर अंजड़ रियासत काल में एक महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता था। यहाँ पर रियासत की रिश्तेदारी थी। इसी नगर में दक्षिण की ओर एक सबसे ऊँची टेकरी पर नगरी माता का प्राचीन मन्दिर है। राजपूतों के भाटों की पोथियों में इस मन्दिर का उल्लेख मिलता है, जो 14वीं शताब्दी का बना है। तब बड़वानी रियासत के शासक सिसोदिया-वंश के लिमजी के कार्यकाल में यह बना था।

अंजड़ पहाड़ी से नगरी माता (नगूबाई, खोड़ियार माता) पश्चिम में और पूर्व में मोटी माता (आवड़) का मन्दिर है। इसके अलावा आवड़ (बड़ी बहन) की 6 बहिनें और थी जिनका नाम क्रमशः जोगड़, तोगड़ चाचई, होल्स, वरुणी, खमकी और एक भाई का नाम खेमरिया है। पहाड़ी पर स्थित नगरी माता मन्दिर 558 वर्ष पुराना है जिसे अंजड़ के राजपूत समाज अपनी कुलदेवी मानता आया है। पहले नगरी माता का निर्माण हुआ, उसके बाद मोटी माता का मन्दिर बनवाया गया। पहले बड़ी माता की पूजा की जाती है, बाद में नगरी माता की। प्राचीन समय में इस पहाड़ी पर पहुँचने के लिए 550 सीढ़ियों का निर्माण किया गया था। ये सीढ़ियाँ आज तक विद्यमान हैं। वर्तमान रास्ते की दूरी लगभग 500 मीटर है। धरातल से यह मन्दिर 150 मीटर की ऊँचाई पर है। नगरी माता मन्दिर की प्रतिमा पाषाण की बनी है, जिसकी ऊँचाई 1.5 फीट है। मन्दिर की चौड़ाई, लम्बाई क्रमशः 8 फीट और 10 फीट है।

धार्मिक दृष्टि से अंजड़ का अत्यधिक महत्त्व है, जिसका प्राचीन नाम अमरावती था। बाद में कृषिप्रधान नगर होने के कारण इसका नाम 'अन्नगढ़' रख दिया। आगे चलकर इसका नाम 'अंजड़' पड़ा जो वर्तमान नाम है। ऐसी जनश्रुति है कि राजपूतों के भाटों की पोथियों में भी नगरी माता के मन्दिर का जिक्र किया गया है। इस माता के मन्दिर का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु यह कहानी पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों के मानस में विद्यमान है।

नगरी माता स्थित छोटी माता, नगूबाई माता, नागबाई माता, खोड़ियार माता के रूप में जानी जाती है। भगवान सिंह मण्डलोई का कहना है कि हमारे कुल भाट की पोथियों में भी इसका उल्लेख है। हजारिया के अनुसार आज से लगभग 558 वर्ष पूर्व पहाड़ी की उत्तरी ढलान पर बसा अंजड़ एक छोटा-सा कस्बा था। उस समय राजपूतों के मुखिया रायसेलजी राजपूत सम्पन्न कृषक हुआ करते थे, जिनका लड़का जेतसिंह था। एक दिन सर्प ने उसे डस लिया, जिसके उपचार हेतु वैद्य हकीमों को बुलाया गया तथा साँप का जहर उतारने का प्रयास किया गया, किन्तु सब निरर्थक साबित हुआ। उपचार में वैद्य-हकीमों ने अपने हाथ टेक दिये, जिससे हताश और निराश रायसेलजी अपने पुत्र की मृत्यु से दुःखी हो मूर्च्छित होकर गिर पड़े। रायसेलजी को होश में लाया गया और उन्होंने बताया कि अचेनतावस्था में उन्होंने एक दिव्य प्रकाश पुञ्ज देखा जिसके अन्दर देवी के दर्शन हुए, देवी ने मुझ से कहा कि मेरी छोटी बहन नगूबाई का स्थान इस पहाड़ी की चोटी पर है। अगर तुम मेरी बहन की वहाँ पर स्थापना करने का संकल्प करो तो तेजसिंह जीवित हो सकता है। रायसेलजी इतना कहकर चुप हो गये। तब रायसेनजी ने जल हाथ में लेकर कहा कि माता, यदि मेरा पुत्र जीवित हो गया तो आपकी मंशानुसार दिन निकलने से पहले पहाड़ी पर आपकी छोटी बहन की विधि-विधान से स्थापना करूँगा। इतना कहकर जल को मृत तेजसिंह पर छिड़क दिया। तेजसिंह को तुरन्त होश आ गया। अतः तय किया गया कि रात्रि में शोर-शराबा करते हुए पहाड़ी पर पहुँचा जाय। मशालें, ढोल, नगाड़े तथा जिसके हाथ जो आया, माता के जयकारे करता निकल पड़ा। वहाँ पहुँचकर देवी का पिण्डरूपी स्वरूप मिला। उसको ब्राह्मणों ने विधि-विधान से पूजा करके स्थापित किया जो आज भी विद्यमान है। इसके बाद रायसेलजी ने संवत् 1509 (1452 ई०) में माता की प्राण-प्रतिष्ठा करवाई थी। तब से लेकर आज तक राजपूत समाज माता जी में अपार श्रद्धा रखकर पूजन करता है। संवत् 1547 (1490 ई०) में श्यामसिंहजी राजपूत की रानी सोलखणी रतन कुँवरबाई ने अंजड़ के प्रसिद्ध राजकारीगर चुन्नीलाल से नगरीमाता के मन्दिर का भव्य निर्माण कराकर जनता को समर्पित किया। इस घटना के पूर्व भी इस प्रकार की घटना गुजरात राज्य में घट चुकी है।

एक किंवदन्ती यह है कि अंजड़ में एक गुफा बनी हुई है जो माण्डू तक जाती है। कहा जाता है कि राठौर परिवार की बारात गुफा के रास्ते से माण्डू जा रही थी। तभी अचानक गुफा धँस गयी। तब से गुफा का कोई अस्तित्व नहीं है।

नगरी माता मन्दिर और भीमा नायक कहते हैं- एक बार भीमा अपने सैनिकों के साथ

अनाजी व्यवस्था को लेकर बहुत बड़े मानसिक तनाव के दौर से गुजर रहा था। इस संकट से निपटने के लिए भीमा ने अंजड़ को लूटने की तैयारी कर गाँव की सीमा पर पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही कुछ सिपाहियों ने अंधे होने की घटना की जानकारी भीमा को दी। उसने इस वस्तुस्थिति को दैवीय शक्ति के संकट के रूप में स्वीकार किया। वह भयभीत हो उठा। उसने स्वीकार किया कि माँ नहीं चाहती कि वह अंजड़ को लूटे। उसने आँखें बंदकर नगरी माता से प्रार्थना की, “माँ, मैं यहाँ तक आ गया हूँ, मुझे रास्ता दिखाओ। और तब उसने मन-ही-मन प्रार्थना की कि यदि यह तलवार गिर जावेगी तो मैं अंजड़ से चला जाऊँगा। भीमा ने तलवार निकाली और उसी स्थान पर जहाँ वह खड़ा था, ज़मीन पर पूरी ताकत से गाड़ने की कोशिश की। तलवार गिर गई थी। उसका यह शगुन सभी सैनिक देख रहे थे। उसने नगरी माता से क्षमा-याचना की। दैवीय शक्ति के इस चमत्कार को आज भी ‘भीमा की तलवार’ वाली घटना के साथ सुना जाता है। सम्भवतः तभी से इस देवी-मन्दिर में श्रद्धालुओं की भीड़ बनी रहती है। कई लोग कार्यसिद्धि के लिए यहाँ माथ टेककर मन्त्रों भी माँगते हैं। वर्तमान में इस पहाड़ी पर स्थित मन्दिर को आधुनिक रूप देकर भव्य बना दिया गया है। पहुँच मार्ग के लिए सीढ़ियाँ भी हैं, जो नीचे विश्वेश्वर महादेव के मन्दिर से पहाड़ी पर स्थित माताजी के मन्दिर तक जाती हैं।

प्राचीन समय की परम्परानुसार लोगों की प्रगाढ़ आस्था के लिए नगरी माता का मन्दिर अत्यधिक प्रभावशाली है। धार्मिक भावना से ओतप्रोत व्यक्ति संस्कारित और सभ्यतायुक्त जीवन निर्वाह करता है, जिसकी एक मिसाल अंजड़ के नगरवासियों में देखने को मिलती हैं।

नोट— मन्दिर के सन्दर्भ में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। स्थानीय लोगों से प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर तथ्य एकत्र किये गये हैं।

सन्दर्भ :

1. भीलांचल निमाड़ का स्वतंत्रता सेनानी भीमानायक, लेखक डॉ० निकुंज, पृ० 238
2. पीपुल समाचार, बुधवार, 13 अक्टूबर, 2010 को प्रकाशित आलेख
3. वही, बुधवार, 015 अक्टूबर, 2011 को प्रकाशित आलेख
4. राजपूत समाज के भाटों द्वारा लिखित पोथी





19.

शाजापुर में प्राचीन राजराजेश्वरी मन्दिर

देवेन्द्र कुमार

वार्ड क्र० 28, काशीनगर, शाजापुर

विभिन्न नाम

- | | | |
|-----------------------|---|--|
| 1. राजराजेश्वरी देवी | - | राजाओं को क्षेत्रविशेष का राज प्राप्त करनेवाली देवी। |
| 2. दक्षिणेश्वरी देवी | - | दक्षिण में निवास करती हैं। |
| 3. त्रिपुरेश्वरी देवी | - | जिनका तीनों लोकों पर आधिपत्य हो। |
| 4. ललिता देवी | - | अपने भक्तों को स्नेह प्रदान करनेवाली हैं। |

विभिन्न स्थान :

1. **मण्डला**— मध्यप्रदेश के ही मण्डला जिले में 16 शताब्दी में मण्डला के किले में राजराजेश्वरी की स्थापना निजाम शाह ने कराई थी।
2. **दक्षिणी क्षेत्र**— इस क्षेत्र में प्रमुख रूप से हर घर में पूजा की जाती है।

महाकाल की नगरी उज्जैन शाजापुर से 63 किमी० दूर स्थित है। शाजापुर की स्थापना शाहजहाँ के समय से मानी जाती है। इस नगर से निकलते उस समय इस नगर की प्राकृतिक सुंदरता को देखकर यहाँ अपनी सेना के साथ रात्रि विश्राम किया। जब इसका नाम 'खाखराखेड़ी' था। शाहजहाँ जब सम्राट् बना, तब अपने दक्षिणी अभियान में 1640 में मीर बिगो को यहाँ का कोतवाल नियुक्त किया एवं एक किले के साथ ही चार विशाल द्वारों का

निर्माण भी कराया था, जो आज भी जीर्ण अवस्था में है।

यह ऐतिहासिक स्थल शाजापुर नगर के राष्ट्रीय राजमार्ग एनएच-3 आगरा-मुम्बई के पास स्थित है। इस मन्दिर के पश्चिम में चिल्लर नदी स्थित होती है। इस मन्दिर के पीछे स्थित श्री मंगलनाथ मन्दिर, श्री गणेश मन्दिर और श्री खेड़ापति हनुमान् मन्दिर है। मन्दिर से कुछ मीटर की दूरी पर एक बावड़ी है जो अनावृष्टि के दिनों में जलापूर्ति करती है।

राजराजेश्वरी मन्दिर के इतिहास के अनुसार 300 वर्ष पूर्व 1781 में मनीबाई पटलन द्वारा 4 बिग 2 बिसवा जमीन दान में दी। कुछ कालोपरांत 1791 में ताराबाई ने दान में 4,106 रु० की राशि मन्दिर-निर्माण के लिए दी। मन्दिर में सभामण्डप का निर्माण 1734 में हुआ।

इस मन्दिर में माँ की भव्य 6 फीट ऊँची मूर्ति एवं माताजी के चरणकमल के दर्शन होते हैं। पूर्व मान्यताओं के अनुसार जब राजराजेश्वरी देवी इस नगर से निकल रही थी तो उनके चरण इस जगह पड़े थे। माँ का भव्य स्वरूप लाल-लाल अधर, बड़े मोती की नथ नाक में पहने हुए, कानों तक फैले हुए नेत्र, मंद-मंद मुस्कान से सुशोभित विराजमान है। इस भव्य रूप का वर्णन आचार्य शंकर ने भी किया है—

‘प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं । विम्बाधारं पृथुलमौक्तिकशोभिनासम् ॥

आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलादयं । मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वलभालदेशम् ॥’

यहाँ पर माँ के दर्शन तीन रूपों में होते हैं। सर्वप्रथम प्रातःकाल बाल्यावस्था में, दोपहर युवावस्था में तथा संध्याकाल वृद्धावस्था में दर्शन प्राप्त होते हैं।

इस मन्दिर में विशाल परिक्षेत्र है, जिसमें नगरपालिका परिषद् शाजापुर के द्वारा चैत्र नवरात्र में एक पक्ष का मेला लगता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के झूलों के साथ ही दुकानें भी लगती हैं। इस मेले में नगर के जनमानस के अतिरिक्त आस-पास के गाँव एवं जिले के जन भी मेले का आनन्द लेते हैं। नगरपालिका द्वारा अनेक प्रकार ने कार्यक्रम, जैसे— नाट्य, नृत्य, भजन-संध्या और कवि-सम्मेलन का आयोजन भी करती है।

इस मन्दिर के आस-पास निर्माण, रँगई-पुताई आदि जिलाधीश महोदय की अध्यक्षता में कराई जाती है। मन्दिर के पास ही एक धर्मशाला का निर्माण कराया गया है, जिसमें मन्दिर के सेवादार (पण्डित जी) व दूर से आये हुए दर्शनार्थी निवास करते हैं।

शाजापुर नगर में राजराजेश्वरी मन्दिर के साथ ही भैरव टेकरी, मुरादपुरा हनुमान् मन्दिर और पाण्डवखो आदि प्राचीन मन्दिर हैं।

सन्दर्भ :

1. मध्यप्रदेश दिग्दर्शन, जबरसिंह परमार, पृ० 179



20.

पन्ना जिले के मन्दिर

स्मिता

शोध-छात्रा, इतिहास-विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

भारतवर्ष अपनी विविधताओं के कारण विश्वविख्यात है, जिसमें चारों ओर प्राकृतिक धरोहर मौजूद है, जहाँ इतिहास एक आकर्षण के रूप में मौजूद है। भारतवर्ष एक अद्भुत स्थान है; क्योंकि इतिहास, धार्मिकता, संस्कृति, भाषाएँ, कलात्मकता, रीति-रिवाज, विभिन्न प्रांतों के विभिन्न लोगों की विशेषतायें, अनेकता में एकता एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को चरितार्थ करते हैं। धार्मिक आस्था लिये हुए ये मन्दिर पर्यटन का भी साधन हैं। वर्ष 1988 में प्रथम योजना आयोग ने भारत में पर्यटन को वाञ्छित प्रोत्साहन दिया।¹ भारत के मध्य में स्थिति होने के कारण मध्यप्रदेश भारत का हृदयस्थल कहलाता है।² मध्यप्रदेश के इसी भूभाग में स्थित जनपद पन्ना के मन्दिर दर्शनीय हैं।

पहुँच मार्ग : इसके सबसे पास का हवाई अड्डा खुजराहो एयरपोर्ट है। इसके सबसे पास के रेलवे स्टेशन सतना और खुजराहो हैं। पन्ना पहुँचने के लिए मध्यप्रदेश के सभी भागों तथा भारत के सभी भागों से बस और हवाई यातायात तथा रेलवे की सुविधा है।

भौगोलिक स्थिति : पन्ना जिला मध्यप्रदेश के उत्तर-पूर्व भाग में स्थित है। यह सागर डिवीजन का उत्तरीय जिला है। यह जिला 23°45' और 25°10' उ० अक्षांश तथा 79°45' और 80°40' पू० अक्षांश में है।³ इसका क्षेत्रफल 7135 वर्ग किमी० है।⁴ इस जिले का आकार कुछ-कुछ त्रिभुजाकार है जो उत्तर की ओर नुकीला लेकिन सँकरे भाग की अक्षांश पन्ना कस्बे की

ओर झुकी हुई है। यह जिला उत्तर में उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले से घिरा हुआ है। सतना जिला इसके पूर्व में, जबलपुर जिला इसके दक्षिण में और दमोह तथा छतरपुर इसके पश्चिम में हैं।⁵

उद्भव और इतिहास : पन्ना जिले का नाम पन्ना मूल नाम पन्ना कस्बे से पड़ा। पन्ना कस्बे का शब्द 'पन्ना' हल्के हरे और पीले रंग की आभा लिये हुए रत्न के कारण पड़ा जो इस कस्बे के चारों ओर लगभग 80 किमी० क्षेत्र में पाया जाता है। 13 वीं शताब्दी तक यह स्थान गोण्डों का निवास-स्थल था। इसके महत्त्व को महाराजा छत्रसाल (1649-1731) ने अपनी राजधानी बनाकर बढ़ाया। *आइन-ए-अकबरी* में उल्लेख है कि पन्ना की खानें बंद हो चुकी थीं जो 1742 में एक धार्मिक नेता और उपदेशक प्राणनाथ के नेतृत्व में पुनः शुरू करवाई गयीं। महाराजा छत्रसाल ने अपने एक पत्र में इस क्षेत्र का नाम 'परना' उल्लिखित किया है, इसलिये इस क्षेत्र को परना के नाम से जाना जाता था। कुछ लोगों का मानना था कि 'परना' का मतलब बुन्देलखण्डी भाषा में 'शिविर' होता था जैसे उस स्थान पर जो सैनिकों का शिविर रहता था, उसके लिये 'परना' शब्द का प्रयोग होता था। कुछ लोगों के अनुसार इस क्षेत्र का वास्तविक नाम पद्मा था जो पद्मावती देवी के नाम पर पड़ा, जिसकी मूर्ति किलकिला नदी के किनारे बने एक पुराने मन्दिर में स्थापित है। किलकिला नदी की धारा पन्ना कस्बे से लगी हुई बहती है। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी शासन के दौरान पन्ना जिला एक भव्य राज्य बन गया और एक नियन्त्रक राज्य के रूप में उसे सोहावाल और नागौद के राज्य मिले। 01 जनवरी, 1950 को महाराजा महेन्द्र सिंह यागवेन्द्र जूदेव बहादुर (1902-1963) ने भारत सरकार को स्वीकृति दे दी कि पन्ना के साम्राज्य को नये स्वाधीन भारत के विन्ध्य प्रदेश का पन्ना जिला बनाया जाये और इस तरह पन्ना जिले का निर्माण 1950 में हुआ एवं 01 जनवरी, 1956 को विन्ध्यप्रदेश मध्यप्रदेश से मिल गया।⁶

पन्ना जिले के मन्दिर

जुगल किशोर जी का मन्दिर : यह मन्दिर पूर्णतया उत्तर मध्यकालीन कला में निर्मित है जिसमें बुन्देली भवन-निर्माण की छाया परिलक्षित होती है। मन्दिर कलेवर में भव्य (गुम्बज) शिखर निर्मित हैं, जिसके चारों ओर चार छोटी मंढ़िया निर्मित है। यह प्राचीन मन्दिर बुन्देलकेसरी महाराज छत्रसाल के पिता श्री चम्पत राय जी के कार्यकाल का है। वह ओरछा धाम से सन् 1638 में भगवान् श्री जुगल किशोर जी पन्ना लाये थे। इस मन्दिर का पुनरोद्धार महाराज छत्रसाल के प्रपौत्र महाराजा सभा सिंह के पुत्र महाराज हिंदूपत ने सन् 1756 में करवाया था।

संकटमोचन मन्दिर : यह मन्दिर नगर के मध्य में बड़े बाज़ार में स्थित है। इसका निर्माण महाराज हिंदूपत ने बाजार के निर्माण के साथ ही करवाया था।

गोविन्द जी का मन्दिर : यह मन्दिर नगर की मुख्य सड़क के गोविन्द चौक पर स्थित है। मन्दिर के बगल में दायीं ओर श्री बलदेव जी का भव्य मन्दिर है। पन्ना महाराज श्री

रुद्रप्रताप सिंह की महारानी गोविन्द कुंवर जी ने इस मन्दिर का निर्माण सन् 1880 में करवाया।

बलदेव जी का मन्दिर : पन्ना राज्य के 10वें महाराजा रुद्रप्रताप सिंह ने इस मन्दिर का निर्माण कराया था। मन्दिर-निर्माण का कार्य संवत् 1933 (1876 ई०) से प्रारम्भ होकर संवत् 1936 (1879 ई०) में पूर्ण हुआ। यह मन्दिर प्राच्य एवं पाश्चात्य स्थापत्य का अपूर्व संगम है। सम्भवतया बलदेव जी का मन्दिर वृन्दावन (दाऊपुरी) के अलावा मात्र पन्ना में ही है।

जगदीश स्वामी जी का मन्दिर : यह मन्दिर नगर के दक्षिणी भाग में राज मन्दिर परिसर के बगल में स्थित है। इस मन्दिर का निर्माण पन्ना नरेश श्री किशोर सिंह जी द्वारा सन् 1817 में कराया गया। यह मन्दिर परम्परागत मध्ययुगीन शैली में निर्मित है जिसके प्रवेश द्वार पर दोनों तरफ विशाल सिंह बने हुए हैं। प्रवेश द्वार के अन्दर सामने दीवार पर एक शिलालेख लगा हुआ है, जिसमें स्वर्ण कलश स्थापित है।

पद्मावती जी का मन्दिर : नगर के पश्चिम में किलकिला नदी के उस पार पुराने पन्ना नामक बस्ती में लगभग दो हजार वर्ष पूर्व निर्मित श्री पद्मावती देवी का यह मन्दिर अत्यन्त प्रतिष्ठित मन्दिरों में से है। यहीं पास में किलकिला नदी का प्रपात है।

प्राणनाथ जी का मन्दिर : यह मन्दिर नगर के पश्चिम में स्थित है। इस भव्य मन्दिर का निर्माण महाराजा छत्रसाल के निर्देश पर संवत् 1748 (1691 ई०) में सेठ लालदास की देखरेख में किया गया था। यह प्रणामी सम्प्रदाय का प्रमुख मन्दिर है।

दिगम्बर जैन मन्दिर : नगर का यह प्राचीन मन्दिर धाम मुहल्ले में किलकिला नदी के पास स्थित है। जैन समाज इसे 'बड़े मन्दिर' के नाम से सम्बोधित करता है। यह पूरा मन्दिर बुंदेली शैली में निर्मित है।

विन्ध्यवासिनी जी का मन्दिर : यह नगर का अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है जो जिला कार्यालय के पीछे विन्ध्याचल वार्ड में स्थित है। इस मन्दिर में माँ विन्ध्यवासिनी देवी की एक विशाल प्रतिमा सिंह पर विराजमान है। मन्दिर का निर्माण बुंदेला केशरी महाराजा छत्रसाल के समय का होना बताया जाता है। रंग-बिरंगे काँच लगे होने के कारण इसे काँच मन्दिर भी कहा जाता है।

रामजानकी मन्दिर : यह मन्दिर नगर के प्रमुख मन्दिरों में से हैं। यह नगर के उत्तरी भाग में अजयगढ़ चौराहे के पास मुख्य सड़क पर स्थित है। मन्दिर का निर्माण महाराज सिंह की महारानी सुजान कुंवर द्वारा संवत् 1952 (1895 ई०) में कराया गया था।

माता सिंहवाहिनी का मन्दिर : यह मन्दिर श्री राम जानकी मन्दिर व अजयगढ़ चौराहे के बीच में स्थित है। मन्दिर का निर्माण लगभग 100 वर्ष पूर्व मनारा जोशी ने करवाया था।

गायत्री माता मन्दिर : गायत्री परिवार द्वारा कुछ वर्षों पूर्व ही निर्मित कराया गया यह मन्दिर बेनी सागर तालाब एवं जिला चिकित्सालय के मध्य में स्थित है।⁷

स्वामी मन्दिर एवं जगन्नाथ का मन्दिर : स्वामी मन्दिर पन्ना से जनकपुर के मध्यम में मुख्य सड़क पर स्थित है। इसका निर्माण संत श्री रामा बाबा द्वारा कराया गया था एवं श्री जगदीश स्वामी जी का मन्दिर पन्ना से 5 किमी० की दूरी पर ग्राम जनकपुर में ही स्थित है। इस भव्य मन्दिर का निर्माण महाराज हरवंशराय द्वारा सन् 1853 में कराया गया था।

नृसिंह धाम का मन्दिर : यह मन्दिर ग्राम तिलगुवां (कटरा) में स्थित है, जो मुख्य सड़क से तिलगुवां रोड नदी पर दो कि.मी. की दूरी पर है। मन्दिर का निर्माण 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में राव अनन्त सिंह द्वारा अपनी कोठी के परिसर में कराया गया था, जो खण्डहर अवस्था में आज भी विद्यमान है। पन्ना जिले में नृसिंह का यही एकमात्र मन्दिर है।

पर्णकुटी एवं सारंगधर का मन्दिर : पर्णकुटी मन्दिर पन्ना से आठ किमी० की दूरी पर पहाड़ीखेरा मार्ग पर श्री राम वनगमन पथ पर स्थित है। पहाड़ीखेरा मार्ग पर उड़की एवं सारंग ग्राम से दो किमी० की दूरी पर सघन वनों से आच्छादित पहाड़ी की तलहटी में सारंगधर मन्दिर स्थित है।

नीलकण्ठ मन्दिर : यह मन्दिर पन्ना नगर से 60 किमी० की दूरी पर जिले की सीमा से लगे हुए बाँदा जिले के अंतर्गत आनेवाले कार्लीजर के किले के पश्चिम में स्थित है।⁸

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि पन्ना के मन्दिर मध्यप्रदेश और भारतवर्ष में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन स्थलों का न केवल ऐतिहासिक महत्त्व है वरन् उनका विशिष्ट सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक महत्त्व भी है। मध्यप्रदेश में जो भी धार्मिक स्थल हैं, उनका ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व तो है ही, लेकिन सभी स्थल अपने धार्मिक आस्था में जीवन के विविध आयामों के प्रतीक हैं।

सन्दर्भ :

1. वार्षिक प्रतिवेदन, पर्यटन विभाग, भारत सरकार, 1980, पृ० 86
2. भौगोलिक स्थिति Panna district MAP of India Retrieved 2010-08-18A
3. वही
4. वही
5. पन्ना जिला गज़ेटियर, 1956, पृ० 1
6. विकिपीडिया
7. कृष्ण कुमार मिश्र, तपोभूमि पन्ना एक झलक
8. वही





21.

निमाड़ क्षेत्र बड़वानी के नर्मदातटीय शिव-मन्दिरों का ऐतिहासिक अध्ययन

प्रवीण मालवीय

शोधार्थी, इतिहास, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बड़वानी

वेदकाल में रुद्र के रूप में शिव की परिकल्पना की गई है। शिव के अनेक नाम वेदों में मिलते हैं। परवर्ती महाकाव्यों और पुराणों में शिव के विभिन्न रूपों को आख्यानों के माध्यम से विस्तार मिला है। शिव के दार्शनिक रूपों की भी चर्चा की गई है। पुराणों में शिव और पार्वती की उपासना है। *स्कन्दमहापुराण* में शिवपूजन की महिमा बताई गई है। सम्राट् हर्ष के कार्यकाल में पाशुपत सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है। नवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने भी शिव का महत्त्व प्रतिपादित किया है।

निमाड़ में प्रद्योत-मौर्यकाल से 12वीं-13वीं शताब्दी के परमार-शासकों तक ने शैव सम्प्रदाय के प्रचार में पर्याप्त योगदान दिया। चूंकि नर्मदा नदी, निमाड़ की जीवनदायिनी नदी कहलाती है, जिसका पुराणों में शिवपुत्री के रूप में उल्लेख मिलता है, इस कारण निमाड़-परिक्षेत्र में नर्मदा किनारे अनेक प्राचीन शिव मन्दिर मिलते हैं। बड़वानी जिला क्षेत्र में नर्मदा के किनारे ब्राह्मण गाँव से शिव मन्दिरों की श्रृंखला प्राप्त होती है।

सुखेश्वर महादेव मन्दिर— बड़वानी जिला मुख्यालय से 40 किमी० की दूरी पर ब्राह्मण गाँव बसा है, जहाँ नर्मदा के किनारे एक ऊँची टेकड़ी पर प्रसिद्ध सुखेश्वर महादेव मन्दिर है। इसके भीतरी भाग में शिवलिंग स्थापित है। पाषाण-निर्मित इस शिवलिंग का जलाधार पीतल का है। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ भी है। इसके बाहर 12 स्तम्भों पर आधारित

एक आकर्षक मण्डप निर्मित है। वस्तुतः इस मन्दिर का शिवलिंग पाण्डवकालीन है। सम्भवतः इसका निर्माण बाद में हुआ। यह मन्दिर आर्य शैली में बना है। इसका शिखर गुम्बदाकार है जिसका सौन्दर्य देखते ही बनता है। यह स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

सुकलेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर भी बड़वानी जिला परिक्षेत्र के ब्राह्मण गाँव में स्थित है। गर्भगृह, मण्डप, अर्द्धमण्डप व शिखर इस मन्दिर के प्रमुख भाग हैं। इसका शिवलिंग अति प्राचीन माना जाता है। जनश्रुति के अनुसार इसकी स्थापना महाभारतकाल में हुई एवं निर्माण-कार्य बाद में हुआ। इसके गर्भगृह में शिवलिंग प्रतिष्ठित है। यह शिवलिंग पाषाण से एवं जलाधार ताम्रधातु से निर्मित है। यह मन्दिर पूर्वाभिमुखी है तथा इसके शिखर के पास श्रृंग व उर श्रृंग बने हैं जो अत्यन्त भव्य हैं।

कपिलेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर ग्राम लोहारा में है। यह बड़वानी जिला मुख्यालय से 35 किमी० की दूरी पर स्थित है। यह मन्दिर आकार की दृष्टि से अत्यन्त छोटा है। गर्भगृह, प्रदक्षिणा-पथ और मञ्चिका इस मन्दिर के प्रमुख भाग हैं। इसका शिवलिंग अति प्राचीन है जिसे कपिल मुनि द्वारा स्थापित माना जाता है। इस मन्दिर में प्रवेश हेतु सीढ़ियों का निर्माण किया गया है। यह मन्दिर उत्तराभिमुख बना है। स्थापत्य की दृष्टि से यह मन्दिर अत्यन्त साधारण है, किन्तु अति प्राचीन होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है।

सिद्धेश्वर महादेव मन्दिर— यह प्रसिद्ध मन्दिर भी लोहारा ग्राम में स्थित है। इस मन्दिर का निर्माण एक ऊँची पहाड़ी पर किया गया है। स्थापत्य की दृष्टि से यह अत्यन्त मोहक है। इस मन्दिर के भीतर गृह में शिवलिंग स्थापित है तथा मन्दिर के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर दीवार पर एक पूरा अभिलेख उत्कीर्ण है। यह अभिलेख पाली भाषा में लिखा है। इस मन्दिर के शिवलिंग की स्थापना पाण्डवकाल में हुई, किन्तु मन्दिर का निर्माण मौर्यकाल में हुआ। इस मन्दिर का विमान अत्यन्त सुन्दर है। मुख्य मन्दिर के इर्द-गिर्द अन्य 6 शिव मन्दिर भी बने हैं।

कपालेश्वर महादेव मन्दिर— ग्राम दतवाड़ा में नर्मदा किनारे कपालेश्वर महादेव मन्दिर स्थापित है। यह बड़वानी जिला मुख्यालय से 23 किमी० की दूरी पर बसा है। यह अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। इसमें गर्भगृह में स्थित शिवलिंग अत्यन्त सुन्दर है। इस शिवलिंग के चारों ओर कुण्डलित अवस्था में नाग लिपटा है। मन्दिर का शिखर गोलाकार है। इसके शीर्ष पर कलश के समान रचना बनी हुई है। यह मन्दिर पश्चिमाभिमुखी है। इस मन्दिर का निर्माणकाल 1200-1300 वर्ष पूर्व माना जाता है।

सिद्धेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर भी ग्राम दतवाड़ा में स्थित है। स्थापत्य की दृष्टि से यह विशेष आकर्षक एवं महत्त्वपूर्ण है। यह पूरा मन्दिर काले-भूरे पाषाण से बना है। इस मन्दिर की दीवारों पर विभिन्न चित्र उत्कीर्ण हैं जो दो पंक्तियों में हैं। लगभग 150 वर्ष पुराना यह मन्दिर उत्तराभिमुखी है। इसका निर्माण सम्भवतः बड़वानी के सिसोदिया रियासत काल में हुआ।

बृहस्पतेश्वर महादेव मन्दिर— यह ग्राम छोटा बड़दा में स्थित है तथा इनकी बनावट पाण्डवकालीन मन्दिरों के समान है। गर्भगृह में शिवलिंग की स्थापना है। यह शिवलिंग चिकने काले पाषाण का बना है। गर्भगृह में देवकुलियाँ भी निर्मित मन्दिर के मुख्य द्वार के ऊपर गणेश जी की प्रतिमा उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा नृत्यांगना मुद्रा में है। आर्य शैली में बना यह मन्दिर पूर्वाभिमुखी है।

आगेश्वर महादेव मन्दिर— यह अति भव्य मन्दिर भी ग्राम छोटा बड़दा में स्थित है। इस मन्दिर के आंतरिक भाग में जलाधारी शिवलिंग है। इस शिवलिंग के सामने काले पाषाण पर श्वेत नन्दी की प्रतिमा है। यह मन्दिर द्रविड़ शैली में निर्मित है। मन्दिर के शिवलिंग का काल-निर्धारण पाण्डवकालीन माना गया है। इस मन्दिर की पहाड़ी पर पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा खुदाई के दौरान राख और कोयले से भरी राँझनें मिली हैं।

मोनेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर बड़वानी से मात्र 4 किमी० की दूरी पर छोटी कसरावद ग्राम में स्थित है। यह अति प्राचीन एवं ऐतिहासिक मन्दिर है। स्थापत्य की दृष्टि से इसका गर्भगृह अत्यन्त मनोहर है। मन्दिरों की दीवारों पर सुन्दर कलाकृतियाँ हैं। नर्मदा किनारे उपस्थित यह मन्दिर डूब क्षेत्र प्रभावित होने के कारण यहाँ से एकलरा विस्थापित कर दिया गया है।

सिद्धनाथ मन्दिर— बड़वानी जिले में 9वीं और 10वीं शताब्दी का प्राचीन सिद्धनाथ मन्दिर है। सम्भवतः इसी मन्दिर के नामकरण पर इस नगर का प्राचीन नाम सिद्धनगर पड़ा। मन्दिर का स्थापत्य परमारकालीन है। आकार में यह छोटा मन्दिर पाषाणनिर्मित है।

निष्कर्ष

बड़वानी जिले के नर्मदा तटीय क्षेत्र नावड़ाटोड़ी के उत्खनन में डॉ० एच०डी० सांकलिया को पूर्व पाषाणकालीन मानव अस्तित्व के प्रमाण मिले हैं।

नर्मदा घाटी विश्व की प्राचीनतम घाटी है। पुराणों में नर्मदा नदी के उल्लेख प्राप्त होते हैं। मौर्यकाल से ही क्षेत्र में शैव सम्प्रदाय में प्रमाण उपलब्ध होते हैं। नर्मदा किनारे स्थित शिव मन्दिर इसके प्रमाण हैं। यद्यपि इन मन्दिरों के प्राचीनत्व का कार्बन-14 द्वारा परीक्षण नहीं हुआ है। अतः इन प्राचीन मन्दिरों के निर्माण काल के बारे में निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

ब्राह्मण गाँव से लेकर हरणफाल तक पुख्ता व प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जितने महेश्वर के सन्दर्भ में मिलते हैं। इसलिए इनकी ऐतिहासिकता के सन्दर्भ में प्रायः जनश्रुतियों को ही अधिक अधिग्रहीत किया जाता है।

आधार-ग्रन्थ :

1. कु० उषा देवड़ा, *नर्मदातटीय मन्दिरों और घाटों का ऐतिहासिक विश्लेषण*
2. डॉ० एच०डी० सांकलिया, *द एक्सकेवेशन एट महेश्वर एण्ड नावड़ाटोड़ी*, पूना-बड़ौदा, 1959



22.

निमाड़ में आस्था के केन्द्र

सेवन्ती डावर

निमाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की पुष्टि सैकड़ों वर्ष पुराने शिलालेखों तथा पुराणों आदि से होती है। प्राचीन वैभव और समृद्ध इतिहास को समेटे पश्चिम निमाड़ यानि खरगोन जिला वक्त के साथ कदम ताल करते हुए आधुनिकता के रंग में रँगता जा रहा है। विंध्याचल और सतपुड़ा की पर्वतमालाओं के बीच बसे छोटे-छोटे गाँवों में अपनी धरोहर को सहेजे हुए समुचे प्रदेश के लिए आस्था का केन्द्र बना हुआ है।

निमाड़ प्राचीन काल से ही संतों की भूमि रही है। आस्था और श्रद्धा के साथ यहाँ के निवासी संतों को न केवल भगवान् मानते हैं वरन् उनकी याद में लगनेवाले मेलों में सैकड़ों की संख्या में जुटकर परिवार की सुख-शान्ति के लिए हर साल समाधियों पर शीश नवाने भी पहुँचते हैं।

लोगसाहित्य और लोककलाएँ यहाँ चन्द्र की सोलह कलाओं के साथ थिरकती हैं। बात गणगौर के झालरियों की हो या पितृपक्ष में कुमारियों द्वारा मनाए जानेवाले पर्व संज्ञा की। यहाँ भगोरिया की मस्ती में महुआ की नहीं महकता, लोकपर्वों में समूची माटी से खुशबू उगती है, जिसमें संतों की तपस्या और उनका आशीर्वाद बसा होता है।

नवग्रह मन्दिर : प्रागैतिहासिक वेधशाला

निमाड़ और नर्मदा की महिमा का रात-दिन गुणगान करता है। यहाँ भूगोल, खगोल की घटनाओं को जानने के लिए 13वीं शताब्दी में ही नवग्रह मन्दिर के रूप में वेधशाला की निर्माण हो चुका था। प्रागैतिहासिक युग में यहाँ सामूहिक सूर्यमण्डल की आराधना की जाती थी। कहते हैं मन्दिर का महत्त्वपूर्ण भाग कुन्दा की बाढ़ में बह गया था। यहाँ प्रतीक चिह्न सूर्य-आँख, भू-अंकित है, पौराणिक युग में ग्रह-प्रतिमाओं का संबंध हुआ। पूर्व में यह बहुत ही विशाल मन्दिर था जिसमें दिशासूचक प्रस्तर तथा ऋतुमान समझने की चक्रशिला, ग्रहमण्डल, स्थिति-सूचक टंकित थे। विद्वान् ब्राह्मण तथा खगोलशास्त्री यही रेखा-पंचांग तैयार करके समाज को प्राकृतिक प्रकोप या सुख-समृद्धि की कल्पना से अवगत कराते थे।

यह शहर आज भी 'नवग्रह की नगरी' के नाम से जाना जाता है। ग्रह, ऋतु, मास, राशि, वार आदि के ज्ञान की वेधशाला में माँ बगुला देवी, माँ सरस्वती, श्रीराम, सीताजी, शिवलिंग उठाये हनुमानजी, गोवत्स, पञ्चमुखी महादेव, माता पार्वती की मूर्तियाँ विराजित हैं। गर्भग्रह में भगवान् श्रीगणेश, बुध, शुक्र, चन्द्र, मंगल, केतु, शनि, राहु, देवगुरु ब्रह्मस्पति, सूर्यनारायण, दत्तात्रेय आदि भगवान् विराजमान हैं। लोग श्रद्धा से शीश झुकाकर ग्रहों एवं देवी-देवताओं का बड़ी आस्था से पूजन-दर्शन करते हैं।

धर्म और आस्था का पर्याय : चोली

पहाड़ों में बसे मन्दिरों की अपनी अलग ही पहचान है। कहीं पहाड़ के नीचे गुफाओं में तो कहीं उफनती धाराओं के बीच नर्मदा में ईश्वर पूजे जाते हैं। तंत्र-मंत्र की पूजा के लिए यहाँ चोली गाँव का विशेष महत्त्व है।

खरगोन जिले में विंध्याचल की तलहटी में मण्डलेश्वर से नौ किमी० दूर बसा गाँव 'चोली' धर्म और आस्था का पर्याय है। कभी चालुक्य वंश के राजाओं की राजधानी रही चोली का मुगल-काल में सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व था। यहाँ प्राचीन मन्दिर, गणेश मन्दिर, परमारकालीन गौरी सोमनाथ मन्दिर, भैरवान मन्दिर, भैरवी जोगिनी मन्दिर, ओंकारेश्वर आदि प्राचीन मन्दिर हैं। कहते हैं उक्त देवी-देवताओं के आह्वान के बिना तांत्रिक साधना सफल नहीं होती। यहाँ रुद्रावतार हनुमानजी की साढ़े ग्यारह मूर्तियाँ हैं। वामनवर्गीय साधना का केन्द्र होने के कारण ही इस गाँव का नाम चोली पड़ा।

99 मन्दिरों की नगरी : ऊन

कहा जाता है कि एक मन्दिर का निर्माण उस समय और हो जाता तो इसकी महत्ता वाराणसी के समाना होती। खरगोन जिला मुख्यालय से 18 किमी० बड़ोदरा राजमार्ग पर बसे इस प्राचीन कस्बे में 10-11वीं शताब्दी के मन्दिरों की भरमार है। दिगम्बर जैन-मन्दिरों में तीर्थंकर शान्तिनाथजी, कुंथुनाथजी, अमरनाथजी, भगवान् महावीर की मूर्तियाँ हैं, वहीं देवी महालक्ष्मी का मन्दिर भी है। ऊन के प्रमुख प्राचीन मन्दिरों में चौबारा डेरा नं० 1, चौबारा डेरा नं० 2,

महाकालेश्वर मन्दिर, बल्लालेश्वर महादेव मन्दिर, नीलकण्ठेश्वर महादेव मन्दिर, त्र्यम्बकेश्वर महादेव मन्दिर, हाटकेश्वर मन्दिर, ओंकारेश्वर मन्दिर प्रमुख हैं। निमाड़ के अनेक श्रद्धालु यहाँ पहुँचकर अपनी श्रद्धा का कलश चढ़ाते हैं।

किंवदन्ती है कि राजा बल्लाल ने 99 कुएँ, 99 तालाब, 99 मन्दिर बनवाये थे। सैकड़ों में एक की कमी होने से ही इसे न्यून अर्थात् 'ऊ' के नाम से जाना जाता है। कहते हैं यहाँ महालक्ष्मी माता दिन में रूप बदलती है।

सगुर-भगुर, नागझिरी और दसनावल

सगुर-भगुर, नागझिरी और दसनावल का इतिहास कलियुग के प्रारम्भ से माना जाता है। राजा परीक्षित को तक्षक नाग के दंश से बचाने के लिए वैद्य धन्वन्तरि द्वारा किए गए प्रयास की पौराणिक गाथा इन्हीं गाँवों के इर्द-गिर्द घूमती है। खरगोन-खण्डवा रोड पर टेमा के 03 किमी० दूर स्थित सगुर-भगुर एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। सगुर में बाघेश्वरी देवी का मन्दिर है। इसके निकट अमृत कुण्ड और पक्का धार है। कहा जाता है कि इस कुण्ड में मंगलवार को स्नान करने से कई प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं। यहाँ क्वार तथा चैत्र की नवरात्रि पर मेला लगता है। बड़ी संख्या में श्रद्धालु हिस्सा लेते हैं। दसनावल में तक्षक नाग का मन्दिर है। यहाँ प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को मेला लगता है।

सिरवेल महादेव : प्रकृति की अनमोल धरोहर

जिला मुख्यालय से 60 किमी० दूर सतपुड़ा की सुरम्य वादियों में स्थित सिरवेल महादेव मन्दिर प्रकृति की अनमोल धरोहर है। खरगोन से बिस्टान, पीपलझोपा सड़क-मार्ग से सिरवेल महादेव पहुँच मार्ग है। वर्षाकाल में यहाँ की छटा अनायास ही मन को मोह लेती है। ऐसा जान पड़ता है मानो प्रकृति ने स्वयं इस प्राचीनतम महादेव मन्दिर को सँवारा है। 200-250 मीटर व्यास के गहरे कुण्ड की दीवार में एक गुफा के मुहाने पर बने मन्दिर तक पहुँचना रोमांचक है। कहते हैं इस मन्दिर की गुफा में हजारों वर्ष पूर्व मार्कण्डेय ऋषि ने तपस्या की थी।

स्वनिर्मित हनुमद्मूर्ति

खरगोन जिले में सनावद मार्ग पर गोगावाँ से 4 किमी० दूर स्थित मोहम्मदपुर में हनुमानजी की विशाल मूर्ति है। कहते हैं लगभग 200 वर्ष पूर्व गाँव की पूर्व दिशा में दो-तीन कि०मी० दूरी पर वेदा नदी के तेज प्रवाह में किसी ने यह विशालकाय मूर्ति देखी थी, जो रेत से बनी थी। उस मूर्ति को खरगोन के नवग्रह मन्दिर के आस-पास स्थापना के लिए लगभग 10 जोड़ी बैलों के द्वारा उठाकर लाने का प्रयास किया गया था, किन्तु वह मूर्ति मोहम्मदपुर से खरगोन के कच्चे मार्ग पर गाँव के पास आकर रुक गयी। दूसरे दिन पुनः प्रयास किया गया, किन्तु उस स्थान से वह टस-से-मस नहीं हुई। तत्कालीन ज़मीन्दार को आए स्वप्न के पश्चात् मूर्ति की वहीं स्थापना कर मन्दिर का निर्माण किया गया।

लालबाई-फूलबाई मन्दिर

खरगोन जिला मुख्यालय से 32 किमी० दूरी पर सेगाँव में बोरान् नदी के किनारे देवी श्री लालबाई-फूलबाई सुन्दर मन्दिर ही नहीं वरन् निमाड़ के आस-पास के लाखों लोगों की आस्था का केन्द्र है। हर मंगलवार को यहाँ रोग-निवारण के लिए सैकड़ों श्रद्धालु स्नान करने पहुँचते हैं। मन्दिर का प्रसाद मन्दिर-परिसर से बाहर नहीं ले जाया जाता। प्रसाद का सेवन व वितरण मन्दिर में ही होता है। प्रतिवर्ष जनवरी- फरवरी में यहाँ मेला लगता है जिसमें दूर-दूर से श्रद्धालु आकर स्वास्थ्य एवं दर्शन का लाभ लेते हैं।

जयन्ती माता मन्दिर : बड़वाह

दुर्गाजी के जयन्ती स्वरूप के गिने-चुने मन्दिरों में से यह एक अति प्राचीन मन्दिर है, जो बड़वाह के समीप चित्रकूट मार्ग पर जंगल में स्थित है। चोरल नदी के किनारे प्राकृतिक गुफा के गर्भग्रह में माँ जयन्ती की चार फीट ऊँची सुन्दर मूर्ति प्रत्येक श्रद्धालु के लिए आस्था का केन्द्र बनी हुई है। 1379 में राजा चारुसेन व चेतनसेन ने निमाड़ पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त मन्दिर का निर्माण कराया था। कहते हैं इस मन्दिर में आते ही श्रद्धालुओं को असीम शान्ति तथा मन में नवीन उत्साह पैदा हो जाता है। जो भी भक्त सच्चे मन से मन्त्रत माँगता है, वह अवश्य ही पूरी होती है। चैत्र एवं आश्विन की नवरात्रि में यहाँ श्रद्धालु आते हैं।

चमत्कारी बीजागढ़ महादेव मन्दिर

खरगोन से सेगाँव होते हुए केली-भड़वाली के रास्ते बीजागढ़ महादेव मन्दिर पहुँचा जा सकता है। यह मन्दिर अपनी चमत्कारिक शक्तियों के कारण प्रसिद्ध है। कहते हैं महादेव कुण्ड में स्नान करने से सभी कष्टों का निवारण हो जाता है। कुण्ड में स्नान करने के बाद वस्त्र यहीं छोड़ने की परम्परा भी है। ऐसा करने से सारे रोगों से मुक्ति मिलती है। कहा जाता है कि 1952 में बाबा को स्वप्न में बीजागढ़ शिवलिंग दिखाई दिया था। वही शिवलिंग जब उन्होंने वास्तव में देखा, तभी से वह उसकी देखरेख में लग गये। यहाँ बाबा के आश्रम में अखण्ड ज्योति जलती है। पूरे वर्षभर श्रद्धालु अपनी परेशानियों से छुटकारा पाने के लिए यहाँ आते हैं। महाशिवरात्रि पर एक-दिवसीय मेला भी यहाँ लगता है।

शीतलामाता टेकड़ी

मध्यप्रदेश की जीवनदायिनी माँ नर्मदा व भगवान् ओंकारेश्वर साढ़े तीन करोड़ मुनिराजों की निर्वाण भूमि, दिगम्बर जैन तीर्थ सिद्धवरकूट के समीप स्थित खरगोन जिले के सनावद में एक टेकड़ी पर स्थित शीतला माता मन्दिर यहाँ आस्था का केन्द्र है। पहाड़ी के थोड़े नीचे शीतला माता मन्दिर, बिजासनी माता मन्दिर, बजरंग बली मन्दिर स्थित है। प्रतिवर्ष यहाँ लगनेवाले मेले में हज़ारों श्रद्धालु आकर अपनी आस्था के दीप जलाते हैं व अपनी मनोकामना पूरी करते हैं।

गुप्तकाशी महेश्वर : पुरा सौन्दर्य का केन्द्र

खरगोन जिले की नहीं वरन् पूरे प्रदेश की सांस्कृतिक नगरी महेश्वर प्राचीनतम माहिष्मती नगरी है। नर्मदा तट के सुरम्य घाट, प्रस्तर पर उत्कीर्ण शिल्प से सुसज्जित शिवालय एवं छतरियाँ स्थापत्य का अनुपम उदाहरण है। मुगलकालीन विशाल दुर्ग, स्मरणीय सहस्रधारा, माँ अहिल्या का ऐश्वर्यशाली पुण्य परिसर और कलात्मक महेश्वरी साड़ी उद्योग इसकी भव्य विरासत है।

पुराणकार वेदव्यास ने महेश्वर को 'गुप्तकाशी' के नाम से सम्बोधित किया। महेश्वर को 'मन्दिरों का शहर' भी कहा जाता है जहाँ तट के कंकर शिव-शिव गाकर खुद शंकर हो जाते हैं। महाशिवरात्रि हो या सोमवती अमावस्या, सूर्यग्रहण हो या चन्द्रग्रहण, पुण्य पर्वों पर यहाँ असंख्य धर्मप्रेमी स्नान-ध्यान के लिए उमड़ते हैं और पुण्य लाभ लेते हैं।

पारे के नन्हेश्वर महादेव

महर्षि मार्कण्डेय की तपोभूमि नन्हेश्वर महादेव खरगोन से 26 किमी० दूर सतपुड़ा के मुहाने पर बिस्टान-भगवानपुरा मार्ग पर बसा प्राचीन धार्मिक स्थल है। पुराणों में इस बात का उल्लेख है कि पाण्डव अज्ञातवास के समय भटकते हुए यहाँ आ पहुँचे थे और यही पर उन्होंने तप किया था। इसी समय शिवमन्दिर का निर्माण किया गया था। संत हरिओम् बाबा के सान्निध्य में गर्भस्थली के उत्खनन पर यहाँ से पारे का शिवलिंग जलमग्न अवस्था में प्राप्त हुआ था। अतः बावड़ीनुमा मन्दिर में शिवलिंग की स्थापना की गयी। वर्तमान में सात फीट ऊपर तक शिवलिंग जलमग्न रहता है। यहाँ दुर्गा जी, हनुमानजी, गणेश मन्दिर, यज्ञस्थल, धर्मशाला इत्यादि का निर्माण किया गया। प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि पर यहाँ लाखों श्रद्धालु आते हैं।

भगवान् श्रीसिद्धनाथ महादेव : नगर के अधिष्ठाता

खरगोन नगर के अधिष्ठाता भगवान् श्रीसिद्धनाथ महादेव का श्रावण मास के पश्चात् निकलनेवाला शिवडोला जन-जन की आस्था का केन्द्र है। प्राचीन श्रीसिद्धनाथ महादेव मन्दिर की स्थापना माणकचंदजी भावसार के पूर्वजों द्वारा सन् 1707 में की गई थी।

श्री बाकीमाता मन्दिर, खरगोन

सत्रहवीं शताब्दी से श्री बाकीमाता मन्दिर खरगोन शहर के मध्य में स्थित है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर मंगलमूर्ति श्रीगणेश की प्रतिमा तथा बायीं ओर महाबलेश्वर महादेव विराजित हैं। मन्दिर में गुरुदेव दत्तात्रेय परिक्रमा में संकटमोचन हनुमान् जी तथा नवदेवियाँ—सरस्वती, लक्ष्मी, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा विराजमान हैं।

भैरव मण्डल के मध्य श्री असितांग भैरवजी, आगे भगवान् शंकर स्वरूप में महाभैरवजी, कालभैरव, तथा कल्पांत भैरव भगवान् विराजित हैं। आगे शीतलामाता, खोखली माता, बोदरी माता है। इस मन्दिर के बारे में प्राचीन काल से ही यह मान्यता है कि यहाँ झीरे (कुएँ) के जल से ब्राह्म मुहूर्त में पाँच मंगलवार स्नान करने से शारीरिक, मानसिक व्याधियाँ

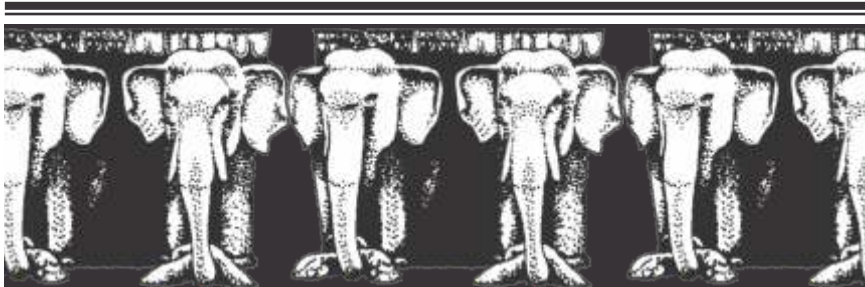
ठीक हो जाती हैं। श्रद्धालु दूर-दूर से आकर इसका लाभ लेते हैं। नवरात्रि में यहाँ लाखों की संख्या में श्रद्धालु पूरी आस्था से दर्शन लाभ लेते हैं।

शहर के अन्य दर्शनीय स्थल

माँ नर्मदा का तटीय हिस्सा निमाड़ अपनी सांस्कृतिक धरोहर के साथ अपनी लोककथाओं, लोकगाथाओं के गायन में नर्मदा देवी की भाँति, पुत्री की भाँति और माँ से लेकर सखी तक बनकर उपस्थित है। निमाड़ को काठी, गम्मत और गणगौरवाला देश कहते हैं। शिवरात्रि पर काठी नृत्य, रामलीला, गम्मत, भजन-कीर्तन— ये आज भी अपने अस्तित्व को बचाने में लगे हैं। गाँवों में फाल्गुन में चंग पर गाँव का गवैया जब थाप देता है, तब पूरा माहौल संगीतमय हो जाता है। आदिवासी गाँवों में भगोरिया की मस्ती परवान चढ़ती है। गणगौर के झालरिये मन को भावुक कर देते हैं। बेटी को विदा करना और फिर एक दिन धणियाराजा को मनाकर बेटी को रोकने के दृश्य और गायन गणगौर के त्यौहारों में आत्मीयता भरकर पूरे गाँव को एकसूत्र में बाँधने का कार्य करते हैं।

काठी नृत्य

भारतीय संस्कृति में मन्दिरों का महत्त्व सदा से रहा है। इतिहास साक्षी है कि जब भी भारतीय संस्कृति संक्रमण के दौर से गुजरी है, तब मन्दिरों का महत्त्व और अधिक बढ़ा है। हिंदू जीवन-पद्धति में मन्दिर राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक रहे हैं। यही कारण है कि आज भी अधिकांश गाँवों में तीज-त्यौहार सामूहिक मनाये जाते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि निमाड़ की सांस्कृतिक धरोहर में लोक-संस्कृति में समस्त शक्तियाँ विद्यमान हैं। यहाँ के धार्मिक-ऐतिहासिक स्थल परस्पर जुड़े हुए हैं।





23.

मालवा और निमाड़ के शिव-मन्दिरों के निर्माण में अहिल्याबाई होल्कर का योगदान

डॉ० बबीता सकवार (बुनकर)

मालव भूमि सदियों से अनेक धर्मों, सम्प्रदायों, पंथों और मतमतांतरों की पूजा-स्थली रही है, जिनमें प्रमुखतया शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध और जैन सम्प्रदाय प्रमुख हैं। कालांतर में कुछ विदेशी सम्प्रदाय भी इस भू-धरा में समाहित हो गये। इन विविध सम्प्रदायों के विकास और विस्तार में यहाँ के तत्कालीन साम्राज्यों और उनके राजाओं, राजवंशों व राजपरिवारों ने भी यथायोग्य राज्याश्रय, अनुदानादि प्रदान किया, जिनमें मालवा का होल्कर राज्य भी एक था, जिसकी शासिका पुण्यश्लोका प्रातःस्मरणीया लोकमाता देवी अहिल्याबाई होल्कर थीं जो मालवा की प्रथम प्रमुख धार्मिक महिला थीं। अपने शासनकाल में (13 मार्च, 1767 से 13 अगस्त, 1795) 28 वर्ष 5 मास और 17 दिन शासन करते हुए पूर्ण धार्मिक उदारता का परिचय दिया। उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष में असंख्य मन्दिरों, घाटों, धार्मिक पेड़ियों, कुओं-बावड़ियों, धर्मशालाओं और अपने क्षेत्रों का निर्माण करवाया व कुछ का जीर्णोद्धार करवाया था। इनमें प्रमुख रूप से शैव धर्म ही मुख्य था।¹

यद्यपि मालवा में शैव सम्प्रदाय अनादिकालीन है, जिसका आरम्भ 'ओम् नमः शिवाय' से माना जाता है, जिसके अनादि-आराध्य देव शिव, शम्भु, महेश, भवानीपति, गिरिजापति, कैलाशपति, महाकालेश्वर, ओंकारेश्वर, नीलकण्ठ महादेव आदि माने जाते हैं। डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी के अनुसार मालवा में शैव सम्प्रदाय आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक विकासोन्मुख रहा।² विदेशी आक्रमण के दौरान लगभग पाँच शताब्दी तक यह सम्प्रदाय अवश्य

ही पतनोन्मुख हो गया था।

अठारहवीं शताब्दी में मराठा-शासन के दौरान अहिल्याबाई होल्कर की उदार धार्मिक नीति के कारण इस धर्म का पुनः विकास आरम्भ हुआ। इस सम्प्रदाय में शिव-प्रतिमा के साथ पार्वती, नन्दी, शिव के गण, भैरव, शिवलिंग व शिवपिण्ड में शिव का अंकन, कीचक, चामुण्डा, सप्तमातृका आदि मिलती हैं, जिनकी उपस्थिति से शैव सम्प्रदाय का विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह वंश शैव मतावलम्बी था जिसके विकास में अहिल्याबाई होल्कर ने प्रमुख भूमिका निभाई तथा उससे सम्पूर्ण मालवा भूमि का केन्द्र-स्थल बना दिया था।¹ आज भी उनके किसी भी चित्र या प्रतिमा को देखें तो उसमें हम शिवलिंग को सदैव अपनी गोदी में लिए हुए पाते हैं।

अहिल्याबाई होल्कर ने अन्य सम्प्रदायों के साथ-साथ शैव धर्म, भाषा एवं संस्कृति आदि का रक्षण-संरक्षण न सिर्फ मालवा, अपितु निमाड़, राजस्थान और महाराष्ट्र के बाहर दिल्ली से लेकर अटक से कटक तक किया जिसका प्रमाण आज भी इन क्षेत्रों के मन्दिरों में स्पष्ट दिखाई देता है।² इसलिये लगता है मराठों में पुरुष के मरने पर 'कैलासवासी' और स्त्री के मरने पर 'शिवलोकवासी' कहा जाता है। जबकि गैर-मराठी हिंदुओं में 'स्वर्गवासी', 'देवलोकवासी' आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

अहिल्याबाई ने अपने शासनकाल में राजगद्दी पर तुलसी दल रखकर स्वयं शिवभक्ति में लीन होकर एक शासिका से सामान्य नारी की तरह जीवन बिताते हुए सम्पूर्ण भारत में मन्दिरों, घाटों, कुओं, बावड़ियों, धर्मशालाओं आदि का जाल-सा बिछा दिया था।³ यहाँ उन्होंने रामायणयुगीन भरत को पीछे छोड़ दिया था। जाहिर है उनमें शैव सम्प्रदाय की प्रधानता निश्चित रही। इस धर्म के प्रचारार्थ उन्होंने कभी भी धनबल, शस्त्रबल, बाहुबल का सहारा नहीं लिया, अपितु धर्मबल और शस्त्रबल से लोगों का हृदय जीता। इस अर्थ में वह अशोक महान् और सम्राट् अकबर से कई पायदान आगे निकल चुकी थीं।

अहिल्याबाई होल्कर ने महेश्वर में 97 मन्दिरों में से 27 शैव सम्प्रदाय के, 28 घाटों में से 9 घाट शैव सम्प्रदाय के निर्मित कराये। इसके साथ ही उन्होंने ओंकारेश्वर के शिव मन्दिर शीर्ष पर लगा ध्वज महाशिवरात्रि का आयोजन, महापूजा, संततपूर्ण, इन्दौर का इन्द्रेश्वर मन्दिर, नेमावर का सिद्धनाथ मन्दिर, पेटलावद का नीलकण्ठेश्वर मन्दिर, सिरोंज का नीलकण्ठ मन्दिर एवं जटाशंकर मन्दिर व मण्डलेश्वर के मन्दिरों के साथ ऐसे अनगिनत और असंख्य मन्दिर हैं जिन्हें अहिल्याबाई ने निर्मित करवाए थे।⁴ इन मन्दिरों के निर्माण में स्थानीय सामग्री एवं स्थानीय कलाकारों की भागीदारी से इनमें स्थानीय शैली का समावेश हो जाना स्वाभाविक है जो आज भी इनमें देखे जा सकते हैं।⁵ साथ ही उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर में श्रावण मास में पूजा-अर्चना, ओंकारेश्वर से महाकालेश्वर तक काँवड़-यात्रा की व्यवस्था, अखण्ड दीप के लिए घी की व्यवस्था व उज्जैन के चिन्तामण गणेश मन्दिर के जीर्णोद्धार व रख-रखाव आदि भी उनका शैव सम्प्रदाय की ओर आकर्षण दर्शाता है।⁶

शिव-मन्दिरों में सम्पूर्ण देश के साथ अहिल्याबाई होल्कर ने पूजा-अर्चना, जीर्णोद्धार व देख-रेख के लिए मालवा में भी कई पूजारी, मूर्तिकार, चित्रकार व महाराष्ट्र के अन्य लोगों को लाकर बसाया था, जिन्होंने कालांतर में 'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धान्त को अपनाते हुए धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता का जो समन्वय व सद्भाव स्थापित किया, वह आज भी देखने को मिलता है।⁹ अहिल्याबाई होल्कर के समय में लगभग 80 प्रतिशत से भी अधिक मूर्तियाँ, चित्रकारियाँ शैव सम्प्रदाय के आराध्य देवी-देवताओं की मिलती हैं। वह शिवभक्त थीं, पर उनका दान-धर्म, दया-धर्म, स्वधर्म व निज धर्म कभी भी अन्य सम्प्रदायों की उन्नति के मार्ग में बाधक नहीं बना, अपितु उनसे जुड़े कई मन्दिरों, घाटों, सरायों, ताल-तलैयाँ, स्नानकुण्डों, कुएँ-बावड़ियों तक ही सीमित नहीं था। चूँकि उन्होंने हिंदू धर्म व अन्य सम्प्रदायों के साथ-साथ दरगाहों और मुल्ला-मौलवियों को भी मुक्तहस्त से दान दिया था। इस बात का प्रमाण भी महेश्वर, मण्डलेश्वर और उनके राज्य-क्षेत्र की दरगाहों से मिल जाता है। सिद्धवरकूट का जैन-तीर्थ उन्हीं के काल में प्रसिद्ध हुआ था।¹⁰

इस तरह यह सिद्ध होता है कि महेश्वर, मण्डलेश्वर, ओंकारेश्वर के समान ही मालवा की सांस्कृतिक नगरी उज्जयिनी भी इस युग में मूलतः शैव क्षेत्र बन गई थी जहाँ देवी अहिल्याबाई द्वारा श्रावण मास में पूजा-अर्चना, नन्दा दीप, नैवेद्य, अन्नक्षेत्र के साथ प्रतिदिन नर्मदा के जल से काँवड़-यात्रियों द्वारा स्नान व अभिषेक की व्यवस्था होल्कर राज्य के खासगी ट्रस्ट की ओर से करवाई जाती थी।¹¹ इस नगरी में महाकाल परिसर, मंगलनाथ, कालभैरव, विक्रांत भैरव, दत्त अखाड़ा, सिद्धनाथ आदि प्रसिद्ध स्थल रहे हैं।

सन्दर्भ :

1. खरे, ए०वी०, महिष्मती की देन, शोध समेपित, पृ० 32-39, उज्जैन, 1993
2. वाकणकर एवं आर्य, मालवा एक सर्वेक्षण, पृ० 112, उज्जैन, 1974
3. व्यास, हंसा, प्राचीन मालवा के शैव धर्म, 10-1995 एवं द्विवेदी हजारीप्रसाद, नाथ सम्प्रदाय, पृ० 12-15
4. मतकर स०श०, इंदौर का होल्कर राजवंश, पृ० 6, इंदौर 1995
5. महेश्वर दरबार की बातमी पत्रे भाग 2, पृ० 55-57
6. भागवत अ०ना०, होल्कर शाही च इतिहासांची साधने, भाग 2, पृ० 104; अहिल्या स्मारिका, पृ० 7, वर्ष 1993
7. शर्मा, हीरालाल, अहिल्याबाई स्मारिका, पृ० 31, वर्ष 1990
8. बेगड़, अमृतलाल, दिव्यरानी अहिल्याबाई, पृ० 13-14, जबलपुर, 1990
9. मूळे, सांगाती, पृ० 15, इंदौर 1998, शोभा कानूनगो, उज्जयिनी का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 232, 1972
10. ठाकुर, वी०वी०, होल्करशाही का इतिहास, पृ० 57-60, 1944
11. विक्रम स्मृति ग्रंथ, पृ० 480

व्यक्तिगत चर्चा :

1. प्रो० (डॉ०) एस०एल० वरे, प्राचार्य शासकीय महाविद्यालय, घट्टिया; 2. डॉ० प्रशांत पुराणिक, प्राध्यापक एवं समन्वयक रासेयो, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन एवं 3. डॉ० रमण सोलंकी, प्रभारी पुरातत्त्व संग्रहालय एवं उत्खनन विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन



24.

पत्थरों में धर्मघोष : रतलाम का माङ्गल्य मन्दिर

डॉ० अंशु भारद्वाज

शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन

पश्चिम में अरावली की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, डूबता हुआ सूर्य, निरभ्र आकाश में छाई स्वर्णिम लालिमा, मालवा के राजा भोज के दरबार के दीपशिखा कालिदास के मेघदूत को भव्य रचना की याद दिलाते हुए काले-भूरे मनोहारी बादल, अस्तोचलगामी सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए, रत्नपुरी के माङ्गल्य मन्दिर के सुवर्णमण्डित शिखरों और गगन में लहराती उर्ध्वगामी ध्वजाएँ निश्चित ही हमें अतीत के उस युग में ले जाकर खड़ा कर देती हैं, जो कभी भारत में मन्दिरों के घंटानाद एवं शंखनाद से गूँजता था और विद्वान्-विप्रवरों के पूजास्तवन के धीरे एवं रसपूर्ण, कर्णप्रिय वेद मंत्रोच्चार से और देवअर्चन स्रोतों से अभिभूत होकर प्रत्येक भारतीय की आत्मा भावविभोर हो उठती थी।

रतलाम-स्थित माङ्गल्य मन्दिर के सप्तदेवों के यह सात मन्दिर एक ही विशाल लाल पत्थर के पटांगण पर स्थित है। इस विशाल पटांगण को अपने पीठ पर उठाए हुए उत्कीर्ण हाथियों की पंक्तियाँ ऐसे लगती हैं मानो वे अपने कंधों पर पटांगणरूपी रथ और उन पर धरे इस सप्त मन्दिरों को उठाकर चल रही हों। यदि इन गजपंक्तियों को हम क्षण भर के लिए भूल जाएँ तो प्रतीत होता है कि पवनसुत स्वयं संजीवनी पहाड़ की तरह उन्हें कंधों पर धारण किए उड़ने की तैयारी में हों। या तो कोई यक्ष, कोई गन्धर्व, स्वर्गलोक में किसी अद्वितीय धर्मपुरी को अपने कंधों पर उड़ाकर रत्नपुरी में रख गया हो, इस भावना से कि भारत की मृतप्रायः संस्कृति माङ्गल्य

मन्दिर से प्रेरित होकर धर्म की पुनः संस्थापना करने के प्रति अपना मंगलाचरण कर रही हो।

धर्मद्वार में प्रवेश कर, धर्मपथ पर होते हुए, मंगलधाम द्वार के अंतर्गत प्रवेश कर, मांगल्य मन्दिर से घूमकर धर्मक्षेत्र का अवलोकन किया जाए, तो निःसंदेह ऐसा प्रतीत होता है कि यह विराट् अभियोजना जयन्त विटामिंस लि० की अधिष्ठाता श्रीमती प्रेरणा बहन ठाकोर के संकल्प व स्वप्न का एक ऐसा मूर्त स्वरूप है, जिसमें चप्पे-चप्पे पर प्रकृति के साथ शिल्प, सौन्दर्य भाव, पवित्रता एवं दर्शन बिखरा हुआ है और प्रत्येक पत्थर से मानो प्राण का सिंचन किया गया है।

‘नाहं वसामि वैकुंठे हृदयेऽपिवा । मद भवन्त्या यत्रगायन्ति तंत्र निष्ठांमि नारद ॥’

उक्त पंक्तियाँ भगवान् विष्णु ने नारदजी को कहीं, जिनका अर्थ है— ‘हे नारद ! मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता, न ही मैं योगियों के हृदय में रहता हूँ। मैं तो जहाँ मेरे भक्त (भक्तिमय गीत) गाते हैं, वहाँ रहता हूँ। यही भाव मांगल्य मन्दिर के वातावरण में उभरते हैं जैसे कि भगवान् साक्षात् यहाँ बस रहे होंगे और निश्चित रूपसे मांगल्य मन्दिर, मांगल्य सप्तदेवों का निवासस्थान बना रहा है। मांगल्य सप्तदेवों की भावना और कल्पना यदि श्रीमती प्रेरणा बेन ठाकोर के शब्दों में वर्णन की जाए, तो—

‘शिव’ और ‘पार्वती’ के लग्न हिमालय स्थित त्रियुगी नारायण के पवित्र स्थानक में सम्पन्न हुए, ऐसी मान्यता है कि यह अग्नि आज भी अवतरित है। उनके स्वरूप में ब्याह रचाकर मांगल्य मन्दिर धर्मक्षेत्र में इसकी स्थापना हुई है। ‘पार्वती’ यानी ‘शक्ति’ और ‘शिव’ यानी ‘मंगलमय’ विरक्ति— ऐसे शिव और पार्वती का परिणय यानी ‘शक्ति’ और मंगलमय विरक्ति का परिणय मानव जीवन में प्रस्थापित होते हुए जीवन ऊर्ध्वगामी बनता है। श्रीमहालक्ष्मी और श्रीनारायणजी धर्मक्षेत्र में प्रेम, सौम्यता, सुकर्म और सत्कार्यों के रूप में सदैव स्थित हैं; क्योंकि लक्ष्मी तभी ‘महालक्ष्मी’ बनकर कृपा की वर्षा करती हैं, जब वह श्रीनारायण जी के साथ आती हैं यानी सत्कार्यों के साथ आती हैं। ‘जगदम्बा’ तो जगत् की माँ हैं, जिनकी इच्छामात्र से इस जगत् का सृजन हुआ है। इस तरह श्रीजगदम्बा सृजन-शक्ति के रूप में मांगल्य मन्दिर में सदैव स्थित हैं। श्रीराम एक जीवनचरित्र हैं, जीवन्त मर्यादा हैं, जीवन्त सत्य हैं और श्रीराम के साथ सदैव भक्तिस्वरूपा श्रीसीताजी, वैराग्यस्वरूप श्री लक्ष्मणजी और निष्ठापूर्ण दासत्वस्वरूप श्रीहनुमानजी हमें सम्पूर्ण समर्पण की प्रेरणा देते हुए मांगल्य मन्दिर में सदैव स्थित हैं। गोपियों के प्राणप्रिय श्रीकृष्ण और उनकी हृदयेश्वरी राधा भी हैं और श्रीकृष्ण मन्दिर में मीरा का मनोहारी स्वरूप भी विराजमान है। श्री गणपति ऋद्धि व सिद्धि सहित बुद्धि, आनन्द, मंगल लाभ और शुभ सहित मांगल्य मन्दिर में सदैव स्थित है। परमवीर एवं परमदास के स्वरूप में हनुमानजी तादृश्य शक्ति, वेग, प्रखर वृद्ध, संगीत, कला और फिर भी अत्यन्त विनम्रता, परम दासत्व और सम्पूर्ण समर्पण की प्रेरणा देते हुए मांगल्य मन्दिर में सदैव स्थित हैं।

‘धर्मपथ’ वैशिव धर्म का प्रतीक है। तुलसी क्यारा हमें समर्पण की भावना प्रदान

करता है। मांगल्य मन्दिर मार्ग की प्रथम देवांगनाएँ दीपलक्ष्मी हमें आगे जाने का रास्ता दिखाती हैं। गंगा व यमुना की प्रतिमा पवित्रता का द्योतक है। गंगा व यमुना के नजदीक ही मांगल्य मन्दिर के सप्तसोपान हैं— ये सप्तसोपान अपने शास्त्र की सप्तपदी यानी ईश्वर के संग के परिजय की, ईश्वर की प्राप्ति की और आत्मा के परमात्मा के साथ मिलन की शेष विघ्न भी दूर हो जाते हैं और मन्दिरों में ईश्वर के दर्शन करने के लिए हमें पाँच सोपान चढ़ने पड़ते हैं। ये पाँच सोपान अपने पञ्चमहाभूत शरीर के प्रतीक रूप में हैं। प्रत्येक देह में परमात्मा के अंश रूप आत्मा निवास करती है और सांसारिक अर्थ में जब पञ्चमहाभूत का यह शरीर विलीन होता है, तभी आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है।

पूजन मण्डपम् में सप्तदेवों की प्राण-प्रतिष्ठा के समय प्रदीप्त की गई अग्नि का हवन है। एक और स्वर्ग, दूसरी ओर जप व अनुष्ठान व यज्ञ के लिए बना विशाल मण्डप कठोर साधना और सर्वव्यापी प्रेम का सूचक है। इन मंगलधाम से अभिव्यक्ति द्वार से होतु हुए हम 'शबरी धाम' में प्रवेश करते हैं। यहाँ 'याज्ञवल्क्य मण्डपम्' के नाम से प्रवचन स्थल 'मीरा कुटीर' पृष्ठ भाग में निवास हेतु निर्मित पर्णकुटियाँ, जिनके नाम प्राचीन ऋषियों के नाम पर रखे गए हैं।

सम्पूर्ण मंगलधाम क्षेत्र को एक सुन्दर परकोटे द्वारा घेरा गया है, जिसमें राजपूत शिल्प के प्रवेश-द्वार बनाए गये हैं। मांगल्य मन्दिर का निर्माण शिल्प-स्थापत्य की शुद्ध नागर शैली में किया गया है, जहाँ अनगिनत मूर्तियाँ और कृतियाँ जीवन्त रूप ले रही हैं और गुजरात के चालुक्यराज की एवं राजपुताने के भव्य शिल्प-इतिहास की याद दिला रही हैं। यूँ उड़ीसा की हस्तशिल्प, परमारों के सर्पबंधाकार प्रवेश-द्वारों और शिखर के अतिरिक्त आगे के छोटे-छोटे शिखरों पर दीपमालिकाओं में उत्कीर्ण शिल्प इसे राष्ट्रीय शिल्प का रूप दे देते हैं। इन मन्दिरों के निर्माण में राजस्थान एवं गुजरात के शिल्पियों का प्रमुख योगदान है और साथ ही दक्षिण भारत के कलश कारीगरी और भगवान् के वस्त्र आदि श्रृंगार के लिए वृंदावन के कारीगरों का योगदान है।

असीम धरोहर को अपने में संजोये हुए, देश और विदेशी पर्यटकों को भाविभोर, श्रद्धालुओं को आकृष्ट करता हुआ मांगल्य मन्दिर आज भारत के ऐसे अनूठे, अनुपम मन्दिर परम्परा में स्थापित हो रहा है, जो मालवा का गौरव कहा जाएगा।





25.

मन्दिरों में संगीत-नृत्य की परम्परा

डॉ० अंजना झा
नन्द किशोर झा
शोधार्थी

मन्दिरों से संगीत-नृत्य का सम्बन्ध अचानक ही नहीं जुड़ा। हर कला तथा काव्य परम्परा के सूत्र होते हैं जो उसे प्रेरणा देते हैं। गायन, वादन, नर्तन की कला भारत में हजारों वर्ष पूर्व प्रचलित हो चुकी थी। वैदिक काल से इसके प्रमाण मिलते हैं। *रामायण* और *महाभारत* में नृत्य, गान, गन्धर्व, नट, नर्तकों के उल्लेख हुए हैं। कहा जाता है कि चौथी-पाँचवीं शताब्दी से पूर्व ही देश के हर भाग में भगवान् नटराज की प्रतिमाएँ बनने लगी थीं जिनमें भगवान् शंकर को ताण्डव नृत्य करते हुए दिखाया गया था। दक्षिण भारत में सैकड़ों जगह पत्थर काटकर शिव की नटराज-प्रतिमाएँ बन चुकी थीं। वहाँ की नकल पर उड़ीसा, मध्यप्रदेश, केरल, तमिलनाडु आदि अनेक राज्यों में सातवीं शताब्दी से भगवान् नटराज की मुद्राएँ बनने लगी थीं। उन मुद्राओं ने समाज के सामूहिक मानस पर यह प्रभाव डाला कि लोग नृत्य को पूज्य समझने लगे। अन्यथा सैकड़ों वर्षों से मान्यता चली आ रही थी कि नृत्य गण-गणिकाओं का काम है।

दक्षिण भारत तथा उड़ीसा के इतिहास को देखें तो वहाँ जब भी कोई दक्षिण भारत तथा उड़ीसा के इतिहास को हीरे-जवाहरातों के आभूषणों के साथ मन्दिर को देवदासियाँ भी देता था। देवदासियों को हर रोज दर्शन खुलते ही भगवान् के सामने जाकर अपना नृत्य-गान प्रस्तुत करना होता था। मन्दिरों में नृत्य-गान की परम्परा प्राचीन काल से ही पूरे भारत में

प्रचलित थी। इस परम्परा के पीछे श्रीकृष्ण के वह वचन थे जो उन्होंने *श्रीमद्भगवद्गीता* के 16वें अध्याय में कहे थे। उन्होंने महर्षि नारद को कहा था कि हे नारद, न ही मैं वैकुण्ठ में बैठता हूँ और न ही योगियों के हृदय में, पर वहाँ अवश्य जाकर बैठता हूँ जहाँ मेरे भक्त संगीतमय गायन में मेरी भक्ति करते हैं—

‘नाहम् वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदयेन न च ।

मद्भक्ताः यत्र गयान्ति तत्र तिष्ठामि नारदः ॥’¹

ऐतिहासिक साक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि राजाओं ने मन्दिर बनवाये। प्रश्न यह है कि राजाओं ने मन्दिर क्यों बनवाये ? उन्हें मन्दिर बनवाने की प्रेरणा कहाँ से मिली ? क्योंकि प्रकृति का एक सिद्धान्त है कि कारण के बिना कर्म नहीं होता। पहले कोई कारण बनता है उसके पश्चात् उसका कर्म होता है। राजाओं ने पुराणों के माध्यम से यह जान लिया था कि हमारे ऋषियों ने कहा है कि नाद से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई है। मनुष्य का शरीर इन पञ्चभौतिक तत्त्वों से बना है। इसलिये नाद का उसके मन, मस्तिष्क और शरीर के अंगों पर शीघ्र प्रभाव पड़ता है। अनेक शास्त्रों ने नाद के रहस्य पर प्रकाश डाला और कहा कि नाद को ब्रह्मा, विष्णु, महेश का रूप ही मानना चाहिये। *शांखायनश्रौतसूत्र* में लिखा है—

‘नादरूप स्मृतो ब्रह्म नादरूपो जनार्दनः ।

नादस्या पराशक्ति जगत् रूपो महेश्वर ॥’²

ऋषियों ने आहतनाद और अनहतनाद की विषेशताओं का परिचय दिया। आहतनाद मनुष्यों द्वारा उत्पन्न किया जाता है, अनहतनाद प्रकृति में परिव्याप्त है। योगी उसी अनहतनाद की साधना करते हैं। ऋषियों ने नाद को गायन, वादन, नर्तन से जोड़ा। 13वीं शती के आचार्य शारंगदेव ने अपने ग्रंथ *संगीतरत्नाकर* में तथा मतंग मुनि ने अपने ग्रंथ *बृहद्देशी* में कहा है—

‘नादेन बिना गीतं न नादेन बना स्वरः ।

न वादेन बिना नृतं तस्मान्नादात्यकं जगत् ॥’³

अर्थात्, यह सारा जगत् ही नादात्मक है। इसमें न तो गीत ही बिना नाद के हो सकता है, न नाद के बिना स्वर हो सकता है। न नाद के बिना नृत्य ही हो सकता है। संगीत के सात स्वरों—शड़ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निशाद के मध्य 22 ऋतियाँ हैं। प्रत्येक ऋति की तरंगें सृष्टि में व्याप्त नाद बनकर पूरे ब्रह्माण्ड में घूमने लगती हैं। श्रीकृष्ण अपनी मुरली की मधुर धुन से उसी नादब्रह्म की उपासना करते थे। उसकी मुरली सुनते ही सारे देवता तथा प्रकृति की अनन्त शक्तियाँ घुटने टेककर उनके सामने बैठ जाती थीं। नाद का संबंध सीधा ब्रह्माण्ड से जुड़ा है और तब उसकी तरंगों का प्रभाव चराचर, मनुष्य, पशु, पक्षी तथा प्रकृति पर पड़ने लगता है। प्रकृति के इस रहस्य को भारतीय समाज ने समझ लिया और विधाओं का अनुसंधान किया जिनका अधिष्ठान नाद था।

गायन, वादन, नर्तन भारतीय संस्कृति में कभी भी मनोरंजन का साधन नहीं रहे। वैदिक साहित्य देखें या पौराणिक साहित्य— सभी में नृत्य, गान को उपासना का माध्यम नहीं, उपासना के रूप में ही स्वीकार किया गया है। वेदकाल में सत्रयज्ञ बिना नृत्य, गान के संपन्न नहीं किये जा सकते थे। वेद का यह सूक्त ‘गीताय सूतं, नृत्याय शैलूश’ इस बात की पुष्टि करता है कि यज्ञ के अवसर पर गीत के लिए सूत वर्ग के लोगों को तथा नृत्य के लिए शैलूश वर्ग के लोगों को आमन्त्रित किया जाता था।

पौराणिक साहित्य में महर्षि नारद वीणा के बिना कभी ‘ॐ नमो नारायण’ मंत्र का जाप नहीं करते थे। माँ सरस्वती के हाथ में वीणा का रहना आवश्यक था। भगवान् श्रीकृष्ण वंशी के नाद से सारे ब्रह्माण्ड के चराचरों को वश में कर लेते थे। शिव के डमरू की ध्वनि पर सृष्टि में ताण्डव हो जाता था। गणेश की मृदंग पर देवलोक के सारे देवता नाचने लगते थे। देवता ही नहीं भगवान् शिव का नन्दी भी थिरकने लगता था।

भरत मुनि ने नाट्य अर्थात् नर्तन को मंत्रों की ध्वनि के समान पवित्र और सिद्ध करते हुए इस संबंध में यह भी कहा है कि जितने क्षेत्र में वाद्यों की ध्वनि, नृत्य की ध्वनि, गीत तथा वाद्य की शुभ ध्वनि गुञ्जित होती है, उतने क्षेत्र में कभी कोई अशुभ बात नहीं होती—

‘योस्मक्कातोधां नाट्यस्य गीतपाट्य ध्वनिः शुभः ।

भविष्यत्थशुभं देशे नैद तस्मिन् कदाचन् ॥’⁴

मन्दिरों में देवदासियों की परम्परा उड़ीसा और दक्षिण भारत में सदियों तक प्रचलित रही। नृत्य-गान द्वारा भगवान् की सेवा करना उन देवदासियों का कर्तव्य था।⁵ भगवान् को नृत्य-गान के द्वारा प्रसन्न करना सभी सम्प्रदायों में सभी धर्माचार्यों ने स्वीकार किया। गायन-वादन को पूजा में सम्मिलित कर उसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया।

दक्षिण भारत के मन्दिरों में नृत्यगान के उद्देश्य से देवदासियाँ नियमित रूप से रखी जाती थीं। उनका काम केवल मन्दिर में नृत्य-गान करना ही होता था। यह परम्परा केवल दक्षिण भारत में नहीं, अपितु असम और उड़ीसा में भी देखने को मिलती है। उड़ीसा में मन्दिरों में नृत्य करने को पुरुष रखे जाते थे। इन्हें ‘गोतीपुआ’ कहा जाता था। ये गोपी बनकर मन्दिर में नृत्य करते थे।⁶ उड़ीसा में भुवनेश्वर मन्दिरों की नगरी है। वहाँ के खुले स्थानों में छोटे-बड़े सैकड़ों मन्दिर हैं। उनमें एक बड़ा भवन ‘नट मन्दिर’ कहलाता है। यह राजा ने नृत्य के लिये बनवाया गया था।⁷ एक समय था जब मन्दिरों में नृत्य गान की परम्परा काश्मीर, सौराष्ट्र, असम, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक तथा तमिलनाडु में बहुत प्रचलित है।

मध्यकाल में भगवान् की भक्ति और मन्दिरों का केन्द्र ब्रज क्षेत्र बना। ब्रज में दक्षिण भारत से मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, बंगाल से चैतन्य महाप्रभु आये, राजस्थान से मीरा आयीं। इधर ब्रज में स्थित स्वामी हरिदास, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, रसखान आदि ने श्रीकृष्ण की रागिनी के स्वर पूरे उत्तर भारत में फैला दिये।⁸ सभी

भगवतरसिक भक्तों ने अपने इष्ट और अपने अनुरञ्जन के लिये भगवान् की लीला का गान करना प्रारम्भ कर दिया।

नृत्य की यह परम्परा बंगाल में मध्यकाल में चैतन्य महाप्रभु ने लोकप्रिय की। उनके सम्प्रदाय में मृदंग, कठताल, तथा झांझ लेकर भक्त मण्डली नृत्य करते इतनी तन्मय हो जाती है कि कभी-कभी तो नर्तक अचेत होकर भूमि पर गिर जाता है।

राजस्थान में मीरा ने नाच-गाकर अपने गिरिधर को रिझाया और गुजरात में नरसी मेहता ने अपने भजनों और नृत्य से साँवरे गिरिधारी को मनाया। देश का कोई भाग ऐसा नहीं रहा, जहाँ नृत्य और संगीत धर्म से नहीं जुड़ा रहा, भारतीय संस्कृति में नृत्यगान तो क्या किसी भी कला की परिकल्पना बिना धर्म के नहीं हो सकती। यही कारण है कि मन्दिरों में प्रारम्भ से ही गायन और नर्तन को महत्त्व दिया गया।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय में दर्शन खुलने के समय भगवान् के समक्ष समाज गायन की परम्परा प्रारम्भ की। आज भी इस सम्प्रदाय के मन्दिरों में समाज गायन होता है। उधर महाराष्ट्र में आलवार भक्तों के समान वारकरी सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इस सम्प्रदाय के भक्त अपने आराध्य विट्ठल को सदैव नाचकर रिझाते हैं। इनके पदों को मराठी में 'अभंग' कहा जाता है। वारकरी सम्प्रदाय मण्डली का अभंग गायन देखने योग्य होता है, महाराष्ट्र में श्रीकृष्ण भक्ति का एक महानुभावी सम्प्रदाय भी चलता है। इस सम्प्रदाय में भी गायन-वादन का बहुत महत्त्व है।⁹

श्रीनाथ जी के जिस विग्रह की स्थापना महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने गोवर्धन पर्वत पर की थी, दिल्ली में सिकन्दर लोदी के शासनकाल में वह मूर्ति गोवर्धन से राजस्थान ले जायी गयी। सिकन्दर लोधी इस्लाम के उन्माद में अंधा होकर मन्दिरों को नष्ट कर रहा था। अतः ब्रज में उस समय भय का वातावरण उत्पन्न हो गया था।¹⁰ वर्तमान में श्रीनाथ जी का विग्रह उदयपुर जनपद के अंतर्गत 'श्रीनाथद्वारा' नामक स्थान में स्थापित है। आज भी वहाँ नियमित रूप से भगवान् के पट खुलते ही कीर्तन गान होता है।

मन्दिर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मन्दिर की संगीत-परम्परा को विगत 500 वर्षों से यथावत जीवित रखा गया है। संगीत में आज भी तानपुरा, पखावज, वीणा तथा झाँझों का प्रयोग होता है। सारा गान ध्रुपद-धमार में किया जाता है, जिसे हर कीर्तनकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने पूर्व के संगीतकारों से सीखता रहता है। गायकों को मन्दिर में 'कीर्तनियाँ' बोला जाता है क्योंकि वे संगीत के द्वारा भगवान् की कीर्ति का गान करते हैं। यह परम्परा महाकवि सूरदास, नन्ददास, कुंभनदास, परमानन्द दास से प्रारम्भ हुई थी। परम्परा का निर्वाह करते हुए आज भी कीर्तनियाँ में एक कीर्तनकार सूरदास की भाँति अंधा रखा जाता है।¹¹

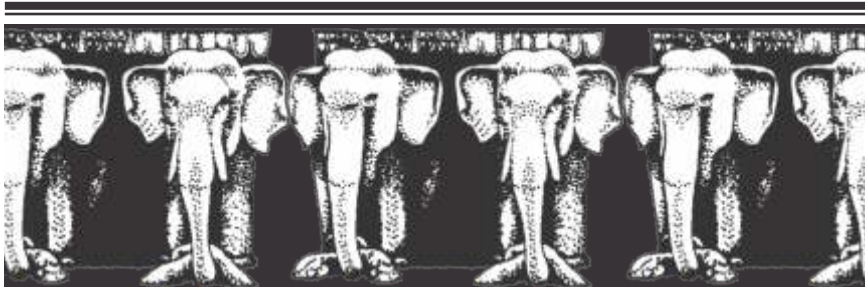
मन्दिर में प्रत्येक माह कई उत्सव होते हैं, जिनमें नृत्य भी होता है। एकल नृत्य ढाँढा करता है और समूह नृत्य महिला भक्तों की मण्डली मन्दिर के नृत्य के भी विविध रूप होते हैं।

होली पर अलग प्रकार के, वसन्त पर अलग प्रकार के, जन्माष्टमी पर अलग प्रकार के तथा नन्दोत्सव में अलग प्रकार के नृत्य होते हैं। सभी नृत्यों का स्वरूप आज भी परम्परागत है। श्रीनाथद्वारा का श्रीनाथ जी का मन्दिर आज देश के तीन बड़े वैभवसम्पन्न मन्दिरों में से एक है। सृष्टि सम्प्रदाय के देश में अन्य स्थानों पर भी अनेक वैभवसम्पन्न मन्दिर हैं। वहाँ भी संगीत और सेवा-विधान प्राचीन काल से ही प्रचलित है।¹²

आज भी प्रत्येक मन्दिर में आरती के समय हम संगीत एवं नृत्य के महत्त्व को देख सकते हैं। भगवान की आरती के समय भक्तगण एवं पुजारी मझीरा, कठताल, घण्टा, नगाड़ा आदि वाद्य प्रयुक्त करके भगवान् की आरती करते हैं तथा श्रद्धालुगण नाच-गाकर ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। अतः मन्दिरों के साथ-साथ संगीत-नृत्य की परम्परा भी अनवरत चलती रहेगी तथा कभी विलुप्त नहीं हो सकती।

सन्दर्भ :

1. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 16
2. शांखायनश्रौतसूत्र, 26.6.72
3. संगीतरत्नाकर, 1.2
4. नाट्यशास्त्र, 36.27
5. कथक ज्ञानेश्वरी, तीरथराम 'आजाद', पृ० 201
6. कथक दर्पण, तीरथराम 'आजाद', पृ० 89
7. ओडिसी डांस, डी०एन० पाटनिक, पृ० 32
8. ब्रज के धर्म-सम्प्रदायों का इतिहास, प्रभुदयाल मिश्र, पृ० 227
9. महाराष्ट्र के संत और अभंग, सुनीति आचार्य, पृ० 47
10. सूरसागर के नाट्यतत्त्व, अशुमान मिश्र, शोध-प्रबन्ध, पृ० 105
11. श्रीनाथजी की सेवा-पद्धति, भगवतीप्रसाद देवपुरिया, नाथद्वारा साहित्य संस्थान, पृ० 24
12. डॉ० गजानन शर्मा, स्मारिका, 1979, पृ० 403





26.

ग्वालियर के मन्दिरों का पर्यटन-उत्पाद के रूप में मूल्यांकन

प्रो० के० रत्नम्

प्राध्यापक, इतिहास, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय,
ग्वालियर

भौ

गोलिक परिस्थिति का प्रभाव मानव जीवन के हर क्षेत्र में पड़ता है, चाहे वह किसी राज्य की उन्नति हो या अवनति या फिर वहाँ का आर्थिक जीवन। ग्वालियर नगर को देश की रियासतों में एक धनवान् एवं शक्तिशाली राज्य माने जाने का श्रेय यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों एवं प्राकृतिक सम्पदा को ही जाता है। ग्वालियर नगर 26.22' उ० अक्षांश एवं 78.18' पू० देशान्तर के मध्य स्थित है। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई 197 मीटर (646 फीट) है। वर्तमान भौगोलिक सीमा-निर्धारण में ग्वालियर का स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता है तथा इसका क्षेत्रफल 18,370 वर्ग मील है। यह तीन ओर से घोंघे की नाल के आकार की सुन्दर पहाड़ियों की घाटी में बसा एक रमणीय शहर है। ग्वालियर के उत्तर-पश्चिम में मुरैना जिला, उत्तर-पूर्व में भिण्ड, पूर्व में दतिया एवं दक्षिण में शिवपुरी जिला स्थित है।

ग्वालियर की पूर्वी सीमा में बुन्देलखण्ड का झाँसी, जालौन (उरई), ललितपुर एवं मध्यभारत का सागर, पश्चिमी सीमा में राजगढ़, भोपाल, उत्तरी सीमा में चम्बल नदी तथा दक्षिणी सीमा में होल्कर राज्य इन्दौर एवं धार स्थित है। प्रारम्भ में ग्वालियर चम्बल क्षेत्र के साथ-साथ मालवा का क्षेत्र भी ग्वालियर राज्य के अंतर्गत सम्मिलित था। ग्वालियर नगर का नाम यहाँ स्थित किले की अनैदीय शक्ति एवं राज्यशक्ति प्रतीत होता है।

पर्यटन की धारणा भारतीय दर्शन में प्राचीन काल से ही देखने को मिलती है। मानव विकास के साथ ही पर्यटन का स्वरूप एवं क्षेत्र परिवर्तित हुआ है। भारतीय अध्यात्म में भी सृष्टि-रचना के समय भगवान् शिव को पर्यटक की तरह प्रदर्शित किया गया है। भारत के समस्त ज्योतिर्लिंगों की स्थापना से भगवान् शिव की यात्रास्थानों का पता चलता है।

अति प्राचीन काल में, जब मानव भोजन तलाशता था, तब वह भी एक पर्यटन ही था और बाद में विकास की ओर अग्रसर होने का कारण भी उसका भ्रमण ही था। भ्रमण के कारण ही वास्को-डी-गामा ने भारत में व्यापार की सम्भावनाओं का पता लगाया, कोलम्बस ने अमेरिका की खोज भी भ्रमण के कारण की। वैदिक काल में शिक्षा एवं व्यवसाय के लिए मनुष्य को यात्रा करनी पड़ी तथा मौर्यकाल में वाणिज्य एवं व्यापार हेतु यात्रा के कारण पर्यटन का स्वरूप परिवर्तित हुआ तथा गुप्तकाल में विदेशों में ज्ञान एवं वाणिज्य के लिए नये मार्गों के मिलने के उल्लेख से भी पर्यटन का ही पता चलता है। प्राचीन काल में भारत आनेवाले अनेक यात्रियों का उद्देश्य भारत को जानना था तथा वे पर्यटन के ही अंतर्गत आते थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत में पर्यटन की धारणा अति प्राचीन है तथा समयानुसार इसमें भी परिवर्तन होता रहा है।

‘पर्यटन’, जिसे अंग्रेज़ी में ‘टूरिज़्म’ कहते हैं, वह लैटिन भाषा के ‘टर्नोज़’ शब्द से लिया गया है, जो पहिये की तरह गोल आकृति की एक गोल पिन जैसा औज़ार है। अर्थात् टर्नोज़ नामक औज़ार की चक्राकार आकृति के सिद्धान्त पर ही यात्रा-चक्र या पैकेज टूर या एकमुश्त यात्रा के विचार का सृजन हुआ। आधुनिक पर्यटन का मुख्य आधार यही है। ‘टर्नोज़’ शब्द का प्रयोग लगभग 1643 ई० में विभिन्न राष्ट्र व क्षेत्र के स्थानों की यात्रा अथवा भ्रमण करने हेतु किया जाता रहा।

एक व्युत्पत्ति के अनुसार ‘टूरिज़्म’ शब्द के प्रारम्भिक ‘टूर’, जो हिब्रू शब्द ‘टोर्च’ से लिया गया है तथा जिसका अर्थ ‘यात्री’ का किसी विशेष स्थान पर जाकर खोज करना है, ही ‘टूरिज़्म’ (पर्यटन) शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। प्रत्येक पर्यटक किसी-न-किसी उद्देश्य या कारण से ही यात्रा प्रारम्भ करता है। अतः पर्यटक की यात्रा का प्रथम कारण उसकी मानसिक जिज्ञासा होती है। उसमें जिज्ञासा होती है कि उसने जिस स्थानविशेष के बारे में सुना है, उसके विषय में वह और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सके। यह ज्ञान उसके रोज़गार-संबंधी भी हो सकता है या शिक्षा-लाभ, पर्यावरण व मनोरंजन के विषय या व्यवसाय में और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की लालसा। इसी जिज्ञासा की शान्ति हेतु वह पर्यटन का सहारा लेता है।

धार्मिक स्थलों की यात्रा करना बहुत ही प्राचीन प्रेरणा-तत्त्वों में से एक है। धार्मिक स्थलों एवं पवित्र स्थलों से प्रेरित होकर मनुष्य एक बड़ी मात्रा में तीर्थयात्री बन गया है।

ईसाई-जगत् में येरुशलम एवं वेटिकन सिटी की यात्रा करना बहुत ही सौभाग्यशाली एवं महत्त्वपूर्ण माना गया है। अरबी मुस्लिम समाज में मक्का (अरब) की यात्रा करना बहुत ही

आवश्यक एवं महत्वपूर्ण माना गया है।

भारत में भी हिंदू धर्मानुयायी तीर्थस्थलों की यात्रा करते हैं। प्रत्येक तीन वर्ष में पड़नेवाला कुम्भ का मेला लाखों की संख्या में देशी-विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। मथुरा में श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव व ब्रज की होली लाखों की संख्या में विदेशी पर्यटन को लुभाती है। पुरी (उड़ीसा) में जगन्नाथजी की रथयात्रा प्रत्येक वर्ष लाखों से भी अधिक संख्या में पर्यटकों को एकत्रित करती है।

पर्यटन-उत्पाद में भौतिकी के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक संरचना भी शामिल होती है, जिसके सामने अपने को यथार्थ में बदलने की चुनौती होती है। इस चुनौती का सामना करने में समस्या यह होती है कि विभिन्न संस्कृतियों की प्राथमिकताएँ और पसन्द-नापसन्द (प्रतीतियाँ) अलग-अलग होती है। विश्व स्तर पर पर्यटन व्यावसायिक संतुष्टिकरण का एक शाश्वत (ज्यादातर पश्चिमी) मानदण्ड निर्धारित करने का प्रयत्न करते हैं। गुणवत्ता-नियन्त्रण की समस्या के अलावा संयोग भी एक ऐसा कारक है, जिसके कारण सुनियोजित भ्रमण कार्यक्रम भी भिन्न-भिन्न हो सकता है। प्राकृतिक कारणों या मनुष्य की गलती के कारण या फिर दुर्घटना या अचानक और अनदेखी परिस्थितियों के कारण भी कार्यक्रम गड़बड़ा सकता है। पर्यटन-सेवाओं में जोखिम काफी अधिक होता है; क्योंकि इन सेवाओं को विलास माना जाता है और अनिवार्य सेवाओं के बाद ही इन पर ध्यान दिया जाता है। स्थानीय लोग प्रायः पर्यटन के प्रति विद्वेष भाव रखते हैं; क्योंकि वे इसे पाँच सितारा संस्कृति की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं। इसके अलावा उनकी जीवन-शैली और पर्यटकों की जीवन-शैली में पर्याप्त अन्तर होता है। पर्यटन-सेवाओं के उत्पादकों को भी जोखिम उठाना पड़ता है। भ्रमण-सेवाओं का उपभोग रास्ते में और गंतव्य-स्थल पर किया जाता है। उन्हें पहले से जाँचा-परखा और देखा नहीं जा सकता और न ही उसकी तुलना की जा सकती है। वे पहले की साख और विज्ञापन पर निर्भर करते हैं। सेवाएँ किसी विशेष ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भ में पैदा की जाती हैं और ये कार्य करने की पद्धति से प्रभावित होती हैं। इसके अलावा सेवाओं की आपूर्ति तय होती है और इनकी तैयारी पहले ही कर ली जाती है। किन्तु उत्पादों की पूरी तरह खपत न होने का जोखिम उत्पादक को ही उठाना पड़ता है। सेवाओं के बारे में यह कहना है कि यात्री-सेवाओं का भण्डारण नहीं किया जा सकता है, उदाहरण के लिए किसी हवाई जहाज में किसी विशेष दिन बची हुई सीट या होटल के खाली कमरे के उपयोग को दूसरे दिन या समय या स्थान तक आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। इसलिए किसी सेवा की मांग और ढोने की क्षमता का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन और आकलन कर लेना चाहिए। उदाहरण के लिए प्रायः यह कहा जाता है कि भारत में हवाई जहाज की अपर्याप्तता के कारण पर्यटकों के आगमन में बाधा उत्पन्न होती है। इस कमी को पूरा करने के लिए एयर टैक्सियों की शुरूआत की गई है, पर इन सेवाओं के शुरू होने से नयी मांग नहीं पैदा की जा सकी है या फिर इनसे कमी की भरपाई नहीं हुई है। अपितु इन्होंने एयरलाइन्स के 20 प्रतिशत यात्रियों को ही अपनी ओर आकृष्ट किया

है। इससे इण्डियन एयरलाइन्स और एयर टैक्सी— दोनों के लिए संघर्ष पैदा हो गया है। और इसके अलावा 6.5 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की भी हानि हुई है। पर्यटन में मांग स्थिर नहीं होती है। और प्रवृत्तियों में तेजी से बदलाव आता है, परन्तु सेवाओं के निर्माण में समय लगता है। होटल और परिवहन-जैसी सेवाएँ एक बार उपलब्ध हो जाने पर लंबे समय तक कायम रहती हैं। प्रायः इनकी मांग में बदलाव आता है, पर ये सेवाएँ हमेशा मौजूद रहती हैं। ये सेवाएँ उत्पादक के लिए सदैव लाभप्रद और मुनाफ़ा देनेवाली नहीं होती हैं। विकासशील देशों में जोखिम को एक पर्यटन मौसम से दूसरे पर्यटन मौसम में स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता है। मांग-आपूर्ति जैसी बाधाओं और सामाजिक-राजनीतिक कारणों के अतिरिक्त सेवाओं को चलानेवाले और उपलब्ध करानेवाले लोग भी मौसम (गर्मी और बरसात) से प्रभावित होते हैं। उनके पास विपणन में निवेश करने के लिए पूँजी की भी कमी होती है। कई मामलों में वे काफी हद तक अनौपचारिक क्षेत्र, जैसे— दलाल या बिचौलिये पर निर्भर करते हैं, ऐसे लोगों को पर्यटक सन्देह की दृष्टि से देखते हैं और उनके काम करने के तरीके से असुविधा भी महसूस करते हैं। इसके बावजूद छोटे स्तर के संचालक मुख्य रूप से मौखिक प्रार्थनाओं और दलाल तथा बिचौलियों-जैसे अनौपचारिक क्षेत्र से सीधा सम्पर्क स्थापित कर मुनाफ़ा कमाते हैं।

ग्वालियर में प्राचीन काल में नागवंश के समय से मन्दिरों की परम्परा दिखलाई पड़ती है। ग्वालियर में अनेक सम्प्रदायों से संबंधित मन्दिर स्थित हैं। इन मन्दिरों की ऐतिहासिकता अत्यन्त प्राचीन है। ग्वालियर दुर्ग में स्थित सहस्रबाहु का मन्दिर प्राचीनतम मन्दिरों में एक है। जिसकी ऐतिहासिकता के कारण यह मन्दिर एक महत्वपूर्ण पर्यटन उत्पाद है, जो पर्यटकों को आकर्षित करता है।

ग्वालियर में शैव सम्प्रदाय का प्रभाव दिखलाई पड़ता है, जिसके कारण ग्वालियर में अनेक शिवालय स्थापित हैं, जो यहाँ पर्यटन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और वे पर्यटन-उत्पाद की श्रेणी में आते हैं। इन शिवालयों में अचलेश्वर महादेव, टपटेश्वर महादेव, गुप्तेश्वर महादेव आदि प्राचीनतम हैं।

ग्वालियर में वैष्णव सम्प्रदाय के भी अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मन्दिर हैं, जो पर्यटन-उत्पाद के श्रेणी में आते हैं।



स्थायित्व

खण्ड





1.

मन्दिर-स्थापत्य कला के विभिन्न पक्ष

डॉ० पद्मा सक्सेना

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई (उत्कृष्ट) कला एवं
वाणिज्य महाविद्यालय, ग्वालियर (म०प्र०)

भा रतीय संस्कृति में मन्दिरों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। धार्मिक आस्था के साथ-साथ ये मन्दिर हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के भी प्रमुख केन्द्र हैं। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक हमें मन्दिर-निर्माण की एक लम्बी शृंखला देखने को मिलती है। मन्दिर-निर्माण की इस शृंखला के अंतर्गत हमें स्थापत्यकला के विभिन्न रूप एवं विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं।

महत्त्वपूर्ण बात है कि उत्तर भारत की स्थापत्य कला शैली दक्षिण भारत की स्थापत्य कला शैली से भिन्न रूप में देखने को मिलती है। इस क्षेत्र में पल्लवों की देन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके काल में मन्दिर स्थापत्य कला की प्रमुख चार शैलियों का विकास हुआ। पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन ने गुहा-मन्दिर की शैली को अपनाया था। ये मन्दिर ठोस चट्टानों को खोखला करके बनाए गए हैं। इनमें सामने एक बरामदा और भीतर खम्भों पर सधा हुआ हॉल होता था। उनके लिंग, द्वारपाल, प्रभातोरण स्तम्भ— सभी एक विशिष्ट शैली के हैं।

राजा नृसिंहवर्मन द्वारा अपनाई गई शैली 'मामाल्ल शैली' कहलायी। इस शैली के मन्दिर ठोस पत्थरों के टुकड़ों को काँट-छाँटकर बनाये गये। हरेक मन्दिर एक पत्थर के टुकड़े का ही बना, उसके जोड़ नहीं हैं। इस शैली के मन्दिर में स्तम्भ अधिक सुन्दर हैं, और दीवारें उभरू मूर्तियों से सुशोभित हैं। चेन्नई-¹ स्थित 'सात रथ का मन्दिर' इसका अच्छा उदाहरण है।

राजा राजसिंह के काल में निर्मित मन्दिरों की शैली राजसिंह शैली कहलायी। काँची में बना 'कैलाशनाथ का मन्दिर' इसका अच्छा उदाहरण है। इसके अंतर्गत नीचे की मंजिल वर्गाकार और ऊपरी भाग पिरामिड आकार का शिखर है। जिसके ऊपर के खण्ड नीचे के खण्डों से क्रमशः छोटे होते जाते हैं।

राजा अपराजित ने इस शैली में परिवर्तन किया और उसके काल में निर्मित मन्दिरों के लिंग ऊपर की ओर पतले होते गये और शिखरों की गर्दन पहले की अपेक्षा अधिक मोटी हो गई। वहीं बादामी के चालुक्यों द्वारा निर्मित 'विरुपाक्ष मन्दिर' विशुद्ध दक्षिण भारतीय शैली में बनवाया गया। इस प्रकार वास्तुकला की 3 विशेषताएँ सामने आयीं — 1. सिंह स्तम्भ मण्डप के सुदृढ़ स्तम्भ, 2. पिरामिड आकार का शिखर और 3. चारदीवारी। चोल-सम्राटों के शासनकाल में मन्दिर-स्थापत्य में जिस नयी शैली का विकास हुआ, उसे 'द्रविण शैली' कहा गया। इस शैली की प्रमुख विशेषता यह थी कि गर्भगृह के ऊपर एक के बाद एक पाँच से सात मंजिलों तक का निर्माण होता था। हर मंजिल एक विशेष शैली में निर्मित होती थी जिसे 'विमान' कहते थे। प्रतिमा कक्ष के सामने स्तम्भोंवाला और सपाट छत का एक विशाल हॉल होता था जिसे 'मण्डप' के नाम से जाना जाता था। इसके स्तम्भों पर बारीक खुदाई होती थी।

इस काल का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण तंजौर का बृहदेश्वर मन्दिर है। यह शिव मन्दिर 180 फुट लम्बा और इसका पिरामिड आकार का शिखर 196 फुट ऊँचा है। इस मन्दिर के चार भाग एक दूसरे से सम्बद्ध एक ही धुरी पर बने हुए हैं। ये भाग हैं— 1. नदी मण्डप, 2. अर्द्धमण्डप तथा 3. गर्भगृह। पूरा मन्दिर एक चारदीवारी के भीतर बना हुआ है। मन्दिर का सबसे महत्वपूर्ण अंग है गर्भगृह तथा शिखर। यह तीन भागों में बँटा हुआ है— 1. आधार— यह 42 वर्गफुट क्षेत्र में बना हुआ है। यह 50 फुट ऊँचा है; 2. विमान का मध्य भाग— यह ऊपर की ओर जाते हुए पतला हो गया है। पिरामिड आकार का यह भाग 13 मंजिलों में बनाया गया है। ऊपर की मंजिलें बराबर छोटी होती गई, 3. शीर्ष भाग— यह मन्दिर का सबसे ऊपरी भाग है, और एक गोलाकार गुम्बद के रूप में है। पर्सी ब्राउन का मत है कि तंजौर का बृहदेश्वर मन्दिर द्रविण शिल्पकला की सर्वोत्तम कृति है और भारतीय वास्तुकला की कसौटी है।'

बृहदेश्वर मन्दिर के बाद गंगैकोण्ड चोलपुरम् का मन्दिर है। यह 340 X 110 फुट के आयत में बनाया गया है, किन्तु इसका शिखर 150 फुट ऊँचा है। मण्डप कम ऊँचा है, किन्तु इसमें 150 स्तम्भ हैं। ऐरावतेश्वर मन्दिर में रथ के आकार का पाषाण का सभामण्डप है जिसे हाथी खींच रहे हैं।

उत्तर भारत की स्थापत्य कला दक्षिण भारत से पूर्णतया भिन्न रही। मौर्य एवं गुप्तकला के अंतर्गत जहाँ गुहामन्दिर, स्तूप, चैत्य, एवं मूर्तिकला में नये-नये प्रयोग हुये, वहीं वैदिक धर्म से प्रभावित होकर उत्तर भारत के राजाओं ने बड़े-बड़े मन्दिरों की स्थापना करायी। इस काल के मन्दिरों की प्रायः तीन शैलियाँ थीं— 1. उड़ीसा, 2. बुंदेलखण्ड, 3. गुजरात और

दक्षिणी राजस्थानी शैली ।

उत्तर भारत के बहुत से मन्दिरों को तुर्क तथा मुग़लों ने नष्ट कर दिया था, किन्तु फिर भी अनेक मन्दिर आज भी विद्यमान हैं । ये मन्दिर मुख्यतया उड़ीसा, बुंदेलखण्ड, राजस्थान, ग्वालियर और मथुरा में हैं ।

उड़ीसा का लिंगराज का मन्दिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है । इसका शिखर 55 मीटर ऊँचा है और उसका ऊपरी भाग कलश से विभूषित है । पुरी का जगन्नाथ का मन्दिर भी वास्तुकला का एक श्रेष्ठ उदाहरण है । कोणार्क का सूर्य मन्दिर भी रथाकार में बनाया गया, जिसे शक्तिशाली घोड़े खींच रहे हैं ।¹

बुंदेलखण्डी शैली में खजुराहो के मन्दिर एवं उनकी स्थापत्य कला उल्लेखनीय है । इनमें भी सबसे सुन्दर और विशाल कंदरिया महादेव का मन्दिर है जो कि 116 फुट ऊँचा है इसमें अनेक शिखर समूह हैं जो ऊपर की ओर निरन्तर अधिक छोटे होते चले गये हैं । आबू पर्वत पर स्थित दिलवाड़ा मन्दिर संगमरमर का बनाया गया है । इसमें संगमरमर की विलक्षण जालियाँ, बलबूटे, नक्काशी कला के उच्च कोटि के नमूने हैं । मध्यप्रदेश में ग्वालियर जिले में सास-बहू का मन्दिर, तेली का मन्दिर-स्थापत्य कला के अच्छे नमूने हैं । इसी प्रकार जबलपुर में चौंसठ योगिनियों का विशाल मन्दिर तथा रीवा में वैद्यनाथ महादेव का मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से श्रेष्ठ है । यद्यपि सौराष्ट्र का सोमनाथ का मन्दिर महमूद गजनवी द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया किन्तु आज भी वह अपनी श्रेष्ठ स्थापत्य कला के लिये प्रसिद्ध है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्दिर स्थापत्य कला की विभिन्न शैलियाँ एवं विभिन्न पक्ष आज भी इतिहास में स्थापत्य कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं ।

आधार-ग्रन्थ :

1. D.D. Kashambi, *Culture and Civilization of Ancient India*.
2. K.A. Neelkanth Shastri, *Development of Religion in South India*.
3. Stella Kramrisch, *Hindu Temple*, 2 Vols.
4. *Cambridge History of India*, Indian Architecture, Vol. II, III
5. R.P. Tripathi, *History of Ancient India*
6. A.L. Basham, *The Wonder that was India*
7. A.L. Shrivastava, *History of Ancient India*
8. R.K. Mukherjee, *Hindu Civilization*.
9. K.A.N. Shastri, *A History of South India*
10. S.K. Aiyangar, *History of Ancient India*.





2.

मन्दिर-स्थापत्य कला के विभिन्न पक्ष

डॉ० चंचल बरबेले वर्मा

शोधार्थी

स दियों से भारत को प्रायः मन्दिरों के देश के रूप में जाना जाता है, जहाँ पर इन मन्दिरों का विकास चरणबद्ध तरीके से हुआ। अपने प्रारम्भिक काल में यहाँ प्रतीक के रूप में एक चबूतरे का निर्माण कर दिया था। ऋग्वेद में ऐसे ही एक यज्ञ-सदर का विवरण मिलता है। मन्दिर-विकास के द्वितीय चरण में पूर्वनिर्मित चबूतरे के चारों ओर वेदिका बना दी गयी। वर्तमान में प्रारम्भिक काल में बने मन्दिरों के नमूने अत्यल्प मात्रा में जयपुर के समीप बैराठ में 250 ई०पू० का एक मन्दिर मिला है। इससे ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक काल में इन मन्दिरों का आकार अत्यन्त छोटा एवं ईंट तथा लकड़ी से निर्मित अत्यन्त सादे ढंग से बनाया जाता था। कालान्तर में 7वीं शती के अंत तक आते-आते मन्दिर स्थापत्य शैली ने एक विशिष्ट और व्यावहारिक रूप धारण करना प्रारम्भ किया और बढ़ती हुई पूजन-विधि की जटिलताओं ने मन्दिर की विभिन्न अंगों के विकास में नये प्रतिमान जोड़े।

मन्दिर के प्रमुख अंग

जगती या अधिष्ठान— इस पर मन्दिर का निर्माण किया जाता था। यह दो फीट से लेकर 24 फीट तक ऊँची (कैलाश मन्दिर, एलोरा) मिलती है। जगती के ऊपर सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं, गुप्तकाल में आकर मन्दिरों की जगती को चारों तरफ से अलंकृत किया गया।

जगती को सर्वप्रथम चार भागों में बाँटा जाता था, केवल एक-चौथाई भाग में मन्दिर

बनता था, बाकी स्थान को अन्य के लिए छोड़ दिया जाता था। जगती मुख्यतः तीन प्रकार की होती थी— चौरस, लंब चौरस व गोलाकार।

पीठिका— जगति पर मन्दिर बनाया जाता ही पीठिका कहलाती थी। पीठिका दो प्रकार की होती थी—, महापीठिका व सामान्य पीठिका।

मंडोवरा— पीठिका में प्रवेश करने के बाद अलग-अलग खानों (खाँचों) का मिलना मंडोवरा कहलाता था। ये मंडोवरा अलग-अलग प्रकार के होते थे, जिसमें मंची, जंघा, भरीण्डी, खण्ड, कलश, आदि अनेक प्रतीकांकन उत्कीर्णित मिलते हैं।

जंघा— यह मन्दिर का मध्य भाग अथवा शिखर के नीचे का भित्तिवाला भाग होता था। जंघा भी विभिन्न प्रकार की होती थी, जैसे नागर शैली जंघा, जो मध्यप्रदेश के मन्दिरों में पाई जाती है। लाटी जंघा अर्थात् जंघाओं में स्त्रियाँ बनाना जिसमें गुजरात का प्रभाव दिखाई देता है। बैराटी जंघा, जिसमें कमल-पत्र मिलते हैं जो सम्पूर्ण भारत के मन्दिरों में देखने को मिलती है। द्रविड़ जंघा, जिसमें बहुत सारे शंख बने होते थे। जाड्याकुंभ-पत्रिका, पुष्पकुंद आदि भाग जगती के होते थे।

प्रवेश द्वार— मन्दिर-निर्माण के प्रारम्भिक काल में प्रवेश-द्वार को अत्यंत सादे ढंग से बनाया जाता था। कालान्तर में प्रवेश द्वार के दोनों पक्षों में गंगा और यमुना की मूर्तियाँ उकेरी जाने लगीं। चूँकि मन्दिर में प्रवेश से पूर्व स्नान द्वारा पवित्र होने की परम्परा थी। अतः प्रवेश-द्वार अत्यन्त भव्य बनाए जाने लगे और इनमें कई द्वार-शाखाएँ भी बनाई गयीं। प्रतिहारी शाखा, मिथुन और पत्रलता इत्यादि का अंकन इसी भावना से किया गया। इन्हीं प्रवेश-द्वारों पर पद्म तथा शंख-जैसे मांगलिक-चिह्नों को भी अंकित किया गया।

पूर्व का द्वार भक्ति का द्वार कहलाता था, पश्चिम का द्वार मुक्ति का द्वार कहलाता था, यहाँ बलि दी जाती थी। उत्तर का द्वार पवित्र-द्वार कहलाता था एवं दक्षिण के द्वार को तान्त्रिक-द्वार कहते थे, जहाँ तान्त्रिक पूजा होती थी।

गोपुरम् द्वार— मन्दिर के प्राचीर और चतुर्दिक् प्रवेश-द्वार के ऊपर निर्मित बहुमंजिले भवन, जिन्हें नाना प्रकार के पौराणिक देवी-देवताओं एवं तलालुओं से सजाया-सँवारा जाता था, गोपुरम् कहा जाता था।

एक मंजिला द्वार 'शोभा-द्वार' कहलाता था, दो मंजिला द्वार 'शाला-द्वार', चार मंजिला द्वार 'धर्म-द्वार', पाँच मंजिला द्वार 'महागौपुर' अथवा भगवान् का द्वार कहलाता था। मन्दिर के द्वार मुख्यतः चार प्रकार के होते थे और ये द्वार नियमानुसार बनाए जाते थे। उत्संग-द्वार, सभ्य-द्वार, असभ्य-द्वार, पृष्ठभाग-द्वार इसके अलावा विजय-द्वार व कुबेर-द्वार भी बनाए जाते थे।

मन्दिर के बाहर तोरण-द्वार पर विचित्र जीवों को बनाया जाने से तात्पर्य मन्दिर को

नजर न लगे इसलिए होता था।

औदुम्बर (देहली)— मुख्यतः तीन प्रकार की होती थी,— ग्रासपट्टी, मदारक एवं अर्धचन्द्राकार।

उत्तर ललाटबिम्ब— यह मन्दिर को पहचानने के लिए मुख्य भूमिका निभाता है। बाहर यदि गणेश या पार्वती है तो निश्चित है, वह मन्दिर शिव का मन्दिर होगा। बाहर गरुड़ या कमल है तो विष्णु जी का मन्दिर है और यदि बाहर सिंह हैं तो निश्चित है, दुर्गा का मन्दिर है।

गर्भगृह— यह मन्दिर का मुख्य कक्ष होता था। इसके भीतर देव-प्रतिमा की स्थापना की जाती थी। गर्भगृह यह मन्दिर का मुख्य कक्ष होता था। इसके भीतर देव-प्रतिमा की स्थापना की जाती थी। गर्भगृह तीन तरफ से दीवारों से ढका होता था। इसके एक ओर प्रवेश-द्वार होता था। गुप्त काल में इसे चौकोर ढंग से बनाया जाता था। गर्भगृह में तीसरी तथा बाह्य दीवारें प्रारम्भ में अत्यंत सादी थीं, तत्पश्चात् भीतरी एवं बाहरी तथा ताक पर विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं और उन्हें मांगलिंग मिथुन, लतागुल्म, अप्सराओं तथा किन्नर-गन्धर्व से अलंकृत किया गया।

मन्दिर की पहचान के लिए विशेष मार्गदर्शक ही होता था। इसे अंग्रेजी का 'ब्लैक बॉक्स' कहना ही उचित होगा। ज़मीनी तल पर गर्भगृह के नौ भाग किए जाते थे और बिल्कुल मध्य भाग पर जिस देवता का मन्दिर बनाया जाना है, उसका प्रतीकांकन किया जाता था, उस प्रतीकांकन के ऊपर ही प्रतिमा की स्थापना की जाती थी। अतः किसी मन्दिर की सही पहचान करनी हो तो पुरातत्त्ववेत्ता सबसे पहले 'ब्लॉक बॉक्स' ही खोजता है। यह प्रमाण हमें 9-10वीं से 12-13वीं शताब्दी तक मिलते हैं।

देवी के मन्दिर के गर्भगृह का आकार गोल होता था व देवता के मन्दिर के गर्भगृह का आकार चौरस होता था। प्राचीन काल में स्त्री ईंट और पुरुष ईंटों के प्रमाण भी मिले हैं लेकिन इसका पालन कम ही हुआ प्रतीत होता है। कई बार तो इंटों में क्षेत्रों व शिल्पियों के चिह्न मिले हैं। अतः ग्यारह प्रकार की ईंटें होती थीं।

स्कन्ध— गर्भगृह की दीवारों ऊपरी भाग को स्कन्ध कहते थे।

मण्डप— यह गर्भगृह के चतुर्दिक् बनाया जाता था, जिसका प्रमुख उद्देश्य मन्दिर की प्रदक्षिणा को सुगम बनाए रखना था। मण्डप विभिन्न स्तम्भों पर आधारित होते थे। इन मण्डपों को 'चौकी मण्डप' कहा जाता था, ये कुल बारह प्रकार के होते थे। एक चौकी वाला 'सुभद्र-मण्डप' कहलाता था। तीन चौकी वाला 'क्रिटर-मण्डप' कहलाता था। चार चौकी वाला 'दुर्दम्भी-मण्डप' व बाहर चौकी 'सूर्यात्म-मण्डप' कहलाता था। नृत्य-मण्डप 27 प्रकार के होते थे।

स्तम्भ— स्तम्भ मन्दिर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। ये विभिन्न प्रकार

के होते थे, जैसे चार कोने वाले स्तम्भ को 'चतुरस्क' कहते थे। आठ कोने वाले को 'अष्टकोणीय', गोल स्तम्भ को 'भद्र' कहा जाता था और कोने वाले स्तम्भ 'प्रतिरथ' कहलाते थे।

शिखर— मन्दिर का शीर्ष भाग, जिसमें खरबुजिया, आमलक, कलश और छत्र होता था, 'शिखर' कहलाता था। यह गर्भगृह की दीवारों के कोणों के अनुरूप बनाया जाता था। अपने निर्माण के आरम्भिक काल में शिखर अत्यन्त छोटा बनाया जाता था परन्तु बाद में इसे अत्यधिक ऊँचा बनाया जाने लगा, यह शिखर प्रायः दो भागों का होता था, जिसे प्रायः गर्भगृह और मण्डप के ऊपर बनाया जाता था। इसमें गर्भगृह के ऊपरी शिखर शीर्ष को आमलक, कलश और पताकायुक्त छत्र से अलंकृत किया जाता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिर के ऊपर शिखर शीर्ष के निर्माण का प्रधान उद्देश्य संसार की स्थूलता से ज्ञान की ओर जाने का संकेत है। शिखर विभिन्न प्रकार के होते थे, जैसे— वैजयंति शिखर, श्रीकर्ष शिखर, स्वस्तीबंध शिखर, श्री विशाल शीर्ष, केशट शीर्ष इत्यादि एवं प्रत्येक शिखर में कुल 256 खँचे होते थे और इन खँचों में देवी-देवताओं के प्रतीकांकन किए जाते थे।

कण्ठ या ग्रीवा— भित्तियाँ अथवा शिखर के बीचवाला भाग कण्ठ या ग्रीवा कहा जाता था।

कलश— कलश पृथिवी का प्रतीकांकन है। कहा जाता है कि यह वह अमृत-कलश है, जिन्हें धन्वन्तरि लेकर आये थे। सैधव सभ्यता के मन्दिरों में भी कलश दिखाई देते हैं क्योंकि यह सृष्टि की सृजनात्मकता का प्रतीक है। कालांतर में कलश का रूपांतरण विभिन्न रूपों में होता गया। स्वर्ण-कलश को समृद्धि का सूचक माना जाता था, इसके ऊपर अमल सारिका होती थी। नीचे आमलक होता था जो सुंदरता का प्रतीक है।

शुकनासिका— मन्दिर के ऊपर शिखर पर बाहर की ओर शुक नास (तोते की नाक) की तरह निकली हुई होती थी जो शुकनासिका कहलाती थी। शुकनासिका सामने के मंडप का निर्माण करती थी।

मन्दिरों की विभिन्न शैलियाँ

1. **नागर शैली अथवा आर्य शिखर शैली**— इस शैली के मन्दिर प्रायः उत्तर भारत में पाए जाते हैं। शिखरयुक्त होने के कारण इन्हें आर्य शैली के मन्दिर के नाम से भी जाना जाता है। चंदेल महाराजाओं द्वारा बनवाया गया खजुराहो का मन्दिर नागर शैली का उदाहरण है। इस शैली में मन्दिर के चार भाग होते हैं— अर्धमण्डप, मध्यमण्डप, महामण्डप व शिखर इत्यादि। महामण्डप में शाम को नृत्य होता था।

2. **द्रविड़ शैली**— इस शैली के मन्दिरों का निर्माण प्रायः दक्षिण भारत में किया

गया। इस शैली के मन्दिरों के शीर्ष या छतें प्रायः गजपृष्ठ कृत होती हैं। इसके विमान (गर्भगृह के ऊपर का ऊँचा शिखर) अत्यन्त ऊँचे और बहुभौमिक गगनचुम्बी गोपुरों से अलंकृत होते हैं। तमिलनाडु तथा आंध्रप्रदेश के कुछ भाग द्रविड़-शैली की परिधि में आते हैं। कोणार्क का सूर्य मन्दिर और मदुरै का मीनाक्षी मन्दिर इसका अनुपम उदाहरण हैं। इन मन्दिरों में राजकीय ठाठ दिखाई देता है। 16'16 मंज़िलोंवाले भवन के मन्दिर होते थे। मन्दिर के पास तालाब पवित्रता का द्योतक होता था।

3. बेसर शैली— यह शैली नागर तथा द्रविड़-शैलियों का मिश्रित रूप है। इस शैली का प्रयोग कर्नाटक के मन्दिरों में देखने को मिलता है। यह मन्दिर सभागृह-जैसा दिखाई देता है जो वास्तव में सभागृह ही होता है। सम्पूर्ण गाँव इस मन्दिर में समाहित हो जाता था। इस मन्दिर में सभी वर्गों को स्थान दिया जाता था। मन्दिर छोटा-सा और बाकी क्षेत्र रिक्त होता था। पट्टकल के चालुक्य मन्दिर व आइजोल का मन्दिर बेसर शैली में निर्मित मन्दिरों के उत्कृष्ट नमूने हैं।

4. पञ्चायतन शैली— इस मन्दिर के चारों ओर चार छोटे-छोटे मन्दिर होते थे, इनमें पाँच शिखर होते थे। इसलिए इन्हें पञ्चायतन कहा जाता था। लिंगराज का पञ्चायतन शिखर इस शैली का अनुपम उदाहरण है।

मन्दिर बनाने की परिकल्पना

मन्दिर बनाने को लेकर अनेक परिकल्पनाएँ समाज में प्रचलित थीं। जैसे एक मन्दिर बनाने पर स्वर्ग मिलता है, तीन बनाने पर ब्रह्मलोक, चार मन्दिर बनाने पर शिवलोक, आठ मन्दिर बनाने पर व्यक्ति साक्षात् भगवान् हो जाता है और नौ मन्दिर बनाने पर मोक्ष मिलता है, देवालय-निर्माण करने की इच्छा से सैकड़ों वर्ष के पाप नष्ट हो जाते हैं, कृष्ण-मन्दिर निर्माण करता अच्युत लोक प्राप्त करता है, मन्दिर-निर्माणकर्ता ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है, विष्णु-मन्दिर बनाने पर विष्णुलोक की प्राप्ति होती है आदि आदि। अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि मन्दिर पापों से मुक्ति हेतु बनाए व बनवाए जाते थे।

आधार-ग्रन्थ :

1. दुबे, सीताराम, *वैदिक संस्कृति और उसका सातत्य*, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2005
2. शुक्ल, डी०एन०, *भारतीय वास्तुशास्त्र*, लखनऊ, 1958
3. Hardy Adam, *The Temple of India*, Abhinav Publication.





3.

अग्निपुराण में वर्णित देव-प्रतिमाओं के लक्षण : वासुदेव के विशेष सन्दर्भ में

डॉ० रत्नेश कुमार त्रिपाठी

शोध-अध्येता, भारतीय पुराण अध्ययन संस्थान, नयी दिल्ली;
कार्यालय-सचिव, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।

सर्वेभ्य एवं वक्त्रेभाः ससजे सर्वदर्शनः ॥

भा

रतीय वाङ्मय में पुराणों का एक विशेष स्थान है। वेदों के पश्चात् पुराणों को पञ्चम वेद माना गया है। पुराण *रामायण*, *महाभारत* एवं धर्मशास्त्र के तुल्य ही हैं। पुराण भारतीय समाज के धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, वैयक्तिक, समाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि के लोकसम्मत विश्वकोश हैं। अपौरुषेय वेद में भी पुराणों की चर्चा है और उन्हे वेदों की ही भाँति नित्य एवं प्रमाणभूत बताया गया है। जैसे अध्वर्यु यज्ञ में कुछ पुराण-पाठ के लिए यह प्रेरणा देता है कि 'पुराण' वेद है।¹ भगवान् वेदव्यास द्वारा प्रणीत अठारह महापुराणों में *अग्निपुराण* का विशेष स्थान है। विष्णु स्वरूप भगवान् अग्निदेवद्वारा महर्षि वसिष्ठजी के प्रति उपदिष्ट यह *अग्निपुराण* ब्रह्मस्वरूप है, सर्वोत्कृष्ट है तथा वेदतुल्य है।² जहाँ अग्निपुराण में राजनीति, धर्म, काव्य, व्याकरण, भूगोल, वास्तु, ज्योतिष, योग, आयुर्वेद, सृष्टि, वेदान्त, अवतारों की अवधारणा, अंतरिक्षविज्ञान, रामायण, महाभारतादि का विधिवत् वर्णन मिलता है वहीं इसके साथ ही *अग्निपुराण* धनुर्विद्या, सैन्य शिक्षा, राज्य-प्रबन्धन, मूर्तिकला, मन्दिर-स्थापत्य आदि विभिन्न कलाओं के ज्ञान से भी परिपूर्ण है।

देव-प्रतिमा स्थापन

देवालयों में किस प्रकार की देव-प्रतिमा स्थापित की जाए, इसका अत्यन्त विस्तृत वर्णन *अग्निपुराण* में मिलता है। देवालयों में प्रतिष्ठित करने के लिए भगवान् वासुदेव की, दशावतारों की, सूर्य की, ग्रहों की, दिक्पाल, योगिन एवं शिवलिङ्ग आदि की प्रतिमाओं के श्रेष्ठ लक्षणों का वर्णन है। देव-प्रतिमाओं की यथास्थान स्थापना मन्दिर-स्थापत्य का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। *अग्निपुराण* में वर्णित है कि पञ्चायतन मन्दिर में जो बीच का प्रधान मन्दिर हो, उसमें भगवान् वासुदेव को स्थापित करें। शेष चार मन्दिरों में अग्निकोणवाले मन्दिर में भगवान् वामन की, नैऋत्यकोण में नृसिंह की, वायव्यकोण में हयग्रीव की और ईशानकोण में वाराह की स्थापना करें। अथवा यदि बीच में भगवान् नारायण की स्थापना करें तो अग्निकोण में माँ दुर्गा की, नैऋत्यकोण में सूर्य की, वायव्य कोण में ब्रह्मा की और ईशान कोण में लिङ्गमय शिव की स्थापना करें। अथवा ईशान में रुद्ररूप की स्थापना करें। अथवा एक-एक आठ दिशाओं में और एक बीच में— इस प्रकार कुल नौ मन्दिर बनवावें। उनमें से बीच में वासुदेव की स्थापना करें और पूर्वादि दिशाओं में राम, परशुरामादि मुख्य-मुख्य नौ अवतारों की तथा इन्द्रादि लोकपालों की स्थापना करनी चाहिए। अथवा कुल नौ धामों में पाँच मन्दिर मुख्य बनवावें। इसके मध्य में भगवान् पुरुषोत्तम की स्थापना करें।⁴ पूर्व दिशा में लक्ष्मी और कुबेर की, दक्षिण में मातृकागण, स्कन्द, गणेश और शिवकी, पश्चिम में सूर्यादि नवग्रहों की तथा उत्तर में मत्स्यादि दशावतारों की स्थापना करें। अथवा तेरह कमरोंवाले देवालय के मध्यभाग में विश्वरूप भगवान् विष्णु की स्थापना करें। पूर्वादि दिशाओं में केशवादि द्वादश विग्रहों को स्थापित करें।⁵

प्रतिमा

मिट्टी, लकड़ी, लोहा, रत्न, पत्थर, चन्दन और फूल— इस सात वस्तुओं की बनी हुई भगवत्प्रतिमा का वर्णन *अग्निपुराण* में प्राप्त होता है।⁶ फूल, मिट्टी तथा चन्दन की बनी हुई प्रतिमाएँ बनने के बाद तुरन्त पूजनीय होती हैं। ये अधिक काल के लिए नहीं होतीं।⁷ *अग्निपुराण* के अनुसार पत्थर की प्रतिमा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसमें वर्णित है कि दो प्रकार के पत्थर उत्तम होते हैं। वह पत्थर या पर्वत से लाकर प्रतिमा बने या इसके अभाव में ज़मीन से निकले हुए पत्थर का उपयोग करें।⁸ प्रतिमा के पत्थर के रंगों को वर्णों के आधार पर विभाजित किया गया है। वर्णाधारित रंग का पत्थर न मिलने पर इसकी कमी की पूर्ति हेतु नृसिंह मंत्र के हवन का विधान दिया गया है।⁹ यदि शिला में सफेद रेखा हो तो उसे उत्तम माना गया है। यदि काली रेखा हो तो वह नृसिंह मंत्र से हवन के उपरान्त उत्तम मानी जाती है।¹⁰ शिला की पहचान हेतु *अग्निपुराण* में वर्णित है कि यदि शिला में काँसे से बने हुए घंटे की आवाज निकलती है और काटने पर चिनगारियाँ निकलती हों तो वह शिला पुल्लिङ्ग होगी। यदि उपर्युक्त चिह्न उसमें कम दिखाई दे तो वह स्त्रीलिङ्ग माननी चाहिए। यदि कोई रूप न हो तो उस नपुंसक मानना चाहिए। तथा जिस शिला में कोई मण्डल का चिह्न दिखाई दे, उसे सगर्भा समझकर त्याग देना चाहिए।¹¹ प्रतिमा बनाने की विधि का वर्णन भी विस्तृत रूप में प्राप्त होता है।

प्रतिमाओं के लक्षण

देवालय में किस प्रकार की देव-प्रतिमा स्थापित की जाए, इसका बड़ा सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन इसमें है। शालग्राम शिला अनेक प्रकार की बताई गई है। द्विचक्र एवं श्वेतवर्ण शिला 'वासुदेव' कहलाती है, कृष्णकान्ति एवं दीर्घ छिद्रयुक्त 'नारायण' कहलाती है। इसी प्रकार इसमें संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, परमेश्वरी, विष्णु, नृसिंह, वाराह, कूर्म, श्रीधरादि अनेक प्रकार की शालग्राम-शिलाओं का विशद वर्णन है। देवालय में प्रतिष्ठित करने के लिए भगवान् वासुदेव, दशावतार, चण्डी, माँ दुर्गा, श्रीगणेश, स्कन्दादि देवता, सूर्य, ग्रह, दिक्पाल, योगिनी एवं शिवलिङ्गादि प्रतिमाओं के श्रेष्ठ लक्षणों का वर्णन है। देवालयों में श्रेष्ठ लक्षणों से सम्पन्न प्रतिमाओं की स्थापना और प्राण-प्रतिष्ठा को कल्याणकारी माना गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में वासुदेव की प्रतिमा के लक्षणों का वर्णन मुख्य रूप से हुआ है।

वासुदेवादि प्रतिमाओं के लक्षण

अग्निपुराण में वासुदेव की प्रतिमा के निर्माण में ऐसा वर्णन आया है कि प्रतिमा-निर्माण से पूर्व शिलापूजन का विधान है। *अग्निपुराण* में वर्णित है कि मन्दिर के उत्तर भाग में शिला को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखकर उसकी पूजा करें। उसके पश्चात् शिला के बीच में सूत लगाकर उसका नौ भाग करें। नवें भाग को भी 12 भागों में विभाजित करने पर एक-एक भाग अपने अङ्गुल से एक अङ्गुल का होता है। दो अङ्गुल का एक गोलक होता है, जिसे कालनेत्र भी कहते हैं। उक्त नौ भागों में से एक भाग के तीन हिस्से करके उसमें पाष्णि-भाग की कल्पना करें। एक भाग घुटने के लिए तथा एक भाग कण्ठ के लिए निश्चित करें। मुकुट को एक बित्ता रखें। मुँह का भाग भी एक बित्ते का होना चाहिए। इसी प्रकार एक बित्ते का कण्ठ और एक बित्ते का हृदय भी रहे। नाभि और लिङ्ग के बीच में एक बित्ते का अन्तर होना चाहिए। दोनों उरु दो बित्ते के हों। जंघा भी दो बित्ते की हो।¹² ललाट, नासिका और मुख का विस्तार चार अङ्गुल का होना चाहिए। दोनों ओर की हनु (ठोढ़ी) दो-दो अङ्गुल चौड़ी हो और चिबुक (ठोढ़ी के बीच का भाग) भी दो अङ्गुल का हो। पूरा विस्तार छः अङ्गुल का होना चाहिए। इसी प्रकार ललाट भी विस्तार में आठ अङ्गुल का बताया गया है। दोनों ओर के शङ्ख दो-दो अङ्गुल के बनाए जाएँ और उनपर बाल भी हों। कान और नेत्र के बीच में चार अङ्गुल का अन्तर रहना चाहिए। दो-दो अङ्गुल के कान और पृथक् बनावें। भौंहों के समान सूत्र के माप का कान का स्रोत कहा गया है। बिंधा हुआ कान छः अङ्गुल का हो और बिना बिंधा हुआ कान चार अङ्गुल का।¹³

नेत्र का विस्तार आधा अङ्गुल का हो और मुख का विस्तार चार अङ्गुल हो। मुख की चौड़ाई डेढ़ अङ्गुल की होनी चाहिए। नाक की ऊँचाई एक अङ्गुल हो और ऊँचाई से आगे लम्बाई केवल दो अङ्गुल की रहे। दोनों नेत्रों के बीच चार अङ्गुल का अन्तर हो। दो अङ्गुल तो आँख के घेरे में आ जाता है, सिर्फ दो अङ्गुल अन्तर रह जाता है। पूरे नेत्र का तीन भाग करके एक भाग के बराबर तारा (काली पुतली) और पाँच भाग करके एक भाग के बराबर दृक्कारा

(छोटी पुतली) बनावें। नेत्र का विस्तार दो अङ्गुल का हो और द्रोणी आधे अङ्गुल की। उतना ही प्रमाण भौंहों की रेखा का हो। दोनों ओर की भौंहें बराबर रहनी चाहिए। भौंहों का मध्य दो अङ्गुल का और विस्तार चार अङ्गुल का होना चाहिए।¹⁴

भगवान् केशव आदि की मूर्तियों के मस्तक का पूरा घेरा छब्बीस अङ्गुल का हो अथवा बत्तीस अङ्गुल का। नीचे ग्रीवा (गला) पाँच नेत्र (अर्थात् दस अङ्गुल) की हो। और इसके तीन गुना अर्थात् तीस अङ्गुल उसका वेष्टन (चारों ओर का घेरा) हो। नीचे से ऊपर की ओर ग्रीवा का विस्तार आठ अङ्गुल का हो। ग्रीवा और छाती के बीच का अन्तर ग्रीवा के तीन गुने विस्तार कर होना चाहिए। दोनों ओर के कन्धे आठ-आठ अङ्गुल के और सुन्दर अंश तीन-तीन अङ्गुल के हों।¹⁵ सात नेत्र (यानि चौदह अङ्गुल) की दोनों बाँहें और सोलह अङ्गुल की दोनों प्रबाहुएँ हों। बाहुओं और प्रबाहुओं की चौड़ाई छः अङ्गुल की बताई गई है। बाहुओं और प्रबाहुओं की बनावट मूल से अङ्गुल तक के प्रमाण का विस्तार से वर्णन हुआ है।¹⁶ भगवान् केशव की छाती और पेट का नाप एक समान रखने का बताया गया है। नाभि का आकार एक अङ्गुल की छेदवाली होनी चाहिए।¹⁷ छाती का घेरा चौंसठ अङ्गुल का होना चाहिए तथा दोनों स्तनों के बीच का अंतर एक बित्ता होना चाहिए।¹⁸ कमर का घेरा चौवन अङ्गुल का बताया गया है। ऊरुवों के मूल का विस्तार बारह-बारह अङ्गुल तथा इसके ऊपर मध्य का भाग विस्तार रखने का निर्देश है।¹⁹ नाभि से लिङ्ग का अन्तर एक बित्ता बताया गया है।²⁰ मध्य भाग से नीचे के अंगों का विस्तार क्रमशः कम होना चाहिए। घुटनों का विस्तार आठ अङ्गुल का करें और उसके नीचे की जंघा का घेरा तीन गुणा अर्थात् चौबीस अङ्गुल का हो।²¹ दोनों अण्डकोष तीन-तीन अङ्गुल लम्बे बनावें और लिंग चार अङ्गुल लम्बा करें। इसके ऊपर का भाग चार अङ्गुल का रखें। अण्डकोषों का पूरा घेरा छः-छः अङ्गुल का होना चाहिए।²² जंघा के मध्य का विस्तार सात अङ्गुल का होना चाहिए और उसका घेरा तीन गुना अर्थात् इक्कीस अङ्गुल का हो। जंघा के अग्र भाग का विस्तार पाँच अङ्गुल और उसका घेरा तीन गुना होना चाहिए। चरण एक-एक बित्ते लम्बे होने चाहिए। विस्तार से उठे हुए पैर अर्थात् पैरों की ऊँचाई चार अङ्गुल की हो। गुल्फ (घुट्टी) का से पहले का हिस्सा भी चार अङ्गुल का ही हो। दोनों पैरों की चौड़ाई छः अङ्गुल की, गुह्य भाग तीन अङ्गुल का और उसका पंजा पाँच अङ्गुल का होना चाहिए। पैरों का अंगूठा चौड़ा होना उचित माना गया है। शेष अंगुलियों के मध्य भाग का विस्तार क्रमशः पहली अंगुली आठवें-आठवें भाग के बराबर कम होनी चाहिए। अँगूठे की ऊँचाई सवा अङ्गुल बताई गई है। इस प्रकार अँगूठे के नख का प्रमाण और अँगुलियों से दूना रखना चाहिए।²³ क्रमशः अन्य अँगुलियों²⁴ के आकार का भी वर्णन है। अण्डकोष और लिङ्ग क्रमशः तीन और चार अंगुल का निर्देशित किया गया है।²⁵

भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण की प्रतिमा के अलंकरण के लिए *अग्निपुराण* के 44वें अध्याय में वर्णित है कि दाहिने हाथों में से ऊपरवाले हाथ में चक्र और नीचेवाले हाथ में पद्म धारण करावें। बायें हाथों में से ऊपरवाले हाथ में शंख और नीचेवाले हाथ में गदा बनावें। यह वासुदेव श्रीकृष्ण का चिह्न है, अतः उन्हीं की प्रतिमा में रहनी चाहिए।²⁶

भगवान् वासुदेव के साथ-साथ पिण्डी, शालग्राम, मत्स्यादि दशावतार, चण्डी आदि देवी-प्रतिमा, सूर्यादिग्रहदेवताओं, चतुःषष्टियोगिनी, शिवलिङ्ग, दसदिक्पालादि प्रतिमाओं के लक्षण का विषद वर्णन *अग्निपुराण* में मिलता है। *अग्निपुराण* में गृह-निर्माण, नगर-निर्माण, देवालयों का निर्माण इत्यादि विषय वास्तुकला के अंतर्गत परिगणित होते हैं। गर्ग नाम के ऋषि को इस विद्या का उद्भावक माना जाता है क्योंकि वास्तुविद्या में निपुण व्यक्ति को ‘गर्ग विद्या विचक्षणः’²⁷ कहा गया है। भगवान् वासुदेव की प्रतिमा के लक्षणों के वर्णन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि भारतीय वाङ्मय में पुराण वास्तुशास्त्र की जानकारी के ऐसे स्रोत हैं जिनके अध्ययन और शोध से समृद्ध भारतीय प्रतिमाविज्ञान को पुनर्जीवित किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. *भागवतपुराण*, 3.12.39
2. तानुपदिशति पुराणम् । वेदः सोऽयमिति । किञ्चित् पुराणमाचक्षीत एवमेवाध्वर्युः सम्प्रतिष्ठितः.....’
—शतपथब्राह्मण, 13.4.313
3. *अग्निपुराण*, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ० 11
4. *अग्निपुराण*, 43.1-5
5. *वही*, 43.6-9
6. ‘मृन्मयी दारुघटिता लोहजा रत्नजा तथा ।
शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी सप्तधा स्मृता ॥’ — *वही*, 43.9-10
7. *वही*, 43.10-11
8. *वही*, 43.11-12
9. ‘पाण्डुरा ह्यरुणा पीता कृष्णा शस्ता तु वर्णिनाम् ।
न यदा लभ्यते सम्यग्वर्णिनां वर्णतः शिला ॥
वर्णाद्यापादनं तत्र जुहुयात्सिंहविद्यया ॥’ — *वही*, 43.12-13
10. *वही*, 43.14
11. *वही*, 43.14-15
12. *वही*, 44.1-6
13. *वही*, 44.7-16
14. *वही*, 44.17-22
15. *वही*, 44.23-25
16. *वही*, 44.26-31
17. ‘वक्षसो यत्प्रमाणं तु जठरं तत्प्रमाणतः ।
अङ्गुलैका भवेन्नाभिर्वेधेन च प्रमाणतः ॥’ — *वही*, 44.32-33
18. अन्तरं स्तनयोः कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः
19. *अग्निपुराण*, 44.36-37
20. *वही*, 44.33

21. वही, 44.37-38
22. वही, 44.44-45
23. वही, 44.34-43
24. वही
25. 'त्र्यङ्गुलौ वृषणौ कार्यौ मेढ्रं तु चतुरङ्गुलम्' — वही, 44.44
26. वही, 44.46-67
27. वही, 64.7





4.

पौराणिक मन्दिर-वास्तु परम्परा

ध्रुवेन्द्रसिंह जोधा

शोधार्थी, डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं
पुरातत्त्व अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

‘वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥’

—ऋग्वेद, 7.54.1

वैदिक वाङ्मय में ‘वास्तु’ शब्द का अर्थ गृह-निर्माण करने योग्य भूमि है। वस् वासे नाम धातु से वास्तु शब्द बनता है। इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है कि जिसमें मनुष्य रहते हैं। इस प्रकार वे भवन, नगर, महल, मन्दिर आदि सभी जो मानव निवास योग्य हो, सभी— ‘वास्तु’ कहलाते हैं। वास्तुशास्त्र के वैदिक देवता का नाम ‘वासतोष्पति’ है। विश्व की प्राचीनतम रचना ऋग्वेद में वासतोष्पति से अनेक बार रक्षार्थ प्रार्थना की गई है।

भारतीय वास्तुशिल्प का चरमोत्कर्ष देवालय-प्रकल्पन में प्रतिबिम्बित होता है। देवालय केवल देवों के अधिष्ठान मात्र ही नहीं थे, वरन् देवों के विग्रह भी होते हैं। जो मन्दिर जिस देवता को समर्पित होता है, उसे उस देवता की मूर्ति के रूप में ग्रहण किया जाता है। वैदिक वाङ्मय में भक्ति या उपासना का जो मूल बीज निहित था, उसका पल्लवन परवर्ती भारतीय साहित्य और कला में मिलता है। आगमों, पुराणों की उपासना-पद्धति ने विष्णु, सूर्य, शिव आदि देवों की अर्चा और पूजा को बल दिया। उससे मूर्तियों तथा मन्दिरों का व्यापक रूप

में निर्माण होने लगा और मन्दिर धार्मिक वास्तु के प्रमुख प्रतीक बन गये। देवालय के अंगों का वर्णन देवों के अंग के रूप में किया गया है। इसके जंघा को देव की जंघा, प्रणाल को वायु तथा उपस्थ, शुकनासा को नासिका, द्वार को मुख, गवाक्ष को नेत्र, कण्ठ को देवकण्ठ, शिखर को शिरोभाग तथा प्रतिमा को देवरूप प्रसाद का जीव कहा गया है। वास्तु ग्रंथों एवं पुराणों में मन्दिर (देवालय) के देव विग्रह भाव का विशद वर्णन मिलता है। वहीं कृष्णदत्त वाजपेयी भी इस से सम्बद्ध होते हैं। वे प्रारम्भिक मन्दिरों का आकार प्रकार हेतु मानव शरीर तथा वृक्ष और पर्वत शिखर को प्रेरणा-स्रोत बताते हैं। भारतीय देवप्रासाद अत्यन्त पवित्र कल्पना है। जगत् के सृष्टा का मूल प्राणतत्त्व है। उसे 'हिरण्य' कहा जाता है। अतः प्रत्येक देव प्राणतत्त्व है, वही हिरण्य है। 'एक सद्भिप्राः बहुधा वदन्ति' के अनुसार सत्यस्वरूप एक ही देव अनेक देवों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

देवालय की उत्पत्ति— देवालय की उत्पत्ति के विषय में विविध मत हमें प्राप्त होते हैं। प्रथमतः इसकी वेदमूलकता एवं दूसरे इसका लोकधर्म से जुड़ा होना। ये दोनों ही धाराएँ देवालय की उत्पत्ति से साम्य रखती हैं। प्राचीन काल या हम कहें कि वेदकाल में यज्ञ चिति का निर्माण देवों के आह्वान, उन्हें स्थान देने एवं उनके पूजार्थ, यज्ञादि के निष्पादन हेतु किया जाता था। यज्ञवेदियाँ एवं चितियों में देवालय-निर्माण के बीज निहित हैं। स्टेला क्रैमरिश का मत है कि मन्दिर की रचना में नीचे से लेकर शिखर तक वैदिक चिति विद्यमान है। हम देखते हैं कि लोक में देवी-देवताओं की उपासना हेतु लता, पत्रादि से मण्डप बनाकर पूजा-विधान आज भी किया जाता है। इसे अस्थायी मन्दिर कहा जा सकता है। मन्दिर के स्थान पर चौकी रखकर उसे केले के पत्ते, लता, पत्र तथा वस्त्रादि से आच्छादितकर मन्दिर का रूप प्रदान किया जाता है। इसे हम अस्थायी पूजागृह भी कह सकते हैं। यह स्थायी देवालय कल्पना का प्रारम्भिक रूप था। देवालय-संबंधी एक विचार यह भी है कि देवालय-निर्माण में पर्वतों, गिरि-कन्दराओं का योगदान माना जा सकता है। देवालयों की उच्छिति उन पर शिखर निर्माण तथा मेरु मन्दिर, कैलास आदि पर्वतों के नाम से इसकी पुष्टि करते हैं। दूसरी ओर पर्वतों की गुफाओं से भी देव-प्रासाद का उद्भव माना जा सकता है। आज भी कई प्राचीन देवालय गुफा में स्थित हैं। *समराङ्गणसूत्रधार* में इस प्रकार के देवालय के लिए 'लयन', 'गुहाधर', 'गहराज' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। *विष्णुधर्मोत्तरपुराण* में इसी क्रम में 'सुगुहाख्य प्रासाद' का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई ऐसे घटक भी हैं जिनका योगदान मन्दिर के स्वरूप निर्माण में है और विद्वानों ने इसे स्वीकार भी किया है।

प्रासाद एवं विमान— संस्कृत-वाङ्मय में देवालय के लिए प्रायः 'प्रासाद' शब्द का प्रयोग किया गया है। *अमरकोश* ने 'प्रासादों देवभूभुजाम्' कहकर प्रासाद पद से देवालय एवं राजभवन— दोनों अर्थ को ग्रहण किया है। प्रासाद सर्वप्रथम देवालय का बोधक है। हमारी प्राचीन भारतीय परम्परा में राजा को लोकपाल एवं देवतुल्य के समान स्थान दिया है। इसी कारण 'प्रासाद' शब्द से राजभवन का भी बोध होता है। भारतीय परम्परा के अनुसार प्रासाद

वह वास्तु है, जहाँ देवता एवं मानव— दोनों का चित्त प्रसन्न होता है—

‘देवादीनां नराणांच येषु रम्यतया चिरम् ।

मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिताः ॥’

इसी प्रकार का कथन *मानसार* के अध्याय 33 में कहा गया है। दक्षिण भारतीय वास्तु-परम्परा में देवालय के लिए ‘विमान’ शब्द का प्रयोग किया गया है। *शिल्परत्न* के अनुसार ‘विमान’ पद का निर्वचन ‘नानामान विधान त्वात् विमानम्’ माना गया है। अतः विमान वह भवनविशेष होता है जिसमें विशिष्ट विधि-विधान से निर्मित किया गया है। *विश्वकर्मवास्तुशास्त्र* में भी विमान-संरचना का देवी-देवताओं से संबंध बताया गया है।

प्रासाद निर्माण— मुख्यतः शास्त्रानुसार प्रासाद-निर्माण दो भागों में विभक्त रहता है— पहला तलछन्द तथा दूसरा ऊर्ध्व छन्द। पहले प्रकार के तलछन्द के अंतर्गत मन्दिर का गर्भगृह अथवा मंडोर, अंतराल (बरामदा), महामण्डप, गूढमण्डप या अर्धमण्डप तथा प्रवेश संबंधित होता है। ऊर्ध्व छंद में भवन के नीचे से ऊपर की ओर संरचना पर विचार किया जाता है। इसके अंतर्गत जगती, गर्भगृह की भित्ति एवं शिखर को सम्मिलित किया जाता है। गर्भगृह की भित्ति को ‘जंघा’ कहा जाता है। जंघा में गवाक्ष, उसका छाघ एवं उसके अलंकरण आते हैं। जंघा के अंत से शिखर का प्रारम्भ होता है। शिखर के मूल में स्कन्ध, उसके ऊपर ग्रीवा, आमलक, कलश एवं नारिकेल निर्मित होते हैं। शिखर के चारो ओर शृंग, ऊरुशृंगकर्ण शृंग तथा अन्तराल के ऊपर शुकनासा होती है। इस प्रकार का स्वरूप सामान्यतः नागर प्रासाद का होता है।

देवालयों के भेद— वास्तुशास्त्र के अनुसार देवालयों के प्रमुख रूप से तीन भेद होते हैं— नागर, द्रविड़ तथा बेसर। *विष्णुधर्मोत्तरपुराण* में 97 प्रकार की क्षेत्रीय शैलियों का उल्लेख है तथा इन्हें मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पी०के० आचार्य ने इन्हें तीन भाग अर्थात् नागर, द्रविड़ तथा बेसर में विभाजित किया है। *बृहत्संहिता* में दो शैलियाँ— नागर तथा द्राविड़ का उल्लेख प्राप्त होता है। वहीं *समराङ्गणसूत्रधार* आदि कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में तीन शैलियों का उल्लेख प्राप्त होता है। नागर देवालय उत्तर भारतीय शिल्प परम्परा से संबद्ध है। इस परम्परा के उद्धारक विश्वकर्मा माने गए हैं। दूसरी द्राविड़ परम्परा का संबंध दक्षिण भारतीय वास्तु-परम्परा से है। इसके मुख्य आचार्य मय, मानसार आदि हैं। इस परम्परा के देवालयों को ‘विमान’ कहते हैं। तीसरी विधा ‘बेसर’ है। इस वास्तु शैली में वृत्ताकृति की प्रधानता होती है। बेसर-;शैली के देवालय में दो कोण (द्वयस्त्र) होते हैं। फर्गुसन का मत है कि विन्ध्य के उत्तर के मन्दिरों को नागर, पश्चिम भारत, दक्षिण और मैसूर-क्षेत्र के मन्दिरों को बेसर तथा तमिल एवं उत्तरी सिंहल के मन्दिरों को द्राविड़ नाम क्षेत्रीयता के आधार पर प्रदान किया गया है। जबकि भट्टाचार्य तथा सौदानराजन ने भौगोलिक आधार की अपेक्षा योजनागत विभेद को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है।

प्रासादों के प्रकार— वैराज (चोकोर) के 9 प्रकारों में मेरु, मंदर, विमान, भद्र, सर्वतोभद्र, रूचक, नंदक, नंदीवर्धन और श्रीवत्स है। पुष्पक (आयताकार) के भी 9 प्रकारों में वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भुवन उत्तम, शिविका एवं वेश्म है। कैलाश (वृत्त) के 9 प्रकार— वलय, ददुंभी, पद्म महापद्म मुकुली, उष्णीसी, शंख कलश एवं गुवावक्ष। मालिका (अण्डाकार) के 9 प्रकारों में गज, वृषभ, हंस, गरुड़, सिंह भूमक, भूधर, श्रीजय, पृथिवीधर। त्रिविष्टप (अष्टकोणीय) के 9 प्रकारों में वज्रचक्र, मुष्टिका, बभ्रू, भूधर, वक्र, स्वस्तिभग, गदा, श्रीवृक्ष एवं विजय का वर्णन प्राप्त होता है। मण्डपों के विषय में विभिन्न आकारों के विभिन्न फल दिए हैं। त्रिकोणीय मण्डप से राज्यप्राप्ति, पद्माकार से समृद्धि, चन्द्राकार से दीर्घायु, चतुर्भुज से पुत्र प्राप्त होता है। तल-विन्यास के अनुसार प्रासादों के विभिन्न प्रकार हैं। षोडशमात्रिक प्रासाद, लिंगमान प्रासाद, त्रेवेदमक्षेत्र, द्वारमान आदि 64 पद वास्तु के बनते हैं। इसमें मेरुप्रासाद सबसे श्रेष्ठ माना गया है। इसमें चार मण्डप, चार द्वार, 100 शृंग वर्णित हैं। विभिन्न देवताओं के लिए विभिन्न प्रासाद निर्धारित हैं। स्वयम्भू देवताओं के लिए कोई नियम नहीं है। सामने वाहन के लिए छोटे मण्डप वर्णित हैं। साथ ही नाट्यशालाएँ भी हैं। प्रमुख द्वार के पास द्वारपाल भी वर्णित है। कर्मचारियों के लिए देवालय से कुछ दूरी पर मठों का विधान होता था।

विमानों को आधार बनाकर पाँच प्रकार के प्रासादों का वर्णन *अग्निपुराण* तथा *गरुड़पुराण* में प्राप्त होता है। *स्कन्दपुराण* में हमें 25, *विष्णुधर्मोत्तरपुराण* में 23, *अपराजितपृच्छा* तथा *प्रासादमण्डन* में 14, *शुक्रनीति* में 16 तथा *बृहत्संहिता* में 20 प्रासादों का वर्णन प्राप्त होता है।

भारतवर्ष की संस्कृति में धर्म प्रमुख स्थान रखता है। धार्मिक विचार मानव जीवन के कर्मों का संचालन करते हैं और मनुष्य का जीवन-दर्शन भी उसी पर आधारित है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सभी भारतीय शास्त्रों एवं विधाओं का परम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति करना है। अतः कहा जा सकता है कि वैदिक वास्तुविद्या तथा उसका स्थापत्य का रूप वेदाङ्गों में स्थिर हुआ तथा पुराणों एवं आगम-ग्रंथों में उसका विकास हुआ है। वास्तुशास्त्र मन्दिर का आधार है और इसमें समाए दर्शन से संबंधित आनुष्ठानिक पद्धति से भी संबद्ध है।

सन्दर्भ :

1. *वाचस्पत्यम्*, भाग 6, पृ० 4888; *हलायुध*, पृ० 606; *अमरकोश*, 2.2.19; *आपटे संस्कृत-हिंदी कोश*, पृ० 123
2. विद्याधर भारतीय, *वास्तुशास्त्र का इतिहास*, पृ० 8, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, देहली
3. *अग्निपुराण*, 61.19.27; *हयशीर्षपाञ्चरात्र*, 39
4. वाजपेयी कृष्णदत्त, *भारतीय वास्तुकला का इतिहास*, पृ० 3 लखनऊ, 1972
5. बरार गुरुभगत, *मन्दिर वास्तु के आर्टिकल्स*, उद्धृत दिल्ली संस्कृत विद्यापीठ,
6. स्टेला क्रैमरिश, *हिंदू टेम्पल*, पृ० 150-154, कलकत्ता, 1946

7. शुक्ल द्विजेन्द्र नाथ, भारतीय स्थापत्य, पृ० 239-242, लखनऊ, 1972
8. वही, 247
9. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, पृ० 3.86.124; शास्त्री चारुदेव (सं०), नाग पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1981
10. अमरकोश, 2.2.9; ए०जी० सरदेसाई, डी०जी० पाध्ये, ओरियंटल बुक एजेंसी, पूना, 1970
11. शिल्परत्न, 6.1
12. मानसार, हिंदी-टीका, शिव वर्मा व शोभा वर्मा, पृ० 187, स्थापत्य वेद शिक्षक संस्थान, इंदौर
13. शिल्परत्न, 6.1
14. प्रासादमण्डन, 2.1.35; अपराजितपृच्छा, 105., 115.160.162; समराङ्गणसूत्रधार, 56.18.44; श्री नारायण चतुर्वेदी, नागर शैली के नये हिंदू मन्दिर
15. सहाय, एस०एस०, भारतीय कला, पृ० 203, स्टुडेंट फ्रेंड्स, इलाहाबाद, 2006
16. यादव, रुदल प्रसाद, भारतीय कला, पृ० 129 विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, 2000
17. शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ, भारतीय स्थापत्य, पृ० 269, हिंदी समिति, सूचना विभाग, उ०प्र० लखनऊ, 1968
18. फर्गुसन, हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर्स, पृ० 42-50, लन्दन, जिल्द 2, 1920
19. भट्टाचार्य, कैनेन ऑफ़ इण्डियन आर्ट, पृ० 153-165
20. सौंदर राजन, इण्डियन टेम्पल स्टाइल्स, पृ० 15-20
21. अग्निपुराण, 104.13; गरुडपुराण, 1.47.22.23 (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1981)
22. पाण्डे, सुस्मिता के लेख 'वास्तु का ऐतिहासिक विकास', दिल्ली संस्कृत विद्यापीठ
23. अग्निपुराण, 104.11.20; गरुडपुराण, 1.47.19-24
24. स्कन्दपुराण, 7.1.24.56-60; विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 3.86., 12-17, 21-28; अपराजितपृच्छा, 106. 1-40, 130, 1-2; प्रासादमण्डन, 1.67; शुक्रनीति, 4.4.67-72; बृहत्संहिता, 56.17-19





5.

प्राचीन भारतीय मन्दिर-वास्तुकला (गुप्तकाल के सन्दर्भ में)

अन्नू बड़कुड़

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, प्रभारी प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, उदयपुरा,
रायसेन

मन्दिर मुख्यतम धार्मिक वास्तु है जिसे हम भारतीय वास्तु की एकमात्र विभूति कहें तो भी अत्युक्ति न होगी। उसमें हमें भारतीय वास्तुकला का उत्कृष्ट विकास देखने को मिलता है। इसका विकास भारत के किसी विशेष धर्म से नहीं वरन् मनुष्य में आकृति-पूजा की भावना से हुआ है। मनुष्य ने ईश्वर, देवता अथवा महापुरुष की उपासना के लिए जो मूर्ति अथवा लांछन बनाए, उन्हें उसने समय-क्रम के अनुसार पवित्र भवनों में स्थापित किया।

मन्दिरों के उद्भव और विकास का इतिहास काफी ऊहापोह के बाद भी तिमिराच्छन्न है। वैदिक साहित्य में यद्यपि मूर्तियों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं है। (1) वैदिक युग में प्रकृतिदेवों की पूजा का विधान था। दार्शनिक विचारों के साथ रुद्र तथा विष्णु पूजा का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में रुद्र का वर्णन आता है। (2) यह कहना उचित होगा कि कालांतर में (ईसवी सन् के आरम्भ से) देवताओं की पूजा जिस रूप में की जाने लगी, वह प्रकार वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है, परन्तु ज्ञानप्राप्ति के लिए मनन तथा देवता का चिन्तन आवश्यक था। वैदिक दर्शन में शक्ति के लिए मनन तथा देवता का चिन्तन आवश्यक था। वैदिक दर्शन में शक्ति के लिए स्थान न होने पर भी देवपूजन को स्थान मिल चुका था। यही कारण है कि 'देवालय' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में आता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में व्यक्तिगत

रूप में देवपूजन की प्रथा वर्तमान थी। वैदिक संस्कृति में देवपूजा के लिए पुरोहित तथा क्षत्रियों के लिए धार्मिक स्थानों (देवमण्डल) की नितांत आवश्यकता थी। अतएव वैदिक देवालय को मन्दिर कहना उपयुक्त होगा। पश्चिमी विद्वानों का अनुमान मात्र है कि वेदों में देवालय (मन्दिर) नामक संस्था का अभाव दिख पड़ता है, परन्तु उनके कथन में कोई तथ्य नहीं है। मन्दिरों का निर्माण देवालय के रूप में वैदिक युग के पश्चात अवश्यमेव होने लगा। *महाभारत* में वास्तुकला का विशेष परिचय मिलता है। इन भवनों में शिल्पकला उच्चकोटि की थी।^१ कुछ विद्वानों ने वैदिक कला में मूर्तियों के अस्तित्व के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया है। ऋग्वेद (4.24.10) में 'मेरे इन्द्र को कौन मोल लेगा?' (**कइमं दश भिमर्म इन्द्रं क्रीणाति धोनुभि**) उल्लेख है। जिस प्रकार भरहुत के अभिलेख में बोधिवृक्ष और पादुका को बुद्ध (भगवत) कहा गया है। उसी प्रकार सम्भव है यहा 'इन्द्र' से ऐसे ही किसी प्रतीक की ओर संकेत हो।^४

गुप्तकाल में मन्दिर-निर्माण कला का सम्भवतः जन्म हुआ और इसका पर्याप्त विकास भी हुआ। इस प्रकार गुप्त युग को इस बात का गौरव प्राप्त है कि इसने एक ओर जहाँ स्थापत्य कला को विकास की चरम सीमा पर पहुँचाया, वहीं दूसरी ओर मन्दिर निर्माण कला के क्षेत्र में इसने विकास की महती सम्भावनाओं को भी जन्म दिया।^५ चौथी शती से भागवत सम्प्रदाय के अभ्युदय के पश्चात् (इष्टदेव) भगवान् की प्रतिमा स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतएव वैष्णव मतानुयायी मन्दिर-निर्माण की योजना करने लगे। साँची का दो स्तम्भयुक्त कमरे गुप्त मन्दिर का प्रथम चरण माने जाते हैं।^६ भारत में मन्दिरों का निर्माण गुप्तकाल से प्रारम्भ हो गया था, परन्तु तत्कालीन लेखों में इसकी चर्चा बहुत कम है। छठी शती के पश्चात् भारत के अभिलेखों में इस विषय की वार्ता अधिक मिलती है।^७

गुप्तकालीन मन्दिर-वास्तु— गुप्त काल राष्ट्रीय जागरण का युग था। ऐश्वर्य एवं समृद्धि की इस पृष्ठभूमि में यह काल मन्दिर-वास्तु अथवा स्थापत्य का चूड़ामणि है। एक निश्चित स्थापत्य-पद्धति के अनुसार इन मन्दिरों का निर्माण-कार्य प्रारम्भ हुआ जो कालान्तर में विशिष्ट कला के रूप में विकसित हुआ। इस प्रकार मन्दिर-वास्तु के इतिहास में गुप्त-युग शैशव एवं बाल्यकाल का परिचायक है। गुप्तकालीन मन्दिर-वास्तु का अध्ययन दो वर्गों में विभाजित करके किया जा सकता है— 1. ईष्टिका मन्दिर वास्तु और 2. प्रस्तर मन्दिर वास्तु।^८

तिगवा का विष्णु मन्दिर— तिगवा का विष्णु मन्दिर गुप्तकालीन प्रस्तर मन्दिर-वास्तु का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इस युग में पाषाण-खण्डों को छीलकर अथवा तराश उत्कीर्ण कर चिनाई विधि का प्रचुर प्रयोग मन्दिर-वास्तु में परिलक्षित होता है। जबलपुर जिले के निकट तिगवा का मन्दिर चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शासनकाल का प्रतीत होता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का मध्यप्रदेश से घनिष्ठ संबंध रहा है।^९

तिगवा का विष्णु मन्दिर मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले में तिगवा नामक स्थान के ऊँचे टीले पर स्थित है। कनिंघम का अभिमत है कि इस स्थल पर दो मन्दिर स्थित थे— एक प्राचीन

चिपटी समतल छतवाला तथा दूसरा आमलक युक्त शिखर के साथ निर्मित किया गया था। गढ़े हुए पत्थरों द्वारा निर्मित यह मन्दिर गुप्तकालीन स्थापत्य का एक सुन्दर उदाहरण है। इसका निर्माण काल 5वीं शती का माना जाता है। विष्णु मन्दिर का पिछला कक्ष 3.75 मीटर भुजा का वर्ग है तथा इसके भीतर वर्गाकार गर्भगृह लगभग 2.5 मीटर है। गर्भगृह के सामने चार स्तम्भों पर आधारित 2.13 मी० का बाहर की ओर निकला हुआ एक अग्रमण्डप है इस मण्डप में स्तम्भ नीचे चौपहल बीच में अष्ट पहल, ऊपर सोलह पहल तथा अन्त में लगभग गोलाकार हो गए हैं। स्तम्भों की शीर्ष पर कलश या पूर्ण घट एवं कलशों के ऊपर तीन भागों में विभक्त पीठिका है। शीर्ष पीठिका के ऊपर बैठे हुए सिंह हैं। इसके स्तम्भ सम्भवतः प्रारम्भिक गुप्तकालीन शैली का प्रतिधिनित्व करते हैं। गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर लगाया गया सरदल आवश्यकता से अधिक लम्बा बनाया गया है। इसी पर एक यक्षी की मूर्ति बनी है जो बौद्ध तोरण द्वारों की परम्परा में है। विष्णु मन्दिर का ललाटबिम्ब भी अलंकृत है।¹⁰ यह बनावट में सादा है जो वास्तुकला की दृष्टि से प्रारम्भिक अवस्था का द्योतक है। उसके नीचे अनेक कोणों की यष्टि तथा आधारपीठिका है। गर्भगृह के प्रवेश द्वार में तीन शाखाएँ हैं, जिनमें से केवल अगल-बगल की पट्टियाँ ही पुष्पवल्ली से अलंकृत हैं। प्रवेश द्वार के पार्श्व पर कच्छप पर आरूढ़ यमुना तथा मकरारूढ़ गंगा की मूर्तियाँ बनी हैं।¹¹ केवल मध्य में गरुडांकन उल्लेखनीय है यद्यपि इस विष्णु मन्दिर में स्थापत्य की दृष्टि से सुरुचि का अभाव प्रतीत होता है, परन्तु रूपकार नूतन स्फूर्ति, नवयौवन तथा नवीन चेतना की भावना से अनुप्राणित है।¹²

तिगवा का शिव मन्दिर— तिगवा मन्दिर मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले में स्थित है। इनमें एक चौकोर कमरा (गर्भगृह) बना है, जिसमें शिवलिंग स्थापित है। छत चिपटी है। बाहरी भाग में कलात्मक ढंग से बेलबूटे सहित स्तम्भ बना है जिनमें पूर्ण कलश के अतिरिक्त चार सिंह पीठ से पीठ लगाए बैठे हैं। छत का भार उसी पर आधारित प्रतीत होता है। साँची के मन्दिर (संख्या 17) भी उसी के समान है। शिखर के अभाव के कारण इसे पाँचवीं शती के आरम्भ में निर्मित मानते हैं।¹³ यह मन्दिर तिगोवा से तीन मील पूरव कुण्डा नामक ग्राम में एक छोटा-सा लाल पत्थर का बना शिव मन्दिर है, जिसे वहाँ के लोग शंकरगढ़ कहते हैं यह छोटी-सी कोठरी मात्र है, जो भीतर से लगभग पौने दो मीटर वर्गाकार है। बाहर से वह 3 मीटर वर्ग का है। यह बिना चूने-गारे के पत्थर की लम्बी पट्टियों को सजाकर बनायी गयी हैं। छत पत्थर की दो पट्टियों से बनी है, जो लोहे के अंकुशों से जुड़ी है। मण्डप की छत पर सम्भवतः फुल्ल कमल का उत्कीर्णन था, पर अब छत की एक पट्टियाँ पर उसके कुछ अंशमात्र बच रहे हैं। द्वार के बाजुओं पर दोनों ओर उभरती हुई तीन पट्टियाँ हैं और ऊपर के सिरदल के दोनों कोनों पर चौकोर सामान्य अलंकरण है, इस वास्तु के मूल निर्माण के पश्चात् किसी समय इसके आगे एक मण्डप जोड़ दिया गया था, जो अब नष्ट हो गया है। इसे गुप्त काल के अत्यारम्भ का मन्दिर अनुमान किया जाता है।¹⁴

नचना कुठारा का पार्वती मन्दिर— नचना कुठारा मध्यप्रदेश के पन्ना जिले की

अजयगढ़ तहसील के मुख्यालय के समीप स्थित है तथा इस मन्दिर का निर्माण गुप्तकाल में हुआ था।¹⁵ नचना कुठारा के मन्दिर को कनिंघम पार्वती मन्दिर और राखलदास बनर्जी शिवमन्दिर कहते हैं। यह मन्दिर अपने मूल रूप में बहुत कुछ सुरक्षित है और भू-योजना में भूमरा के मन्दिर के समान है। इस मन्दिर का गर्भगृह भीतर से वर्गाकार 3.4 और बाहर से 4 मीटर है। इस प्रकार प्रदक्षिणा-पथ भीतर से 8 मीटर और बाहर से 10 मीटर है। इसके सामने का मण्डप 8 मीटर लम्बा है और 3 मीटर चौड़ा है। गर्भगृह की छत सपाट है। उसके ऊपर एक और कोठरी है जो बाहर-भीतर से एकदम सादी है।¹⁶ द्वार-स्तम्भ के दाहिने मकरवाहिनी गंगा तथा बायीं ओर कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ बनी हैं। मन्दिर के चौखट अलंकृत हैं तथा स्तम्भ पूर्ण कलश के कारण गुप्तकालीन माने गए हैं। नचना मन्दिर का वर्गाकार चबूतरा 35 फीट चौड़ा है। इसमें ढका प्रदक्षिणा-पथ बना है। नचना का मन्दिर भूमरा से अधिक कलापूर्ण है।¹⁷ मन्दिर में जाने के लिए सीढ़ियों की व्यवस्था है। चिपटी छत के ऊपर एक और मंजिल बनी है जिसमें शिखर का आभास मिलता है। भूमरा के मन्दिरों की भाँति इस मन्दिर के चारों कोने पर भी चार लघु देवालय हैं। अतएव यह पञ्चायतन मन्दिर है। गर्भगृह के द्वार को मूर्तियों एवं अन्य अलंकरणों से सजाया गया है तथा इसकी ताखों पर मिथुनों का अंकन एवं निचले भाग में एक पार्श्व में गंगा तो दूसरे पार्श्व में यमुना का अंकन हुआ है।¹⁸

सन्दर्भ :

1. गुप्त, परमेश्वरी लाल, भारतीय वास्तुकला, पृ० 59, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पृ० 193, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना
3. उपाध्याय, वासुदेव, पूर्वोक्त, पृ० 194
4. गुप्त, परमेश्वरी लाल, पूर्वोक्त
5. रतिभानु सिंह नाहर, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 464, किताब महल एजेन्सीज, पटना
6. उपाध्याय, वासुदेव, पूर्वोक्त, पृ० 204
7. वही, पृ० 346
8. पाण्डे, वी०के०, प्राचीन भारतीय कला, वास्तु एवं पुरातत्त्व, पृ० 204, शारदा पुस्तक सदन, इलाहाबाद
9. वरे, एस०एल०, भारतीय इतिहास में नारी, पृ० 47, कैलास पुस्तक सदन, भोपाल
10. पाण्डे, वी०के०, पूर्वोक्त
11. जैन, हुकुमचन्द, एस०सी० विजय, भारतीय इतिहास एवं संस्कृत एनसाइक्लोपीडिया, पृ० 69, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर
12. पाण्डे, वी०के०, पूर्वोक्त, पृ० 208
13. उपाध्याय, वासुदेव, पूर्वोक्त
14. गुप्त, परमेश्वरी लाल, पूर्वोक्त, पृ० 73
15. वही, पृ० 77
16. उपाध्याय, वासुदेव, पूर्वोक्त
17. पाण्डे, वी०के०, पूर्वोक्त, पृ० 204



6.

दशपुरीय शैल-स्थापत्य का अद्भुत चमत्कार : धर्मराजेश्वर मन्दिर

डॉ० पूरन सहगल

द शपुर अञ्चल की पुरासम्पदा अद्भुत और अनुपम है। यहाँ के मन्दिर, यहाँ की प्रतिमाएँ, यहाँ की शैलोत्कीर्ण गुफाएँ और यहाँ के सरोवर-बावड़ियाँ— सब मिलकर इस धराधाम के गौरवशाली अतीत को अभिव्यक्त करते हैं।¹

अवन्तिका-मालवा का यह भू-भाग भौगोलिक दृष्टि से लेट्राइट निर्मित पहाड़ियों की शृंखला है। इन पहाड़ियों की तलहटियों में लावा और ड्रेकनट्रेप फैला है।²

सम्राट् अशोक ने अपने जीवन के उत्तरार्ध में जीवन का शेष भाग बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में लगाया। इसी काल में भारत में व भारत के बाहर बौद्ध वास्तुकला के प्रतीक गुफाएँ, चैत्य और विहार निर्मित होने लगे।³

इसी पहाड़ी में शैलोत्कीर्ण मानव निर्मित गुफाओं की शृंखला स्थापित हैं।⁴ यहीं पर धर्मराजेश्वर के नाम से प्रसिद्ध शैलोत्कीर्ण मन्दिर शैल स्थापत्य कला का अद्भुत एवं अनूठा उदाहरण है।

उत्तर-पश्चिमी मालवाञ्चल में लेट्राइट पहाड़ियों पर निर्मित बौद्ध-गुफाओं का निर्माण 5वीं, छठी शती से शुरू होकर 8वीं, 9वीं शती तक चला। स्थापत्य के विकास की दृष्टि से इसका आरम्भिक स्वरूप हमें आगर के पास गुफा बड़ति से शुरू होकर डग, कौलवी, विनायगा, हथियागोड़, पोंला, डोंगर, खेजड़िया भूप व धमरार (धर्मराजेश्वर) के चन्दनगिरि विहार तक

स्थापत्य-खण्ड

विकसित होता दिखाई देता है।⁵ दिल्ली-मुम्बई मार्ग पर शामगढ़ रेलवे स्टेशन (जिला मंदसौर) से 24 किमी० दूर पश्चिम में चंदवासस ग्राम के पास लेट्राइट पहाड़ी पर शैलोत्कीर्ण यह गुफा-समूह विद्यमान है जो बौद्ध शैल स्थापत्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व कलात्मक है।⁶

यहीं पर 'धर्मराजेश्वर' नाम से प्रसिद्ध शैलात्कीर्ण मन्दिर शैल-स्थापत्य का चमत्कार नागर शैली में निर्मित है, जिसमें हम स्थापत्य कला के तदयुगीन चर्मोत्कर्ष को देख सकते हैं।

विंध्यमान की तलहटी में उत्कीर्ण बौद्ध-गुफाओं के निकट स्थित धर्मराजेश्वर का यह मनोरम मन्दिर, गुफाओं के उत्तरी भाग में समतल भू-भाग पर विशाल पर्वत शिलाओं को तराशकर लगभग 30 फीट गहराई पर वास्तुकला का यह नमूना हमें चमत्कृत कर देता है। जिस गहन धरातल पर यह मन्दिर स्थित है, उसकी लम्बाई 70 फीट एवं चौड़ाई 66 फीट है। इसके उत्तरी-पश्चिमी कोण पर नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। वैसे एक अन्य किन्तु लम्बे मार्ग से भी प्रवेश लिया जा सकता है। यह मार्ग बौद्ध चैत्य की ओर से मन्दिर में आया है। यह पहाड़ी-मार्ग लगभग 13-14 फीट चौड़ा एवं 28-30 फीट गहरा है।

यदि हम स्थापत्य की दृष्टि से देखें, तब इस मन्दिर की सुन्दरता, विशालता और तक्षकला की दृष्टि से इसका कोई जोड़ नहीं है। मन्दिर का द्वार पूर्वाभिमुख है। पत्थर के सख्त एवं खुरदरेपन के कारण अधिक सफाई से इसे नहीं तराशा जा सकता। एक प्रकार के विशेष आलेपन के माध्यम से इसे चिकना बनाने का प्रयत्न अवश्य किया गया है।

वर्तमान में यह शिव मन्दिर कहा जाता है किन्तु हम मन्दिर को वास्तुकला के मान से देखें तो तब हम पाते हैं कि इसकी द्वार चौखट पर शिव मन्दिरों की भाँति पारम्परिक कीर्तिमुख नहीं है। इसी प्रकार मन्दिर के सम्मुख न तो नन्दी विराजित हैं और न ही उसके लिए कोई स्थान बना है।

द्वार के उत्तर भाग में कलुए पर विराजित यमुना तथा मकर पर विराजित गंगा उत्कीर्ण है। पूर्व समय में यह विष्णु मन्दिर था। किसी कारण से विष्णु का विग्रह या तो खण्डित हो जाने के कारण अथवा चोरी हो जाने के कारण मन्दिर से बाहर होकर लुप्त हो गया। बाद में लोगों ने यहाँ स्थापना कर दी। सम्भवतः ऐसा एलोरा के कैलास मन्दिर के स्थापत्य साक्ष्य के कारण भी हुआ होगा। दीवारों पर लक्ष्मीनारायण की मूर्तियों की उत्कीर्णता भी इसे विष्णु मन्दिर ही सिद्ध करती हैं।

सभामण्डप के स्तम्भ सादे, किन्तु मज़बूत बने हैं। छत पर भी कुछ खुदाई की गई है। दक्षिण-पश्चिम एवं उत्तर कोण में दो द्वार बने हैं।

इस धर्मराजेश्वर मन्दिर की तुलना एलोरा के कैलास मन्दिर से की जा सकती है। एलोरा के कैलास मन्दिर की छत पर बने उप मन्दिरों में जाने के लिए धर्मराजेश्वर मन्दिर की तरह द्वार बने हैं।⁷

धर्मराजेश्वर मन्दिर में एक उपद्वार ही छत पर जाने के लिए सुरक्षित है। इन उपद्वारों

का महत्त्व एवं उपयोग सहज समझ में नहीं आता। मुख्य मन्दिर के आसपास सात मन्दिर और भी बने हैं। एक ही शिला पर पार्वती, इन्द्राणी, ब्रह्माणी के साथ ताण्डव नृत्यरत शिव भी उत्कीर्ण हैं। शेष मूर्तियाँ अस्पष्ट हैं। वस्तुतः ये सप्तमातृकाएँ हैं।

सप्तमातृकाओं के इस शिलापट को लोक में ‘अचामाई’ कहा गया है। अछरा अर्थात् अक्षरा जिसका कभी क्षरण नहीं होता जो सदा सनातन है। इस सप्तमातृकाओं को इस प्रकार बखाना गया है—

‘प्रेम संस्था तु चामुण्डा, वाराही, महिशासना ।
ऐन्द्रीगज समारूढ़ा, वैष्णवी गरूडासना ॥
माहेश्वरी वृषारूढ़ा, कौमारी शिखिवाहिन ।
ब्राह्मणी हंसमारूढ़ा सर्वोभरण भूषिता ॥’

ब्राह्मणी, माहेश्वरी, कौमाउरी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा— ये माताएँ थोड़े क्रम-अक्रम से शिलापटों पर उकेरी हुई इस अंचल में कई स्थानों पर मिल जाती हैं। इनके एक कोने पर वीरभद्र एवं एक छोर पर नृत्यरत गणेश की मूर्तियाँ भी मिली हैं। मैंने इस अञ्चल के हिंगलाजगढ़, इन्द्रगढ़, ढाबला महेश, पञ्चदेवल, रामनाथ, उगराण, ग्वाल देव्यास पीठ, कोठड़ी में ऐसे शिलापट देखे हैं। इनका उल्लेख मैंने अपनी पुस्तक “भीली लोक माताएँ” में किया भी है।⁸

धर्मराजेश्वर मन्दिर में जिन मातृकाओं की मूर्तियाँ उपलब्ध नहीं हैं तथा उनके मन्दिर रिक्त हैं। बहुत सम्भव है वे कालगति के कारण या तो हटवा दी गई अथवा चुरा ली गई हैं। अरक्षित काल में ऐसे पुरास्थानों पर तोड़ाफोड़ एवं चौर्यकर्म खूब हुआ है। जिसे विद्वानों ने ताण्डवनृत्यरत शिव कहा है, वे सम्भवतः शिव न होकर वीरभद्र ही है।

ढाबला महेश में सप्तमातृकाओं के शिलापट पर एक छोर पर वीरभद्र एवं एक छोर पर नृत्यरत गणेश उत्कीर्ण हैं। मुख्य मन्दिर के पृष्ठभाग में एक शिला पर शेषशायी विष्णु का विग्रह उकेरा गया है। उनके चरणतल में मधुकैटभ राक्षस को दिखाया गया है।

दाहिनी ओर शेष नाग पर लक्ष्मी जी विराजित हैं। उत्तर में मन्दिर की एक शिला पर दशावतार अंकित है। कुछ मन्दिर खाली पड़े हैं। उनमें किसी समय स्थित मूर्तियाँ गायब हैं।

धर्मराजेश्वर अथवा बौद्ध चैत्य परिसर में अथवा आसपास कोई भी ऐसा शिलापट्ट उपलब्ध नहीं हो सका जिससे इस मन्दिर या गुफाओं के निर्माण का ठीक-ठीक निर्णय हो सके।

यह कहना भी अधिक उचित नहीं है कि धर्मराजेश्वर मन्दिर एलोरा की प्रतिकृति है। बहुत सम्भव है एलोरा का कैलाश मन्दिर धर्मराजेश्वर की प्रतिकृति हो। लगता तो यह है कि शिल्पीदल ने पहला मुकाम धर्मराजेश्वर स्थल पर दिया होगा तथा यहाँ अपनी कला का प्रथम प्रयोग किया होगा। फिर उस दल ने एलोरा में जाकर ऐसा ही शिल्प उकेरा। दूसरी बार किया

गया काम पहले से धुरा हुआ ही होता है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् फर्ग्युसन अपने ग्रंथ 'राककट टेम्पल्स इंडिया' में इसका निर्माण काल 408 से 473 ई० मानते हैं। यह काल गुप्तकाल का ठहरता है।⁹ औरंगाबाद स्थित एलोरा का कैलास मन्दिर 'फाइन ग्रेनेड ट्रेप रॉक पर' स्थित है तथा धर्मराजेश्वर 'लेट्राइट रॉक' पर। एलोरा का कैलास मन्दिर सूक्ष्म रवेदार काले पत्थर पर बना है जबकि धर्मराजेश्वर मुरमीली शिला पर। इसी कारण इसमें एलोरा मन्दिर-जैसी सफाई नहीं आ पायी।

धर्मराजेश्वर के विष्णु मन्दिर होने का उल्लेख काटजन ने भी किया है। जबकि फर्ग्युसन के अनुसार भी यह पूर्व में विष्णु मन्दिर ही था तथा कालान्तर में इसे शिव मन्दिर के रूप में परिणित कर दिया गया।¹⁰

श्री चन्द्रभूषण त्रिवेदी ने मध्य मण्डप भाग में कीर्तमुख एवं कमलदल होने का उल्लेख किया है किन्तु वह अब दृष्टिगोचर नहीं है।¹¹ वे इसे राष्ट्रकूट काल का निर्माण मानते हैं। यह उचित एवं प्रामाणिक भी प्रतीत होता है। जबकि एलोरा के कैलास मन्दिर का निर्माण राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज द्वारा करवाया गया। कृष्णराज का समय नन्नप के पश्चात का है। नन्नप के पश्चात भी बौद्धगुफाओं एवं धर्मराजेश्वर का निर्माण जारी रहा।¹²

स्थापत्य की दृष्टि से मालवाञ्चल का यह शिल्प-वैभव अजन्ता-एलोरा की स्थापत्यकला का पूर्वगामी है। 5वीं शती से लेकर 8वीं शती के बीच इस गुफा-शृंखला से जुड़े सैकड़ों ग्राम व वहाँ के प्रशासक, आमाल्य तथा प्रजा में नैतिकता, शील, संयम, करुणा, दया, मैत्री के भावों को पल्लवित करने एवं घृणा व हिंसा से समाज को दूर रखने में इन शैलोत्कीर्ण गुफा-विहारों, चैत्यों तथा संधारामों के प्रभाव व इनके योगदान को विस्तृत नहीं किया जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से तथा समाज विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर मालवाञ्चल के इन गुफा-चैत्यों व विहारों एवं मन्दिरों की उपादेयता तथा महत्त्व को तथा सांस्कृतिक अवदान को पुनर्प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। आज प्रतिमान बदलते हैं किन्तु युगीन दृष्टि बदली है, कला के सृजनात्मक प्रभाव एवं प्राणवत्ता में कहीं कमी नहीं आई है।

उत्तर-पश्चिमी मालवाञ्चल में आगर की गुफा बर्डा से लेकर डग कोलवी, हथियागोड़, विनायका, पोंगाडूंगर, खेजड़िया भूप, नाहरमगरा, गणेशमगरा व धम्मराड़ (धर्मराजेश्वर) तथा लेट्राइट शैल की यह पहाड़ी, 5वीं से 8वीं शती तक मालवा में बौद्ध धर्म साधना के वैज्ञानिक इतिहास को आज भी जीवन्त और प्रासंगिक बनाए हुए है तथा भारतीय संस्कृति के प्राचीन युगीन आदर्श को चरितार्थ कर रही है।¹³





7.

मालवा का एलोरा : धर्मराजेश्वर (धर्मनाथ) मन्दिर

डॉ० रवीन्द्र भारद्वाज

प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन

मालवा में शैलोत्कीर्ण शैव वैष्णव गुहा स्थापत्य का विकास तीसरी शताब्दी से प्रारम्भ होकर बारहवीं शताब्दी तक फलता-फूलता रहा। इसकी चरम परिणति धर्मराजेश्वर का धर्मनाथ मन्दिर है।

धर्मराजेश्वर (धमनार) अथवा धर्मनाथ मन्दिर मालव प्रदेश का एलोरा है, जहाँ बौद्ध-गुहाओं के साथ शैलोत्कीर्ण मन्दिर का निर्माण हुआ।

धर्मराजेश्वर मंदसौर जिले के शामगढ़ रेलवे स्टेशन से 21 किमी० दूर ग्राम चंदवासा से 3 किमी० दक्षिण में स्थित लेट्राइट (लोहमृत्तिका) पर्वत को काटकर तत्कालीन शिल्पियों ने बौद्धगुहाओं, चैत्य, विहार के साथ मन्दिर का निर्माण भी किया। प्राचीन काल में यह स्थान 'चन्दनगिरि विहार' के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ प्राप्त मृणमुद्रा से इसकी पुष्टि होती है, जिस पर 'चन्दनगिरि विहार' लेख उत्कीर्ण है। ग्राम नाम चन्दवासा सम्भवतः इसी का अपभ्रंश है।

धर्मराजेश्वर का मन्दिर लेट्राइट की पहाड़ी को उत्खनितकर 32X21X9.05 मीटर के आयतकार विशाल गर्त को तैयार कर निर्मित किया गया। इस कारण पहाड़ी पर मन्दिर के समीप पहुँचने पर ही दिखाई देता है। मन्दिर पूर्वाभिमुखी है। मन्दिर में प्रवेश के दो पथ हैं। एक उत्तर दिशा की ओर से तथा दूसरा पूर्व दिशा की ओर से। पूर्व दिशा को प्रवेश द्वार 'सूरज पोल' के नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रवेश-द्वार 7.15 मी. चौड़ा व 6 मीटर लम्बा है। इस प्रवेश द्वार के

पार्श्व प्रकोष्ठ में भग्न नटराज शिव, भद्रकाली की प्रतिमाएँ हैं। प्रवेश द्वार से प्रांगण के मध्य रथिका बिम्ब उत्कीर्ण है। इनमें विनायक वैनायकी की प्रतिमा का उत्कीर्णन है।

विशाल प्रांगण के मध्य शैलोत्कीर्ण मन्दिर का शिल्प वैभव प्रकट होता है। इसकी रचना एलोरा के कैलास मन्दिर सदृश है। जहाँ कैलास मन्दिर बैसाल्ट चट्टानों से निर्मित है, वहीं धर्मराजेश्वर लैट्राइट निर्मित है। इसी कारण से इसमें वह बारीकी नहीं आ सकी जो एलोरा में हमें दिखाई देती है। साथ ही इसका क्षरण भी अधिक हुआ है। फर्ग्युसन और बर्गस के अनुसार एलोरा के समकालीन इसका भी निर्माण-कार्य चल रहा था। इस मन्दिर के वास्तु शिल्प पर राष्ट्रकूट-कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से भी इस क्षेत्र पर राष्ट्रकूटों का शासन था। इसकी पुष्टि राष्ट्रकूट शासन नण्णप्प के इन्द्रगढ़ शिलालेख 767 वि० से होती है। फर्ग्युसन के अनुसार भू-विन्यास में यह मन्दिर कैलास मन्दिर की प्रतिकृति है। सम्पूर्ण शैलोत्कीर्ण देवालय 14.5X10 मीटर का नागर शैली के शिखर से युक्त है। मन्दिर स्थापत्य रचना में तल विन्यास में प्रमुख चार अंगों का संयोजन है— 1. अर्द्धमण्डप, 2. महामण्डप, 3. अंतराल और 4. गर्भगृह। उर्ध्व विन्यास में अधिष्ठान, जंघा एवं शिखर का संयोजन है।

अर्द्धमण्डप चार शैलोत्कीर्ण स्तम्भों पर उत्कीर्ण है। यह 3X2.90 मी० का है। यहाँ जालीदार अलंकरण तथा छत पर कमल पुष्प का अंकन है। अर्द्धमण्डप शैलोत्कीर्ण स्तम्भ के तीन भागों से निर्मित है। आधार-चतुष्टकोणी कुंभाकृति के है। स्तम्भ यष्टि, यह द्वादशभुजी तथा स्तम्भ शीर्ष चौकोर एवं अलंकृत है। अर्द्धमण्डप की बाह्य छत कपोतावली से अलंकृत है।

अर्द्धमण्डप के पश्चात् महामण्डप 7.10X7.10 मी. का है। यह चार प्रमुख स्तम्भों एवं 14 भित्ति-स्तम्भों पर आधारित है। यह महामण्डप खुला नहीं है। यहाँ भी छिद्रमय जालियों का अलंकरण है। महामण्डप की छत में नौ भाग दिखाई देते हैं। यहाँ कमल पुष्प तथा सिंहशीर्ष का रूपांकन है। अंतराल में समीप महामण्डप में दो प्रवेश द्वार पूर्ण अलंकृत निर्मित किये गये हैं, जहाँ से पर्याप्त प्रकाश प्राप्त होता है। महामण्डप में किसी प्रकार का शिल्पांकन उपलब्ध नहीं है। महामण्डप बाह्य भाग में भी संघाटमय अलंकरण पट्टिकाओं के रूप में उत्कीर्ण है। अलंकरणों में कीर्तिमुख पद्म पत्रांकित पट्टिका, जालीदार अलंकरण तथा लघु स्तम्भ उत्कीर्णन है। महामण्डप के स्तम्भ अलंकरण के मध्य अंतराल 2X2 मीटर का है। अंतराल से गर्भगृह में प्रवेश हेतु सुंदर अलंकृत प्रवेश द्वार है।

गर्भगृह में प्रवेश हेतु अलंकृत प्रवेश द्वार उत्कीर्ण किया गया है। प्रवेश द्वार 1.50 मीटर चौड़ा व 2.20 मी. ऊँचा है। प्रवेश द्वार द्वारशाखा अलंकृत है। इस पर पुष्पलता का अलंकरण, पुष्पवल्लरी, वाद्य एवं नृत्यरत प्रतिमाओं का अंकन, मुञ्ज मेखला अलंकरण, मिथुन युगलाकृतियों का उत्कीर्णन किया गया है। द्वारोपरीउत्तरंग में भी अलंकरण है। मध्य में ललाटबिम्ब पर लक्ष्मीनारायण का रूपांकन है। इससे स्पष्ट है कि यह मन्दिर विष्णु को समर्पित

है। द्वारशाखा के नीचे बायीं ओर मकरवाहिनी गंगा का अलंकृत प्रतिमा है। इनके द्विभुज में घट एवं पुष्प तथा शीर्ष पर पद्म पत्रांकित छत्र का उत्कीर्णन है। कमलदण्ड को सेविका लिए है। प्रणाम मुद्रा में पुरुषाकृति तथा इनके समीप द्वारपाल है। सभी प्रतिमाएँ पूर्ण अलंकृत निर्मित है। द्वारशाख के दाहिनी ओर कूर्मवाहिनी यमुना का रूपायन है। पूर्ण अलंकृत प्रतिमा के प्रथम हस्त में घट, दूसरा हस्त शिशु के सिर पर तथा समीप सेविका का अंकन है। इनके शीर्ष पर भी पद्म पत्रांकित छत्र, समीप सेविका, अञ्जलि मुद्रा में पुरुषाकृति तथा द्वारपाल का अंकन है। गर्भगृह के तल विन्यास में अर्द्ध पशु, मनुष्याकृति का अंकन है।

शैलोत्कीर्ण मन्दिर का गर्भगृह विष्णु देवता का है। इसके आंतरिक भाग में मुख्य प्रतिमा स्थापित है। गर्भगृह की दीवारें अलंकरणविहीन है। यह 3.05X2.15 मी. का है, जो आयताकार स्वरूप में है। ऊँची वेदिका पर मुख्य देवता विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा तथा परिकर में दशावतार उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा सातवीं एवं आठवीं शती की है। प्रतिमा सिकताश्म की है। विष्णु की यह प्रतिमा 1.60 मी. ऊँची तथा 1.37 मी. चौड़ी है। परिकर में बायीं ओर सबसे नीचे राम एवं उसके पार्श्व में कमलपुष्प लिए नारी का अंकन है। उसके ऊपर कीचक का उत्कीर्णन है। यहाँ परिकर में मत्स्यावतार, बुद्ध, वाराह, नृसिंह, मध्य में योगासन विष्णु, कल्कि, बलराम, वामन, कूर्म, परशुराम का अंकन है। इन अवतारों के मध्य कीचक, स्त्री, पुरुष कमल पुष्प के साथ अलंकरण के लिए गज, नृसिंह व्यालों के साथ रूपांकित है। कमल पुष्प पर स्थानक विष्णु के चतुर्हस्त वरद, गदा, चक्र तथा शंख के क्रम में आयुध है। नीचे चक्र पुरुष तथा गरुड़ का अंकन है। बायीं ओर पुरुष एवं पद्मपुष्प के साथ लक्ष्मी का अंकन है। विष्णु प्रतिमा पूर्ण अलंकृत है। किरीट मुकुट, ग्रीवाहार, कुण्डल, केयूर, कटिवलय, यज्ञोपवीत, ऊरुबंध, कटिबंध, मुक्तदाम, ऊरुदाम, वनमाला, पाद्वलय आदि से विभूषित है।

मूलतः यह मन्दिर विष्णु को समर्पित था, किन्तु कालांतर में शैव मन्दिर में परिवर्तित कर दिया गया। मन्दिर के बाह्य भाग की संरचना को दो भागों में विभाजित किया गया है—प्रथम अधिष्ठान तथा द्वितीय जंघा भाग।

अधिष्ठान पर गर्भगृह आधारित है। अधिष्ठान के निर्माण में खुर, कुंभ, कलश, संघाट का शिल्पांकन है। कपोतिका पर चैत्य गवाक्ष अलंकृत है। जंघा भाग में रथिकाओं का निर्माण किया गया है। ये लघु स्तम्भों से अलंकृत हैं। यहाँ घटपल्लव अलंकरण है। वर्तमान में रथिकाओं में प्रतिमाएँ नहीं हैं। रथिका के साथ भद्र, अनुरथ, सुर, सुन्दरियों का अंकन है। कर्ण भाग पर रथिकाओं में अष्टदिक्पालों का अंकन है। अनुरथों के स्तम्भों पर पुष्प पत्रों का अंकन है।

गर्भगृह का शिखर लम्बवत् है, जबकि महामण्डप का शिखर नीचे से ऊपर की ओर लघु होता गया है। गर्भगृह का शिखर का अधोतम भाग वरण्डिका है जो चैत्यगवाक्ष अलंकरण से अलंकृत है। उसके पश्चात् मध्य का भाग स्कन्ध है। इसके ऊपर क्रमशः वेणुकोश,

लतापंजर, आमलकसारक, चंद्रिका, कलश भाग (भग्न) है।

महामण्डप का शिखर फासनादि प्रकार का है, जिसे श्री सोमपुरा ने सम्बर्णा प्रकार कहा है। इसे अलंकरण एवं निर्माण-तकनीक की दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। अर्द्धमण्डप के शिखर में कपोताबलियों, चैत्यगवाक्ष, अलंकरण, रथिका बिंब का निर्माण है।

मूल गर्भगृह के चारों ओर सात लघु मन्दिरों का निर्माण किया गया है। यह रचना तारक शैली की है। इन लघु मन्दिरों को विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने हेतु निर्मित किया गया है।

धर्मराजेश्वर मन्दिर राष्ट्रकूट कला का मालवा में सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह मालवा का एलोरा है जिसे पर्यटन केन्द्र की दृष्टि से विकसित किया जा सकता है। आनन्द कुमारस्वामी ने इस मन्दिर को नागर शैली का सजीव उदाहरण कहा है। वह इसकी तिथि 8वीं शताब्दी निर्धारित करते हैं। आर०डी० त्रिवेदी के अनुसार 9वीं शताब्दी, कनिंघम 8वीं-9वीं शताब्दी तथा फर्ग्युसन व बर्गस 8वीं शताब्दी मानते हैं।

विष्णु श्रीधर वाकणकर एवं भारती जोशी ने प्रतिमाओं की कलाशैली, भद्रकाली की लेखयुक्त प्रतिमा के आधार पर इसे 7वीं शती माना है। स्थापत्य कलाशैली में यह सम्बर्णा की पूर्व विकसित शैली नहीं है, अतः इसे 7वीं एवं 8वीं शती का माना है।

सन्दर्भ :

1. फर्ग्युसन एवं बर्गस, *द केवल टेम्पल ऑफ़ इण्डिया*, पृ० 463-64
2. ए०एस०आई० रिपोर्ट, 1905-'06, पृ० 115
3. प्र०श० ओम सोमपुरा, *स्थापत्य कला निधि*, पृ० 143, 21
4. आनन्द कुमारस्वामी, *हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट*, पृ० 108
5. चन्द्रभूषण त्रिवेदी, *दशपुर*
6. भारती जोशी, *मालवा की शैलोत्कीर्ण गुहाएँ* (पीएच० डी० शोध प्रबंध), 1983
7. व्यक्तिगत सर्वेक्षण, 1980-81
8. डॉ० भारती जोशी एवं वाकणकर अन्वेषण संस्कृति न्यास, उज्जैन





8.

मालवा की शैव परम्परा में उमा-महेश्वर

डॉ० प्रशांत पुराणिक

मध्यप्रदेश मालवा के मंदसौर जिला मुख्यालय से 130 किमी० दूरी पर पूर्व उत्तर दिशा में रेवा नदी के तट पर भानपुरा नगर स्थित है। यशवंतराव प्रथम होल्कर की छतरी में मध्यप्रदेश विभाग द्वारा आम जनता के अवलोकनार्थ संग्रहालय की स्थापना की गई।

मालवा की शैव परम्परा— शैव-शाक्त परम्परा का सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राचीन मुद्राएँ हैं। इन सिक्कों पर अंकित शिव और उनके विविध स्वरूप शैव परम्परा की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। इनमें शिवलिंग के अलावा स्थानक शिव, गंगाधर, लकुलीश, अर्द्धनारीश्वर, नन्दी आदि शिव के अनेक स्वरूप की प्रतिमाएँ अंकित मिलती हैं। ओंकारांकित ओंकारेश्वर एवं महिष्मति के सिक्के शैव परम्परा की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं।

राष्ट्रकूट और प्रतिहारों के समय में मालवा का भू-भाग शैव परम्परा का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था। यही समय था जब मंदसौर और उसके आस-पास के क्षेत्र में पाशुपत सम्प्रदाय की गतिविधियाँ प्रारम्भ हो गई थीं। मंदसौर जिले के इन्द्रगढ़ नामक स्थान से प्राप्त शिलालेख में शैव पाशुपताचार्य विनीत राशि एवं दानराशि का उल्लेख मिलता है, जो अपने तप और त्याग के लिए सुप्रसिद्ध थे। इनकी शिष्य-परम्परा भी काफी विशाल थी। यही नहीं, शैवाचार्यों की इस शृंखला का मालवा में काफी समय तक धार्मिक प्रभुत्व रहा।

भारत की हृदयस्थली मालवा भूमि बहुत प्राचीन काल से शैवोपासना का मुख्य केन्द्र रही है। परमार काल में इस शैवपासना को पर्याप्त राज्याश्रय मिला और भगवान् शिव के विविध रूपों की प्रतिमाएँ देवालयों में प्रतिस्थापित की गयी। यद्यपि मालवा को परमार कला पर काफी कुछ लिखा जा चुका है, परन्तु राजगढ़ जिले में शैव परम्परा का काफी विकास हुआ। इस जिले के अंचल में कई शिव-मन्दिर एवं तीर्थों का निर्माण हुआ। करनवास गाँव के पश्चिम में पञ्चायतन शिव मन्दिर के ध्वंसावशेष हैं। मूल देवालय तथा उत्तर दिशा में शिव का एक छोटे मन्दिर के द्वार-स्तम्भ यहाँ बिखरे पड़े हुए हैं। यह मन्दिर 11वीं शती की परमार कला का प्रतिनिधित्व करता है।

माचलपुर से एक मील की दूरी पर दक्षिण-पश्चिम में एक पहाड़ी पर दो मन्दिर विद्यमान हैं। प्रथम मन्दिर पनिहारी मन्दिर के नाम से जाना जाता है जो पश्चिमाभिमुखी एवं शिवार्पित है। तल-विन्यास की दृष्टि से गर्भगृह अंतराल एवं मण्डप में विभाजित है; परन्तु वर्तमान में पूर्णरूपेण ध्वस्त हो चुका है। मन्दिर के प्राप्त भाग एवं उस पर लगी प्रतिमाओं से स्पष्ट होता है कि ऊर्ध्व विन्यास की दृष्टि से मन्दिर भूमिज शैली का है, जिसमें जंघा, शिखर, आमलक और कलश रहा होगा। मन्दिर की जंघा पर शिवगण एवं मिथुन युगलों से अलंकृत है, जंघा और शिखर के मिलन बिन्दु पर मिथुन युगलों को विभिन्न मुद्राओं में अंकित किया गया है। मन्दिर के सिरदल पर सप्तमातृकाओं का आलेखन है। आज भी सभी अवशेष बिखरे पड़े हैं। सम्पूर्ण मन्दिर लगभग 11वीं शती का है एवं परमार काल की उच्चता को प्रदर्शित करता है।

गिदोरहाट गाँव के पूर्व परमारकालीन मन्दिर के भग्नावशेष इस स्थान की प्राचीन समृद्धि के साक्षी हैं कि 10-11वीं शती में यहाँ एक भव्य शिव मन्दिर रहा होगा। सीका नामक स्थल परमारकालीन ध्वंसावशेषों से भरा पड़ा है। पचौर परमार काल (12-13वीं शती) में एक गौरवशाली नगर रहा होगा। परमार काल के अभिलेखों में उनका नाम पञ्चपुर महास्थान पचौर मिलता है। जिस प्रकार दशपुर, ग्यारसपुर इत्यादि स्थल परमार काल में प्रशासकीय मुख्यालय थे, उसी प्रकार पचौर भी प्रशासकीय नगर रहा होगा। यह शैव सम्प्रदाय का केन्द्र था। इसका उल्लेख रणधवल देव परमार के राजपुर ताम्रपत्र में मिलता है।

परोलिया ग्राम में परमारकालीन शिव मन्दिर के अवशेष हैं, जो लगभग 12-13वीं शती के होंगे। इनके अलावा गोपालपुर, पपरेल, विसोनिया, कालीपीठ, ब्यावरा, खिलचीपुर में भी शैव परम्परा से संबंधित अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन शैव कला केन्द्रों का विस्तृत सर्वेक्षण 1976-'77 में मध्यप्रदेश पुरातत्त्व एवं संग्रहालय विभाग द्वारा किया गया। इसमें विभिन्न स्थानों से लगभग 51 शैव प्रतिमाएँ संग्रहालय में संग्रहित की जा सकीं। ये सभी प्रतिमाएँ परमारकालीन एवं बलुआ पत्थर पर निर्मित हैं।

सीकां से प्राप्त शिव के सामान्य स्वरूप की प्रतिमा के ऊर्ध्वभाग से संबंधित इस प्रतिमा के कमर से नीचे का भाग खण्डित है। सं०क्र० 31 भुजाओं में क्रमशः त्रिशूल एवं नाग

ही स्पष्ट है। क्षरण के प्रभाव के कारण कलाकृति की विविधता समाप्त हो गई है। प्रतिमा का आकार 35X22X10 सेमी० है।

सीकां से ही प्राप्त यह कलाकृति किसी शिव प्रतिमा का उर्ध्व भाग है। सं०क्र० 4 देव गले की मणिमाला, कानों में कुण्डल और योगीश्वर शिव के अनुरूप है। प्रतिमा का आकार 61X45X30 सेमी. है।

शिव नटेश ब्यावरा से प्राप्त षट्भुजी शिव नटेश की यह प्रतिमा सं०क्र० निर्मित के समय निश्चितरूपेण अत्यधिक कलापूर्ण रही होगी, किन्तु अब यह अधिकांश भग्न हो चुकी है और क्षरण से प्रभावित है। 6 भुजाओं में केवल तीन शेष है और उसके आयुध स्पष्ट नहीं है। यद्यपि यह प्रतिमा अत्यधिक कलापूर्ण नहीं है, तथापि भावपूर्ण अवश्य है। प्रतिमा का आकार 40X21X16 सेमी० है।

मालवा का प्रसिद्ध भू भाग अपनी उर्वरता के साथ सांस्कृतिक विकास के लिये प्रसिद्ध रहा है। इस क्षेत्र में विदिशा, उज्जैन, धार, दशपुर-जैसे प्राचीन वैभववाले नगर बसे थे। इस मालवा में सर्वाधिक कलात्मक प्रस्तर अवशेष परमारकालीन हैं। परमारकालीन कलाकारों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने सभी मूर्तियाँ श्रेष्ठत्व के सिद्धान्त को मानते हुए अंकित कीं। यद्यपि प्रतिहार काल के कलाकारों ने भी उत्कृष्ट प्रतिमांकन का प्रयास किया है। समान मापदण्डों का पालन करते हुए, बनी प्रतिमाओं में कलाकारों ने क्षेत्रीय अलंकरणों और रीति-रिवाजों का भी प्रयोग किया।

ग्यारसपुर, विदिशा, उदयपुर, गांधावल, नेमावर, धार, माण्डव, उज्जैन, झारड़ा, मकला, इन्दौर, करेड़ी, सुन्दरसी, घोसला, जलोद, गुणावद, कंजार्डा, हिंगलाजगढ़, भानपुरा आदि अनेक ऐसे स्थल हैं, जहाँ शिव के साथ उमा-महेश्वर की प्रतिमाएँ श्वेत या काले बलुए प्रस्तर में मिली हैं जिन्हें कलाकारों ने ओपदार करने का प्रयास किया तथा सौम्या मूर्ति प्रतिमाया या सुस्तनी सुस्तना प्रतिमा बनाने का प्रयास किया गया। सुघड़ शरीर, लचीली कमर, विकसित स्तन, अलंकृत केशराशि के साथ अधिकतम रूप गरिमा को प्रकट करने के भाव कलाकारों के प्रदर्शित होते हैं। स्वाभाविकता से ओतप्रोत ये प्रतिमाएँ लज्जा और अनुराग के मिश्रित भाव प्रस्तुत करती हैं। शिव सभी प्रतिमाओं में चतुर्भुज हैं। उनके तीन हाथों में अनेक प्रकार के आयुध एवं दाहिना एक हाथ वरद मुद्रा में मिलता है। मालाहेड़ा (मंदसौर) से प्राप्त प्रतिमा में महेश्वर को कपाल पात्र लिए हुए प्रदर्शित किया गया है। जबकि इन्दौर से प्राप्त एक प्रतिमा में महेश्वर के दाहिने एक हाथ में शिवलिंग का अंकन मिलता है। परमारकालीन उमा-महेश्वर प्रतिमाओं में देवी द्विहस्ता, सामान्य अलंकरणयुक्त अंकित मिलती हैं।

सामान्यतया उमा-महेश्वर प्रतिमाओं में देवी उमा को महेश्वर की वाम गोद में आसीन प्रदर्शित किया जाता है किन्तु जावद तहसील एवं घोसला से प्राप्त प्रतिमाओं में देवी की दाहिनी गोद में महेश्वर को आसीन प्रदर्शित किया गया है।

प्रतिमा फलक में त्रिदेवों की कल्पना में ब्रह्मा एवं विष्णु का अंकन मिलता है। साथ ही इस शिल्प में परिवार-देवताओं के रूप में गणेश एवं कार्तिकेय तथा ऐसी शक्तियों को, जो अपना स्वतंत्र अस्तित्व तो रखती थीं, किन्तु देवता की सीमा तक नहीं पहुँची थीं, उत्कीर्ण किया गया है। ऐसी शक्तियों को गोपीनाथ राव ने 'डेमी गॉड्स' अर्थात् अर्द्धदेवता के रूप में उल्लिखित किया है। उन्होंने इन देवताओं में वसु, नाग, साध्य, असुर, अप्सरा, पिशाच, बेताल, पितृ, ऋषिगण तथा गंधर्व और मरुत् को माना है। द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल असुर, पिशाच, बेताल को दैत्यों के अंतर्गत उल्लिखित करते हुए उन्हें व्यंतर देवता नहीं मानते हैं। इनका उमा-महेश्वर प्रतिमाओं में विविधतापूर्ण अंकन मिलता है। इसके साथ ही आयुध पुरुष एवं वाहन देवताओं का अंकन भी मिलता है। गणपति एवं कार्तिकेय के रोचक कथानकों को आधार मानते हुए उनको उमा-महेश्वर प्रतिमाओं में अंकित किया गया है। ऋषि भृंगी के साथ ही वृषभ के अंकन को परमारकालीन प्रतिमाओं में सामान्यतया नन्दी को हृष्ट-पुष्ट, भारी-भरकम शरीरवाला बैठा या चलने को उद्धृत प्रदर्शित किया गया है। उसके बड़े-बड़े सींग, लम्बे कान, उनींदा आँखें, नन्दी की शांत एवं अलसाई प्रकृति में बढ़ोतरी करती है। इस प्रकार नन्दी देव वीक्षण तत्पर या आलोकमान दूर दामामिक रूप से प्रदर्शित होता है। चलने को उद्यत या नन्दी मुख के नीचे लड्डूओं का थाल एवं नन्दी का उस भोजन से संतुष्टि के भाव व्यक्त करती प्रतिमाएँ भी उज्जैन एवं इन्दौर संग्रहालय में संरक्षित हैं। रायसेन (आशापुरी) से प्राप्त एक प्रतिमा के वितान पर शिवलिंग का अंकन मिलता है। पद्म प्रभामण्डल कलात्मकता में वृद्धि करता है। हिंगलाजगढ़ की प्रतिमाएँ मालवा की श्रेष्ठतर कलाकृतियाँ मानी जा सकती हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन शिल्पियों ने उच्चतम आध्यात्मिक मापदण्डों का उपयोग कर क्षेत्रीय रीति-रिवाजों का समन्वय पौराणिक कथानकों के अनुसार करके श्रेष्ठ कला उत्कीर्ण करने का प्रयास किया जिसमें वे पूर्णतया खरे उतरे। शैव मूर्तिकला में उमा-महेश्वर आराध्य के प्रति जनमानस में उपजी श्रद्धा एवं भक्ति दृष्टव्य होती है जो मालवा पर शासन करनेवाले विभिन्न राजवंशों के काल में प्रकाशित हुई और भारतीय धर्म तथा संस्कृति के प्रतीक इस स्वरूप को क्षेत्रीय विशेषताओं व परम्पराओं के साथ रेखांकित किया।





9.

मालवा के स्तूप-मन्दिर

डॉ० रीतेश लोट

उज्जैन

मध्यप्रदेश के हृदयस्थल में अवस्थित मालवा अपनी विशेष भौगोलिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों के फलस्वरूप भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्राचीन काल से ही मालवा एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में विवेच्यकालीन मालवा का सशक्त क्षेत्र अवन्ति नाम से जाना जाता था, जो षोडश महाजनपदों में एक प्रमुख जनपद था। कालांतर में यहीं अवन्ति जनपद बौद्ध-ग्रंथ *अंगुत्तरनिकाय*, जैन ग्रंथ *भगवतीसूत्र*, *महाभारत* में अवन्ति महाजनपद के रूप में उल्लेखित है। इसके पश्चात रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में मालवा का विभाजन दो स्पष्ट क्षेत्रों आकर (पूर्वी मालवा) एवं अवन्ति (पश्चिमी मालवा) के रूप में मिलता है। भौगोलिक दृष्टि से उत्तर एवं दक्षिण भारत के मध्य होने के कारण मालवा ने कला एवं स्थापत्य की दृष्टि से भारतीय कला को मौलिक एवं अनुपम देन दी हैं।

प्राचीन काल में विभिन्न सम्प्रदायों के उद्भव से हमारे समाज को शिल्प का वैभव मिला और संस्कृति को वह सर्जक अनुभूति जिससे हर युग की कला में ईष्ट के विग्रह, देवालय, प्रासाद, विहार-चैत्य एवं स्तूप आदि निर्मित हुए। इस प्रकार देखा जाए तो सम्पूर्ण संस्कृति का समन्वय वास्तुशिल्प में निहित है। सांस्कृतिक क्षेत्र में भारतीय वास्तु का विकास दो रूपों, यथा— लौकिक एवं धार्मिक क्षेत्रीय प्रभावों में अनवरत जारी रहा। कालांतर में धार्मिक

कर्मकाण्डों के अनुरूप वैदिक धर्म के अंतर्गत वेदिकाओं तथा देवालयों का निर्माण हुआ, एवं अनेक देवी-देवताओं की कल्पना हुई। दूसरी और जैन तथा बौद्ध संस्कृतियों में चैत्य तथा स्तूपों के साथ विहार का निर्माण हुआ। प्रारम्भ में हीनयानी प्रभाव के अंतर्गत मात्र बुद्ध के प्रतीक कला में अंकित किए गए और इन्हीं का विकास महायानी परम्परा में बुद्ध की प्रतिमा के रूप में गान्धार स्तूपों में उकेरा गया, जिसका प्रभाव समस्त भारतीय कला पर भी पड़ा। यह भी महत्वपूर्ण है कि सुदूर पूर्व की कला-परम्पराओं में भी शिल्पी ने अनेक प्रयोग स्थानीय तथा प्रादेशिक तत्त्वों के अंतर्गत प्रस्तुत किये। विशेषकर शैलीत्कीर्ण स्थापत्य परम्परा के अंतर्गत शिल्पी ने अनेक नवीन प्रयोग किए, जिसके उदाहरण हमें मालवा के शैलीत्कीर्ण स्थापत्य में भी दिखाई देते हैं। यहाँ कलाकारों ने बाघ, धमनार, कोलवी, बिलायगा, हथियागौड़, पोलाडूंगर, गुनाई, एवं खेजड़ियाभोप आदि स्थानों पर लगभग 500 शैलकृत गुफाओं का निर्माण किया। ये गुफाएँ विनायगा में उत्कीर्ण स्तूपकार बौद्ध मन्दिर मालवा के मन्दिर स्थापत्य कला के अति उत्कृष्ट उदाहरण हैं जिसके मालवा के अतिरिक्त अन्यत्र दर्शन नहीं होते।

कोलवी, राजस्थान राज्य के झालावाड़ जिले की गंगधार तहसील में भवानी-मण्डी जानेवाले मार्ग पर एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ अनेक बौद्ध शैलीत्कीर्ण गुफाएँ उत्कीर्ण की गई हैं। यह स्थान डग (राज०) से 8 मील आगर (म०प्र०) से 30 मील की दूरी पर स्थित है। यह क्षेत्र पूर्व में मालवा का ही भाग था। यहाँ अश्वनाल आकृति की लेट्राइट पर्वत-शृंखला में लगभग 50 गुफाएँ उत्कीर्ण हैं, जिनमें विहार, गुफाएँ, द्वितल विहार गुफाएँ, चैत्य गृह, स्वतंत्र स्तूप एवं स्तूप मन्दिर हैं। परंतु इस स्थल का सबसे रोचक स्थापत्य स्तूप मन्दिर ही है।

वर्तमान गंगधार प्राचीन गर्गरातपुरम औलिकरों की उपराजधानी रही है। दशपुरीय नृप तथा उनके अमात्य व सेनापति बौद्ध धर्मावलम्बी थे। अतः यह असम्भव नहीं कि इतनी बड़ी मात्रा में बौद्ध शैलीत्कीर्ण गुफाओं का निर्माण इन्हीं के द्वारा कराया गया है। इन गुफाओं की सर्वप्रथम खोज 1853 ई० में डॉ. इम्पे द्वारा की गयी। इसके पश्चात् जेम्स टॉड, जेम्स बर्जेस तथा मेजर जनरल कनिंघम ने इन गुफाओं को प्रकाश में लाने के लिए महत्वपूर्ण शोध-कार्य किया।

कोलवी गुफा-समूह की गुफा-क्र० 2 एक स्तूप-मन्दिर है जो इस गुफा-समूह की उल्लेखनीय विशेषता है जिसमें हिंदू-मन्दिरों का प्रभाव पूर्णतः दृष्टिगत होता है। आराधना हेतु चैत्यगृहों के साथ मन्दिर सदृश्य गुफाओं का उत्कीर्णन पश्चिमी मालवा के गुफा-स्थापत्य का एक विशिष्ट लक्षण है, जो अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होता है। कोलवी का यह स्तूप-मन्दिर गुप्तकालीन प्रारम्भिक मन्दिरों से अत्यधिक दृष्टिगत नहीं होता है। कोलवी का यह स्तूप-मन्दिर गुप्तकालीन प्रारम्भिक मन्दिरों से अत्यधिक साम्यता रखता है, जिनकी छतें सपाट होती थीं या जिन पर आरम्भिक शिखरों का प्रादुर्भाव दृष्टिगत होता है। इस मन्दिर के अंतर्विन्यास में दो स्तम्भों पर आधारित अर्द्धमण्डप, इसके बायें पार्श्व से मन्दिर के शिखर तक पहुँचने के लिए सोपान उत्कीर्ण है एवं पृष्ठाभागे में गर्भगृह के मध्य में ललितासन मुद्रा में बुद्ध

की प्रतिमा अंकित है।

यह स्तूप मन्दिर पर चतुष्कोणीय आधार पर उत्कीर्ण किया गया है। इसके अग्रभाग में उत्कीर्ण 2.20X2 मी० परिणाम का अर्द्धमण्डप दो अतिसामान्य चतुष्कोणीय स्तम्भों तथा दो भित्तिस्तम्भों पर आधारित है। ये स्तम्भ 2.60मी. लम्बे हैं। इन स्तम्भों का यष्टिभाग अत्यन्त साधारण है, परन्तु स्तम्भशीर्ष के अलंकृत कोष्ठक कमलदल से सुसज्जित हैं। अर्द्धमण्डप के अग्रभाग का ऊपरी भाग पट्टिका अलंकरण से अलंकृत है तथा इसके ऊपरी भाग को तीन चैत्यगवाक्ष अलंकरणों की श्रेणी द्वारा शृंगारित किया गया है। इसके ऊपर वृत्ताकार कोष्ठकों के मध्य लघुस्तूपों का अंकन है।

अर्द्धमण्डप के पृष्ठभाग में गर्भगृह उत्कीर्ण है, जिसका सामान्य प्रवेशद्वार 2.20मी. ऊँचा तथा 1 मी० चौड़ा है। गर्भगृह 2X1.70 मी० चौड़ा है, जिसकी छत दुर्लभ रूप में गजपृष्ठाकृति की है। गर्भगृह के पृष्ठभाग में ललितासन मुद्रा में बुद्ध-प्रतिमा अंकित है। परन्तु वर्तमान अवस्था में चट्टान क्षरण के फलस्वरूप प्रतिमा अत्यन्त क्षतिग्रस्त है। अर्द्धमण्डप के आधार भाग के ऊपर तथा मन्दिर की भित्तियों के मध्य तीनों ओर चैत्यगवाक्ष अलंकरणयुक्त एक-एक देवकुलिका निर्मित है। परन्तु ये तीनों देवकुलिकाएँ रिक्त हैं।

इस स्तूप-मन्दिर का वृत्ताकार शिखर, स्तूप के अण्डभाग के समान निर्मित किया गया है। यह भी लघु स्तूपों एवं चैत्यगवाक्ष अलंकरणों से अलंकृत है। वृत्ताकार शिखर पर दो पंक्तियों में समानांतर चैत्यगवाक्ष अलंकरण तथा तीनों दिशाओं के मध्य में अर्थात् उत्तर, दक्षिण व पश्चिम दिशा में प्रक्षेप रूप में निकले भाग में स्तम्भयुक्त लघुस्तूप अलंकरण हैं। इसके ऊपर का भाग भग्न है। कनिंघम के मतानुसार सम्भवतः वृत्ताकार शिखर के बाद पहाड़ी का ठोस चट्टानी भाग यहीं पर समाप्त हो गया होगा, तथा इसके शिखर का ऊपरी भाग लघुपाषाण खण्डों से निर्मित किया गया होगा। लघुपाषाण खण्डों से निर्मित शिखर सम्भवतः हर्मिका एवं छात्रावलि के रूप में रहा होगा अथवा बिनायगा के स्तूप-मन्दिर के आमलक सदृश्य रहा होगा।

कोलवी के अतिरिक्त बिनायगा में भी एक अन्य बौद्ध-देवालय उत्कीर्ण है। बिनायगा की गुफाएँ भी राजस्थान राज्य के झालावाड़ जिले की गंगधार तहसीह में डग से उत्तर में लगभग 14 किमी० की दूरी पर स्थित हैं। इन गुफाओं की सर्वप्रथम खोज भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के श्री मोलवी जफर ने 1922-'23 में की थी। यहाँ भी लेट्राइट पहाड़ी के लम्बवत भाग में लगभग 20 गुफाएँ उत्कीर्ण की गई हैं। कोलवी के समान यहाँ भी विहार-गुफाएँ स्वतंत्र स्तूप, तथा स्तूप-मन्दिर उत्कीर्ण हैं, परन्तु स्तूप-मन्दिर इस स्थल का सबसे उत्कृष्ट वास्तु उदाहरण है। इस गुफा का वास्तु-संयोजन भी स्तूपाकार मन्दिर सदृश है। यह स्तूप-मन्दिर बिनायगा गुफा-समूह की एकमात्र आराधना-स्थली है, जो इस गुफा-समूह को महायान धर्म का प्रमाणित करती है। इस बौद्ध-देवालय के अंतर्विन्यास में भद्रकशैली के दो चतुष्कोणीय स्तम्भों एवं दो भित्ति-स्तम्भों पर आधारित अर्द्धमण्डप है, जिसके पृष्ठ भाग में गर्भगृह है। इस गर्भगृह की छत चापाकार है।

गर्भगृह की पृष्ठभाग की भित्ति से सम्बद्ध पादपीठ पर बुद्ध की आसनक प्रतिमा उत्कीर्ण थी, जो वर्तमान में क्षरण के फलस्वरूप नष्ट प्रायः है।

अर्द्धविविन्यास में इस स्तूप मन्दिर के तीन भाग जगती, जंघा एवं चैत्यालंकरण से अलंकृत स्तूपाकार शिखर है। इस मन्दिर के शिखर का ऊपरी भाग स्तूप की अण्डाकृति के रूप में वृत्ताकार चैतन्यगवास अलंकरणों से अलंकृत किया गया है। इनके मध्य में लघु चैत्यगवाक्ष अलंकरणों की पंक्ति उत्कीर्ण की गई है। इसके पश्चात स्तूप की अण्डाकृतिवाला शिखर भाग उत्कीर्ण है। स्थानीय निवासियों द्वारा इसे भैरो बाबा के मन्दिर के नाम से जाना जाता है।

कोलवी एवं विनायगा की गुफाओं का निर्माण रूप से एक नये आकार प्रकार का संकेत देता है। ये स्तूप-मन्दिर प्रारम्भिक गुप्तकालीन मन्दिर साँची नं० 17 के समान हैं, इसलिए कला की दृष्टि से इनकी तिथि छठी शताब्दी ई० से पहले की नहीं मानी जा सकती है। ये गुफाएँ छठी शताब्दी के बाद ही निर्मित हुई हैं। वास्तुकला की दृष्टि से ये गुफाएँ दक्कन की अन्य समकालीन गुफाओं के समान ही हैं, परन्तु फिर भी यह कुछ विचित्र स्वभाव की विशेषता प्रदर्शित करती हैं। इनमें चैत्यगृहों की अनुपस्थिति और आत्मनिर्भर पूजागृहों की उपस्थिति इनको अन्य गुफा-विहार केन्द्रों से पृथक् करती है। विहारों में पूजागृह सम्मिलित होने के कारण भिक्षुओं ने एक अलग चैत्यगृह को अनावश्यक समझा होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि कोलवी एवं विनायगा के ये स्तूपाकार शिखरवाले मन्दिर पश्चिमी मालवा के गुफा-स्थापत्य का अत्युत्कृष्ट उदाहरण हैं, जिसके भारतीय शैलीत्कीर्ण स्थापत्य में अन्यत्र दर्शन नहीं होते हैं।

सन्दर्भ :

1. फ्लिट, जॉन, एफ, *भारतीय अभिलेख संग्रह*, पृ० 324
2. त्रिवेदी, चन्द्रभूषण, *दशपुर*, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1979
3. इम्पे, डॉ०, *जर्नल ऑफ द बॉम्बे ब्रॉच ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी*, संख्या 51, पृ० 336
4. टॉड, जेम्स, *एनल्स एण्ड एंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान*, कलकत्ता, 1896, पृ० 609-10
5. बर्नेस, जेम्स एवं जेम्स फर्ग्युसन, *द केव टेम्पल ऑफ इण्डिया*, लन्दन, 1910, पृ० 408
6. कनिंघम, अलेक्जेंडर, *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट : 1864-64*, पृ० 284
7. मित्र, देवला, *बुद्धिस्ट मान्युमेन्ट्स*, कलकत्ता, 1971, पृ० 136-137
8. जोशी, भारती, *मालवा की शैलीत्कीर्ण गुफाएँ एवं मन्दिर*, अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, 1982, पृ० 93
9. कनिंघम, अलेक्जेंडर, पूर्वोक्त, पृ० 285
10. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, *रिव्यू : 1922-'23*, पृ० 124
11. त्रिवेदी, चन्द्रभूषण, पूर्वोक्त, पृ० 85
12. मित्र, देवला, पूर्वोक्त, पृ० 136-37





10.

मालवा के प्रमुख सूर्य मन्दिर एवं सूर्य-प्रतिमाएँ : केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर के सन्दर्भ में

रश्मि सिंह

वे दो में सूर्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देवता स्वीकार किये गए हैं। इन्हीं के साथ कुछ अन्य देवों के नामों की गणना हुई है। ये देवता सवित, धातु, मित्र, आर्यमन्, विष्णु, विवस्वान्, पूषन् तथा मरु आदि हैं। ये द्वादश आदित्य के नाम से भी जाने जाते हैं। ये देवता किसी-न-किसी रूप में परस्पर साम्य रखते हैं। कुछ देवों के कर्म समान होने से वे एक-दूसरे का रूप भी धारण कर लेते हैं। मेकडॉनल महोदय भी इस कथन का अनुमोदन करते हैं। ये अग्निदेव के परम सहायक माने गये हैं। इन्हें मित्र, वरुण तथा अग्नि का नेत्र कहा गया है। वे चार अथवा सात घोड़ों द्वारा खींचे जानेवाले रथ पर चलते हैं। *महाभारत* में सूर्य को पीतवर्ण विशाल बाहु, कवच, कुण्डल तथा आभूषणधारी बताया है। मयूरभट्ट ने 100 श्लोकों में *सूर्यशतक* की रचना की और सूर्योपासना द्वारा अपनी कुष्ठ व्याधि से मुक्ति प्राप्त की। *वाराहपुराण* इस बात का साक्ष्य है कि साम्ब को कृष्ण के शाप से जो कोढ़ हो गया था, वह सूर्योपासना से ठीक हो गया।

मालवा में सूर्य-पूजा की प्रधानता के सन्दर्भ में कुमारगुप्त प्रथम और बन्धुवर्मन के मन्दसौर-शिलालेख मालव संवत् 492 में एक सूर्य मन्दिर का प्रसंग प्राप्त होता है जिसे शिल्पियों ने दशपुर (मन्दसौर) में बनवाया था। बीजामंडल (विदिशा) से 11वीं शताब्दी का एक शिलालेख मिला है जिसमें सूर्य की प्रशंसा है तथा अन्य मन्दिरों के साथ विदिशा में सूर्य मन्दिर

का उल्लेख है। उज्जैन में भी सूर्य मन्दिर था, कालियादह से एक सूर्य मन्दिर के द्वार की प्राप्ति इस बात की पुष्टि करती है। शाजापुर के पास सखेड़ी ग्राम में एक छोटे-से सूर्य मन्दिर के अवशेष मिलते हैं। ग्यारसपुर में त्रिदेव का मन्दिर था, किन्तु मध्य गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर सूर्य की एक दर्शनीय प्रतिमा उत्कीर्ण है। नवग्रह के स्वतंत्र मन्दिर उज्जैन, नेमावर और भानपुरा में मिले हैं। स्वाभाविक है अन्य ग्रहों के साथ मालवा में सूर्य-पूजा भी होती रही होगी।

स्वतंत्र रूप में सूर्य की प्रतिमाएँ मालवा क्षेत्र के कई स्थानों में मिलती हैं। हाथों में कमल, उर्ध्वबन्ध, अरुण, पदावरण, ऊपर अष्टदिक्पाल, नीचे बायीं ओर दण्डक और दाहिनी ओर पिंगल अनुचर। सूर्य की ऐसी प्रतिमाएँ सीका, देपालपुर, बदनावर, विदिशा, गंधावल, कायथा, उज्जैन, झार्डा, धुन्धेरी, मोडी, कागपुर, बड़ोह, खिलचीपुर, ओखलेश्वर आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं।

सूर्य की निक्षुभा, छाया, सूवर्चना नामक रानियाँ कहीं-कहीं उत्कीर्ण हैं। उज्जैन, हिंगलाजगढ़, कानपुर, आशापुरी से मिली सूर्य-प्रतिमाओं के दोनों हाथों में कमल है। मालवा क्षेत्र से प्राप्त प्रतिमाओं को उस क्षेत्र के संग्रहालयों में संग्रहित कर प्रदर्शित किया गया है। इनमें केन्द्रीय संग्रहालय, इंदौर; बिड़ला संग्रहालय, भोपाल; विक्रम कीर्ति संग्रहालय, उज्जैन; जिला पुरातत्त्व संग्रहालय, धार; यशवंतराव होलकर संग्रहालय, भानपुरा; जिला पुरातत्त्व संग्रहालय, खण्डवा; स्थानीय संग्रहालय, आशापुरी; जिला पुरातत्त्व संग्रहालय, शाजापुर; पुरातत्त्व संग्रहालय, रतलाम आदि उल्लेखनीय हैं।

केन्द्रीय संग्रहालय, इंदौर में सूर्य की कई महत्वपूर्ण प्रतिमाएँ प्रदर्शित की गई हैं। ये इंदौर, काटकूट (खरगोन), हिंगलाजगढ़ (मन्दसौर), राजौर (देवास), जेठवाया (खरगोन) आदि स्थानों से लाकर प्रदर्शित की गई हैं। अधिकांश प्रतिमाएँ परमारकालीन हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्रतिमाओं का यहाँ उल्लेख है। सूर्य-प्रतिमाएँ मुख्यतः चार प्रकार की पाई गई हैं। प्रथम सूर्य-प्रतिमा, जिसमें सूर्य कवच, कुण्डल व उपानयन (पैरों के लम्बे जूते) पहने नज़र आते हैं। द्वितीय, रुद्रभास्कर, जिसमें सूर्य तथा शिव की संयुक्त मूर्ति है। शिव को रुद्र भी कहते हैं। अतः इस प्रतिमा को 'रुद्रभास्कर' कहा गया है। तृतीय प्रकार की प्रतिमा सूर्यनारायण की है जिसमें सूर्य एवं नारायण की संयुक्त प्रतिमा है। चतुर्थ प्रकार की प्रतिमा सूर्य, शिव, विष्णु और ब्रह्मा की संयुक्त प्रतिमा है जिसे 'हरिहरार्क पितामह' कहा गया है। हरि-विष्णु, हरिहर, अर्द्धसूर्य तथा पितामह ब्रह्मा को माना गया है।

सूर्य-प्रतिमाओं का प्रतिमाशास्त्रीय विवरण यहाँ दिया जा रहा है :

केन्द्रीय संग्रहालय, इंदौर में प्रदर्शित स्थानक सूर्य प्रतिमा 49X43X13.5 से.मी. आकार की लाल बलुए पत्थर की बनी है। यह दोहरे कमलपीठ पर स्थानक मुद्रा में प्रदर्शित है। सूर्य देवता सनाल पद्म धारण किए द्विभुजी हैं। अलंकरण में पुष्पकुण्डल, वक्षस्थल पर कवच, काटि में अलंकृत अधोवस्त्र, पैरों में लम्बे जूते, प्रभामण्डल के दाहिनी और ब्रह्मा तथा बायीं ओर

विष्णु आसीन हैं। सूर्यदेवता के पैरों के पास भूदेवी का अंकन है। प्रतिमा के दाहिनी ओर सूर्य के अनुचर दण्ड एवं पिंगल हाथों में शूल, लेखनी तथा मसिपात्र लिए खड़े हैं। प्रतिमा के दोनों ओर चमरधारिणी की भी अंकन है। यह प्रतिमा 9वीं शती की प्रतिहार शैली की अनुपम कृति है।

हिंगलाजगढ़ से प्राप्त सूर्य-प्रतिमा से युक्त वितान अत्यन्त कलापूर्ण है। प्रभामण्डल के दोनों ओर उड़ते हुए देव-गन्धर्वों का अंकन है। पार्श्व में ब्रह्मा एवं विष्णु की लघु प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। वितान के मध्य में आकर्षक सूर्य-प्रतिमा अंकित है। सूर्य के दोनों ओर अश्विनीकुमारों का आलेखन अत्यधिक सौम्य और प्रभावोत्पादक है। वितान की अभिव्यक्ति और कला को देखते हुए मूल प्रतिमा की भव्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। सूर्य को पद्मासन पर विकसित सनाल पद्म किया गया है। अश्विनीकुमारों के हाथों में कलश है। बलुआ पत्थर में उत्कीर्ण इस प्रतिमा का आकार 68X62X14 सेमी० है। यह लगभग 11वीं शती की है।

रुद्रभास्कर

‘एक विष्णुच विष्णुश्च रुद्र एवं हि भास्कर’ (सूर्योपरिषद्)। शिव एवं सूर्य की सम्मिलित स्वरूप की रुद्रभास्कर प्रतिमाएँ मूर्तिविज्ञान में बड़ी दुर्लभ मानी जाती हैं। इन्दौर संग्रहालय में संग्रहित रुद्रभास्कर प्रतिमा के अतिरिक्त मालवा से एक भी ऐसी अन्य प्रतिमा के प्राप्त होने का उल्लेख नहीं मिलता।

रुद्रभास्कर की यह प्रतिमा हिंगलाजगढ़, मंदसौर से लाई गई है। आकार 35X80X20 सेमी० है। यह लगभग 11वीं शती की है और बलुआ पत्थर से निर्मित है। शिव और सूर्य के संयुक्त स्वरूप को प्रदर्शित करनेवाली यह प्रतिमा मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। सप्ताश्वरथ पर आरुढ़ रुद्रभास्कर के हाथ एवं सिर तथा पैर भग्न हैं। हाथों से जो आयुध अवशिष्ट हैं, उनसे ज्ञात होता है कि प्रतिमा में दक्षिणाध क्रम से सनालपद्म, नागवेष्टित त्रिशूल, नाग एवं सनालपद्म थे। ऊपर भालाधारी यक्ष अंकित थे जो भग्न हो चुके हैं। भास्कर फूल को औदीच्य वेश में कवच-कुण्डलयुक्त उत्तरीयसहित अंकित किया गया है। दोनों ओर परिचारिकाएँ एवं सनालपद्म लिए हुए संभवतः ऊषा प्रत्यूषा अंकित थी जो अत्यधिक क्षरण के कारण अपनी कमनीयता खो चुकी है। मालवा से शिव और भानु के ऐसे संयुक्त स्वरूप की प्रतिमाएँ अभी तक प्राप्त नहीं हुई थीं।

हरिहरार्क पितामह

1. हिंगलाजगढ़, मंदसौर से प्राप्त 74X91X21 सेमी० मध्यम बलुआ पत्थर द्वारा निर्मित तथा लगभग 11वीं शती की है। प्रतिमा का सिर एवं वितान तथा आठों हाथ भग्न हैं। सम्पूर्ण कलाकृति अत्यन्त ही प्रभावी है। उदीच्य वेश में अंकित सम्मुख सूर्य के आसन पर दायीं ओर दण्डी, नन्दिकेश्वर एवं शुकदेवजी का अंकन है। बायीं ओर पिंगल,

अश्विनीकुमार एवं गरुड़ बने हुए हैं। ऊषा और प्रत्यूषा तीर छोड़ती हुई अंकित हैं। आयुधों में बायीं ओर के हाथों में सनालपद्म एवं चक्र के अवशेष हैं। कवच एवं कटिबद्ध का आलेखन विविधतापूर्ण और कलात्मक है। पैरों में उपानह (जूते) एवं गले का आलेखन भी प्रभावोत्पादक है। दण्डी, पिंगल तथा अश्विनीकुमार को भी कवचयुक्त बनाया गया है। अधोवस्त्र की सिलवटें स्पष्ट हैं।

2. हरिहरार्क पितामह विश्वपद्म पर पद्मासन पर बैठे हुए अष्टभुजी हरिहरार्क के अधिकांश हाथ टूटे हुए हैं। हरि, हर एवं अर्ध के मुख स्पष्ट हैं। हाथों में क्षुक, पद्म एवं नाग एवं वेद आयुध स्पष्ट हैं। सामने की प्रतिमा कवचधारी सूर्य की है। अलंकरण एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रतिमा उच्चस्तरीय नहीं है। सूर्य के दाहिने हाथ का सनालपद्म टूटा हुआ है। किरीट भी भग्न है। गले में हार कंधे पर यज्ञोपवीत एवं उत्तरीय तथा हाथों में केयूर व अलय अंकित है। प्रतिमा के ऊपर कोने पर 32 अंक भी खुदा हुआ है।

सूर्यनारायण

वैष्णव एवं शैव सम्प्रदाय— दोनों ही मालवा के जनजीवन में व्याप्त रहे हैं। अनेकता में एकता स्थापित करने के उद्देश्य से सूर्यनारायण की प्रतिमा का निर्माण शिल्पी की निजी खोज थी। इंदौर संग्रहालय में संरक्षित सूर्यनारायण प्रतिमाएँ मध्यकालीन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

1. **सूर्यनारायण**— प्राप्ति स्थान हिंगलाजगढ़ मंदसौर, आकार 40X54X20 सेमी०, माध्यम बलुआ पत्थर, समय लगभग 10वीं शती की है। सूर्य एवं विष्णु के संयुक्त स्वरूप को अभिव्यक्त करनेवाली इस प्रतिमा के नीचे का भाग व दोनों कोने अंशतः भग्न हैं, तथापि कलात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट है। उदीच्य वेश में शिल्पांकित चतुर्भुजी सूर्यनारायण के हाथों में दक्षिणाधः क्रम से गदा, सनालपद्म एवं शंख का आलेखन है। वैसे तो गदा और शंख के अंकन का यह क्रम विष्णु के ऋषिकेश व अच्युत स्वरूपों की विशिष्टता है। नारायण के हाथों में यह क्रम नहीं मिलता। आसन पर दण्डी की आकृति बनी हुई है। किन्तु पिंगल टूटा चुका है। अभिव्यक्ति एवं कलात्मक अंकन की दृष्टि से कलाकृति व उच्चस्तरीय है।
2. **सूर्यनारायण**— एक तक्षणाकृति- प्राप्ति स्थान-आवरा मंदसौर आकार 40X23X13 सेमी०, माध्यम बलुआ पत्थर, समय लगभग 10वीं शती की है। पूर्व में इसे 'द्वारतोरण की एक तक्षणाकृति' लिखा गया है। इस तक्षण में सूर्यनारायण को ध्यानास्थ मुद्रा में अंकित किया गया है। ऊपर के दोनों हाथों में सनालपद्म है। सिर पर किरीट मुकुट, कानों में कुण्डल तथा गले की वैजयन्तीमाला का आलेखन अलंकृत है। वक्ष पर कवच का अंकन अंशतः भग्न है। मूल प्रतिमा का नाक व मुख का भाग टूटा हुआ है। प्रतिमा

छोटे-छोटे स्तम्भों के मध्य बनी हुई है। यही स्तम्भ ऊपर वितान का निर्माण कर रहे हैं। स्तम्भों के पार्श्व में व्यालाकृतियाँ बनी हुई हैं, जिनमें से ऊपर की दो आकृतियाँ अंशतः भग्न हैं।

3. **सूर्यनारायण**— प्राप्ति-स्थान : मोड़ी मंदसौर, आकार : 75X42X15 सेमी०, माध्यम बलुआ पत्थर, समय लगभग 12वीं शती है। सूर्यनारायण से संबंधित यह प्रतिमा मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। अश्वयुक्त रथ पर आरूढ़ सूर्यनारायण के हाथों में दक्षिणधः क्रम से शंख, सनालपद्म एवं चक्र का आलेखन है। शंख एवं चक्र का यह आयुध-क्रम नारायण के हाथों में रहता है। *चतुर्वर्गचिंतामणि* में नारायण के आयुध-क्रम को अलग बताया गया है। नीचेवाले हाथों में क्रमशः पद्म और चक्र होना चाहिए। सूर्य के रथ में केवल दो अश्वों की आकृतियाँ ही अंकित है। स्थान और आलेखन-शैली से ऐसा प्रतीत होता है कि रथ में सात अश्वों का अंकन निश्चितरूपेण नहीं रहा होगा। सूर्यनारायण के सिर पर किरीट मुकुट तथा कंधे पर यज्ञोपवीत का आलेखन है। अलंकरण सामान्य स्तर के हैं। पद्मासन में बैठे सूर्य के वक्षस्थल पर कवच के अंकन का अभाव है। पैरों में बूट भी नहीं है। किसी अन्य परिचायक या परिचारिका की मूर्ति का भी शिल्पांकन नहीं किया गया है। शंख और चक्र का यही आयुध-क्रम श्रीकृष्ण के हाथों में भी होता है, लेकिन गदा का अभाव है। सूर्य के सारथी अरुण का अंकन भी इस प्रतिमा में नहीं मिलता, अतः इसे सारथी श्रीकृष्ण कहे जाने की भी सम्भावना की जा सकती है।

समस्त प्रतिमाओं में कुछ बातें विशेष रूप से आकर्षित करती हैं। सुन्दर मुखाकृति पुष्पों, वस्त्रों एवं आभूषणों का सुंदर अंकन, सुगठित शरीराकृति एवं मुख पर शान्ति का भाव दृष्टिगोचर होता है। समस्त सूर्य-प्रतिमाएँ दो प्रतिमाओं को छोड़कर कवच, कुण्डल, मुकुटधारी हैं। खड़ी समस्त मूर्तियों में उपानयन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। पद्मासनाकृति में उपानयन नज़र नहीं आते हैं, क्योंकि योग करते समय जूते धारण नहीं किए जाते थे।

सन्दर्भ :

1. ऋग्वेद, 5.81.4
2. वही, 1.115.1
3. वही, 7.77.3, 6.51.1, 1.115.1
4. वही, 1.164
5. वही, 1.164
6. वही, 1.115.1
7. वही, 7.77.3
8. कॉर्पस ईस्क्रिप्शन्स इण्डिकेरम, वॉल्यूम 2, पृ० 80

9. ग्वालियर आर्कियोलॉजी : ए रिपोर्ट, 1977, पृ० 4
10. अग्रवाल समाज सिंहस्थ स्मारिका, 1980, 'उज्जयिनी' शीर्षक लेख
11. मालवा की परमारकालीन कला, पृ० 132-133 एवं गर्दे, एम०बी०, कल्चरल हेरीटेज ऑफ़ मध्य भारत, पृ० 106
12. इस संग्रहालय की सूर्य-प्रतिमाओं को पुरातत्त्व एवं संग्रहालय, भोपाल 1991 में प्रकाशित किया गया
13. वही
14. बिड़ला संग्रहालय, भोपाल
15. पुरातत्त्व संग्रहालय, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन की विवरणिका, 1988
16. श्री राजाराम सिंह, संग्रहालय, राज्य संग्रहालय भोपाल से प्राप्त जानकारी के आधार पर
17. हेरीटेज ऑफ़ शाजापुर, (सं०) रायजादा, चौहान एवं मिश्र, दिल्ली, 1992
18. आर्ट, आर्कियोलॉजी एण्ड हिस्ट्री ऑफ़ रतलाम, (सं०) रायजादा, उपाध्याय एवं मिश्र, दिल्ली, 1992
19. श्री प्रकाश परांजपे, संग्रहालय, केन्द्रीय संग्रहालय, इंदौर से प्राप्त जानकारी के आधार पर
20. वही
21. केन्द्रीय संग्रहालय, इंदौर की शिव-प्रतिमाओं का पुरातत्त्व एवं संग्रहालय, 1980 में प्रकाशित किया गया, पृ० 55
22. केन्द्रीय संग्रहालय इंदौर की वैष्णव प्रतिमाएं एवं कलाकृतियाँ, 1991 में आयुक्त पुरातत्त्व एवं संग्रहालय भोपाल, म०प्र० द्वारा प्रकाशित, पृ० 28
23. वैष्णव प्रतिमाएँ एवं कलाकृतियाँ, पृ० 28
24. वही, पृ० 37
25. वही, पृ० 38





11.

बुन्देलखण्ड के सूर्य-मन्दिर : उपासना के केन्द्र

अश्विनी चौहान

शोध-छात्र, इतिहास, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

मन्दिर मुख्यतः धार्मिक वास्तु है जिसे हम भारतीय वास्तु की एकमात्र विभूति कहें, तो भी अत्युक्ति न होगी। इसमें हमें भारतीय वास्तुकला का सर्वोत्कृष्ट विकास देखने को मिलता है। इसका विकास भारत के किसी विशेष धर्म से नहीं बरन मनुष्य में आकृति-पूजा की भावना से हुआ है। मनुष्य द्वारा ईश्वरोपासना हेतु जो मूर्ति अथवा लांछन बनाए गए, इन निर्मित कलाकृतियों को पवित्र भवनों में स्थापित करने के उद्देश्यस्वरूप मन्दिर-निर्माण परम्परा का उद्भव हुआ। रूप, आकार, सामग्री का उपभोग एवं धार्मिक भावना इनमें आई विभिन्नता के कारण थे। कारण चाहें जो भी रहे हों, यह तो निर्विवाद है कि भारत के सभी मतों को माननेवाले तथा अनेक मतावलम्बियों ने मन्दिर-निर्माण की परम्परा को अपनाया है। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक राजपूतकालीन वास्तुकला का केन्द्रीय आकर्षण मन्दिर वास्तु ही बना रहा। मन्दिरों को कभी देवालय, देवल, देवायतन नामों से जाना गया तो कभी इन्हें विमान तथा रथ नाम से पुकारा गया। कई बार सम्पूर्ण मन्दिर को अनेक पहियों से युक्त रथ आकार दे दिया गया जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण कोणार्क का सूर्य मन्दिर है।

आकाश में विराजमान ज्योतिषुज के रूप में सूर्य-पूजा का प्रचलन भारतीय समाज में अनादि काल से चला आ रहा है। सूर्य पूजा मानव की उस असहनीय, असमर्थ व अनियन्त्रणवाली स्थिति का परिचायक है। जब मानव बिजली चमकना सूर्य की तपन या

शीतलता को देखकर आश्चर्यचकित हुआ, किन्तु वह इन्हें नियन्त्रित नहीं कर सका अपितु वह इनकी उपासना से इनके प्रकोप को कम करने का प्रयास करने लगा अर्थात् मानव द्वारा प्रकृति का दैवीकरण किया गया।

इसके प्रमाण हमें विभिन्न शैलचित्रों में उगते सूर्य के रूप में दिखाई देते हैं। जब 1921 में हड़प्पा-सभ्यता का उत्खनन-कार्य प्रारम्भ हुआ तो सूर्याराधना के अनेक प्रमाण सामने आए। सूर्य को जगत् की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए ऋग्वेद में 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' तक कह डाला। यही नहीं, ऋग्वेद में जिस गायत्री मंत्र का उल्लेख किया गया है, वह सूर्य के प्रकाशित पुञ्ज का ही प्रतीक है जिसमें हमारे अंदर व्याप्त अंधकार या अज्ञान को दूर करने का आह्वान किया गया है। वेदों में सूर्य के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया गया है, जैसे— सविता, मित्र, भग, अर्यमन, पूषण, विवस्वत आदि। रामायण और महाभारत काल तक आते-आते सूर्य के महत्त्व और आराधना में उत्तरोत्तर वृद्धि देखने को मिलती है। रघुवंशियों का तो सूर्य प्रतीक-चिह्न ही बन गया। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सूर्य-प्रतिमा का प्राचीनतम स्पष्ट विवरण हमें वराहमिहिर की बृहत्संहिता में मिलता है। यहाँ पर उन्हें कुण्डल, हार, मुकुट से सुशोभित कमल द्युति और प्रसन्न मुखवाले सूर्य देव उदीच्यवेश कंचुक तथा अप्यंग धारण किए पैरों से लेकर वक्ष तक चोलक से ढके और हाथों में पद्म लिए हुए दिखाए गए हैं। गुप्तकाल के दौरान जब सूर्य की प्रतिमाओं को जनसामान्य द्वारा लोकप्रियता मिल रही थी, उसी समय बुन्देलखण्ड भी सूर्योपासना का केन्द्र बनता जा रहा था। वहाँ भी अनेक सूर्य-मन्दिरों का निर्माण कराया गया। ये मन्दिर नागर शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सन् 1984 के लगभग भारत में मात्र 140 सूर्य-मन्दिर के होने के प्रमाण मिलते हैं। बुन्देलखण्ड-स्थित खजुराहो के अनेक मन्दिर, जैसे— चित्रगुप्त, लक्ष्मण मन्दिर के अलावा संग्रहालयों में भी अनेक सूर्य-प्रतिमाएँ विराजित हैं। छोटी बड़ौनी में दतिया के जिला जनसम्पर्क अधिकारी के कार्यालय में भी सूर्य प्रतिमा है। शिवपुरी जिले के टोंगरा में दो तथा सेसई में एक सूर्य-मन्दिर होने के प्रमाण मिलते हैं। भिण्ड जिले के भरौली, जबलपुर में पनागर में क्रमशः सूर्य-मन्दिर तथा विशाल प्रतिमा के उल्लेख मिलते हैं। सूर्य की कुछ दुर्लभ प्रतिमाएँ हमें नृसिंहपुर में बरहटा तथा गुना में सर्करा नामक स्थान से प्राप्त हुई हैं। छतरपुर नौगाँव के निकट अचटट, सागर के रहली, टीकमगढ़ में ऊमरी तथा मढ़खेड़ा आदि स्थानों पर स्थित सूर्य-मन्दिर बुन्देलखण्ड में सूर्योपासना के मुख्य केन्द्र रहे हैं। सूर्य-प्रतिमाओं के साथ-साथ सूर्य-मन्दिर में सूर्य-चक्र के विद्यमान होने के प्रमाण हमें गुन-गौरी कुण्डेश्वर तथा शक्ति भैरो नामक स्थानों पर मिले हैं। उत्तरप्रदेशीय बुन्देलखण्ड के भूभाग में स्थित ललितपुर जिले के बुधनी ग्राम में एक विशाल सूर्य मन्दिर के भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं। हमीरपुर के रहलिया में भी सागर तट पर एक सूर्य मन्दिर स्थापित है। बाँदा के कालिंजर दुर्ग में भी सूर्य की प्राचीनतम प्रतिमा के दर्शन होते हैं। आज भी हम महात्मा गाँधी हिंदी संग्रहालय, जिला जालौन में सूर्य-प्रतिमा के दर्शन कर सकते हैं। उक्त विवरण के आधार पर हम प्रामाणिक तौर पर कह सकते हैं कि

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में 16 सूर्य-मन्दिर विद्यमान हैं और सूर्य-प्रतिमाओं का तो बाहुल्य है यह कि सम्भव है कि अनेक विशाल और उत्कृष्ट मन्दिर काल के विनाश-चक्र से ढह गए हों। कारण चाहे जो भी रहे हों, बुन्देलखण्ड में असंख्य सूर्य-प्रतिमाओं का मिलना और विशाल मन्दिरों का पाया जाना यह तो निश्चित तौर पर सिद्ध करता है कि बुन्देलखण्ड में स्थित सूर्य-मन्दिर सूर्योपासना और आराधना के मुख्य केन्द्र रहे।

प्रायः बुन्देलखण्ड में विद्यमान सभी मन्दिर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, किन्तु इन मन्दिरों में छतरपुर और टीकमगढ़ में स्थित सूर्य मन्दिर अपनी वास्तुकला के कारण उल्लेखनीय है इसका संक्षिप्त विवरण अपने शोध में देना आवश्यक समझती हूँ।

छतरपुर का सूर्य-मन्दिर— छतरपुर शहर में बस स्टैण्ड के करीब आधा कि.मी. दूर चेतगिरी कॉलोनी में अत्यधिक प्राचीन सूर्य मन्दिर है जिसके वास्तुशास्त्र और निर्माण-सामग्री के आधार पर गुप्तकालीन होने का आभास होता है। यद्यपि आज यह मन्दिर पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं है। धनी आबादी के बीच आज यह उपेक्षित पड़ा है।

मऊसहनिया— छतरपुर से झाँसी मार्ग पर लगभग 17 किमी० दूर स्थित यह सूर्य मन्दिर इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखे हुए है। जगतसागर के किनारे बने इस प्राचीन सूर्य मन्दिर के बारे में कहा जाता है कि इसका निर्माण लगभग उसी समय हुआ होगा जब कोणार्क के सूर्य मन्दिर का निर्माण हुआ था।

मढखेरा का सूर्य मन्दिर— टीकमगढ़ से 20 किमी० दूर मोहनगढ़ मार्ग पर ग्राम मढखेरा में यह मन्दिर विराजमान है। यह अपेक्षाकृत कॉफी विशाल है तथा ऊपरी के मन्दिर की अपेक्षा विख्यात और सर्वज्ञात रहा है। सूर्यदेव की डेढ़ मीटर ऊँची प्रतिमा का परिवार विराजमान है। यह सूर्य मन्दिर अपनी वास्तुशिल्प और स्थापत्य के कारण प्रतिहारयुगीन कला के उत्कृष्ट प्रमाण है। ऐतिहासिक शोध के आधार पर विद्वानों ने ऊपरी और मढखेरा के इन मन्दिरों के निर्माण की तिथि क्रमशः 825 ई० एवं 850 ई० स्वीकार की है। इनके निर्माण के दौरान बुन्देलखण्ड प्रतिहारों के अधीन था, चन्देल इनके सामन्त थे। ये शासक धार्मिक प्रवृत्ति के ईश्वरभक्त थे। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ये अपने नामों के आगे अपने इष्ट देवता का नाम जोड़ते थे। सूर्यभक्त शासकों के नाम के आगे हमें 'आदित्य भक्त' शब्द जुड़ा मिलता है, जिसका प्रमाण हमें प्रतिहार वंश के संस्थापक नागभट्ट द्वितीय के पुत्र रामभट्ट देव के नाम से पूर्व परमादित्य भक्तों के जुड़ा होने से मिलता है।

ऊमरी का सूर्य मन्दिर— टीकमगढ़ से 24 किमी० दूर ककरनाहा मार्ग पर ऊमरी ग्राम में स्थित सात घोड़ेवाले रथ पर आरूढ़ सूर्य मन्दिर पूर्व की ओर मुख किए हुए अपनी लालिमा बिखेरता है। इस मन्दिर में मण्डप, अंतराल और गर्भगृह प्रमुख है। वर्गाकार गर्भ में सिंहासन पर सूर्यदेव की प्रतिमा को स्थापित किया गया है। साथ ही मन्दिर की बाहरी दीवारों पर भी तीन सुन्दर सूर्य-प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं।

परिक्रमा-पथ की बाहरी दीवारों पर स्थित सूर्य-प्रतिमाएँ क्रमशः 'बाल रवि', ऊषाकाल को 'युवा सूर्य', प्रखरता दोपहरी और 'वृद्ध सूर्य' सूर्य की साँझ बेला को रेखांकित करती हैं। ये भावपूर्ण प्रतिमाएँ कोणार्क के सूर्य मन्दिर की स्मृति कराती हैं। हल्के गुलाबी पाषाण से निर्मित इस मन्दिर पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो कमल-सा प्रतीत होता है और अपना सौन्दर्य बिखेरता है।

सन्दर्भ :

1. रोलैण्ड बेंजामिन, *दी आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ़ इण्डिया*, पृ० 273-741
2. ब्राऊन, पर्सी, *इण्डियन आर्किटेक्चर बुद्धिस्ट एण्ड हिंदू*, पृ० 63
3. पाण्डेय, एल०पी०, *सन वर्शिप इन एनशिअन्ट इण्डिया*, पृ० 4, मोतीलाल बनारसीदास, देहली, 1971
4. *वही*, पृ० 165
5. निगम, एम०एल०, *कल्चरल हिस्ट्री ऑफ़ बुंदेलखण्ड*, पृ० 104, संदीप प्रकाशन, दिल्ली (1983)
6. *The History and culture of Indian people, The struggle for empire*, p.535
7. रायकवार, गिरिधारीलाल, *रेहली का सूर्य मन्दिर*, पृ० 1, संचालनालय पुरातत्त्व एवं संग्रहालय, मध्यप्रदेश, भोपाल (1984)
8. शाह, के०के०, *एसियंट बुंदेलखण्ड*, पृ० 61-62, ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1988
9. शर्मा, राजकुमार, *मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का सन्दर्भ ग्रंथ*, पृ० 357-59, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1976
10. तिवारी, एस०सी०, *बुंदेलखण्ड का पुरातत्त्व*, पृ० 104, राजकीय संग्रहालय, झाँसी, 1984
11. *मध्यप्रदेश साप्ताहिक*, झाँसी में प्रकाशित लेख : 'सूर्य मन्दिर के ढहते शिखरों की दास्तान', हरिविष्णु अवस्थी, पृ० 8-9, 04 अगस्त, 1996
12. *बुंदेलखण्ड का पुरातत्त्व*, पृ० 101-103
13. *एसियंट बुंदेलखण्ड*, पृ० 67-68
14. त्रिवेदी, सुधीर कुमार, *अमेरिकन ओरियंटल सीरिज*, 99.2, 1979 पृ० 211 तथा मध्यभारत की प्रतिहारकालीन कला एवं स्थापत्य, पृ० 50 एवं 55 पर उद्धृत, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1994
15. *मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का संदर्भ ग्रंथ*, पृ० 62
16. मिश्र, व्ही०वी०, *द गुर्जर प्रतिहार एण्ड देअर टाइम्स*, पृ० 106, एस० चाँद एण्ड कं०, नयी दिल्ली, 1966
17. त्रिवेदी, सुधीर कुमार, *स्थापत्य*, पृ० 14 जयपुर, 1994





12.

शहडोल का विराटेश्वर मन्दिर : एक ऐतिहासिक अध्ययन

दिनेश कुमार शाक्य

शोध-छात्र, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर

भा रत में राज्य की मूल आत्मा धर्म में निहित रही है, जिसके कारण भारतीय राजतंत्रीय व्यवस्था में धर्मगुरु का स्थान राज्य के प्रमुख से बड़ा होता था, जो राजा को निरंकुश एवं न्यायविरुद्ध होने पर निर्देशित भी करता था।

धर्म की सर्वोच्च स्थिति ही भारत में मन्दिर-निर्माण की परम्परा का मुख्य कारण थी। अतः ऐतिहासिक काल से ही भारत में मन्दिरों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। मध्यप्रदेश के शहडोल जिले में शहडोल रेलवे स्टेशन से शहडोल-रीवा मार्ग पर लगभग तीन किमी० दूरी पर विराटेश्वर का विराट् मन्दिर स्थित है। शहडोल का प्राचीन नाम सोहागपुर होने के कारण यह मन्दिर सोहागपुर-विराटेश्वर मन्दिर के नाम से भी प्रसिद्ध है।

यह मन्दिर पाषाण-निर्मित जगती पर निर्मित किया गया है। भूतल से जगती पर पहुँचने के लिए मन्दिर के सम्मुख भाग में सोपान बने हुए हैं। लंबवत् योजना में अधिष्ठान, जंघा, शिखर और क्षैतिज योजना में गर्भगृह अंतराल अर्धमण्डप तथा महामण्डप मन्दिर के प्रमुख भाग हैं। अधिष्ठान में नीचे से तीन मोलिंग है जो सपाट, कुमुद तथा घट है। इन मोलिंग के ऊपर के हीरक पैल से अलंकृत भाग के ऊपर दो सपाट, घट एवं कुमुद प्रकार की मोलिंग है। जंघा दो क्षैतिज आकार के बंधनों द्वारा तीन भागों में बँटी हुई है। हरेक बंधन में दो उपबंध हैं। जंघा के निचले दोनों भाग बड़े हैं, जंघा का ऊपरी भाग छोटा है। जंघा के उक्त तीनों हिस्सों

में देवी-देवताओं के साथ ब्यालों का भी अंकन शृंखलाबद्ध एवं सुव्यवस्थित रूप से किया गया है। बीच के रथ में प्रत्येक तरफ तीन-तीन देवकोष्ठ हैं। ऊपरी देवकोष्ठ में आसनस्थ अस्पष्ट देव-प्रतिमा है। इसके दायें ऊपरी हाथ में डमरू है। मध्य भाग के देवकोष्ठ खाली है। उत्तर ओर के मध्य रथ के निचले देवकोष्ठ में दसभुजी चामुण्डा देवी की प्रतिमा, ऊपरी देवीकोष्ठ में अस्पष्ट प्रतिमा तथा मध्य के देवकोष्ठ में स्थानक मुद्रा में चतुर्भुज शिव-प्रतिमा विद्यमान है। पश्चिमी ओर के बीच के देवकोष्ठ में अष्टभुजी योगीश्वर शिव-प्रतिमा तथा ऊपरी देवकोष्ठ में अस्पष्ट देव-प्रतिमा विद्यमान है। पश्चिमी ओर के मध्य रथ के निचले देवकोष्ठ में दसभुजी नटराज शिव की प्रतिमा स्थित है। जंघा के ऊपरी हिस्से में दो गहराइदार मोल्लिंग है, इनके ऊपर दो सपाट मोल्लिंग स्थित है। ये मोल्लिंग चन्द्रशाला अलंकरणों से सुसज्जित हैं। जंघा लंबवत् रूप से सात रथों में विभक्त है। हरेक रथ पर उरुशृंग एवं अंग शिखर मौजूद है। सभी शिखर 36 अंगशिखरों एवं उरुशृंग से युक्त हैं। कर्ण रथों पर भूमि-आमलक शैलीयुक्त अलंकरण है। मध्य रथ भूमिज शिखर शैली में आमलक का स्पर्श करता है। शिखर के ऊपरी भाग में आमलक के ऊपर कलश, आमलसारिका तथा चन्द्रिका है। शुक्रनासिका में तीन लम्बवत् पट्टिका एवं दो लघु शिखर विद्यमान हैं। इनके ऊपर 5-क्षैतिज आकार के बंध स्थित है। दक्षिण एवं उत्तर दिशा की ओर दो-दो देवकोष्ठ विद्यमान है। इन सभी देवकोष्ठों में शिव तथा दुर्गा की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। शुक्रनासिका के सर्वोच्च भाग में वृत्ताकार गवाक्ष के बीच भाग में ताण्डव नृत्य करते हुए भगवान् शिव की प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है।

मण्डप का माप 6.33X6.33 मीटर है। मन्दिर का मण्डप चौकोर है। यहाँ मण्डप ने महामण्डप का रूप धारण किया है। महामण्डप की छत आठ दोहरे कुण्य स्तम्भों पर आधारित है। स्तम्भों की पीठिका का माप 80X44सेमी० है। पीठिका के आधार पर चन्द्रशाला अलंकरणयुक्त कुमुद मोल्लिंग है। स्तम्भों के मध्य का भाग 30ग27 से.मी. तथा पीठिका से शीर्ष तक स्तम्भों की ऊंचाई 2.50मी. स्तम्भों के शीर्ष भाग पर मालाकर्म एवं पुष्प अलंकरण है। शीर्ष के ऊपर चपटी सपाट धरणी है। कुण्य स्तम्भों के दोनों ओर कुमुद अलंकरण लम्बवत् पंक्तिबद्ध रूप में स्थित है। महामण्डप का वितान अष्टकोणीय धरातलयुक्त है। वर्तमान में तीन कुण्य स्तम्भों के शीर्ष भाग पर नारी-प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। ये नारी-आकृतियाँ सम्भवतः शालभञ्जिका की रही होंगी। वितान का निर्माण एक के ऊपर एक वृत्तों की रचना से हुआ होगा, परन्तु नवनिर्मित वितान सपाट रूप में है, जो पुष्पकर्म अलंकरण से सुसज्जित है। महामण्डप की दीवार दो बंधनों द्वारा तीन भागों में विभक्त है। महामण्डप का बाह्य भाग मोल्लिंग एवं अलंकरणों से युक्त है।

महामण्डप के दक्षिणी ओर का प्रकोष्ठ आंशिक रूप से सुरक्षित है। इस प्रकोष्ठ के बाह्य भाग में अप्सरा एवं ब्याल आकृतियों से युक्त एक पैनल है। अप्सरा एवं ब्यालयुक्त पैनल के ऊपर रेखाकर्म एवं पिंजाकर्म अलंकरण है। प्रकोष्ठ कक्षासन के ऊपर स्तम्भ आधारित है। महामण्डप का उत्तरी प्रकोष्ठ नष्ट हो चुका है। सम्भवतः उत्तरी प्रकोष्ठ की योजना भी दक्षिणी

प्रकोष्ठ के समान ही रही होगी।

मन्दिर के द्वार का माप 1.86 X 0.97 मीटर है। यह द्वार शिल्पशास्त्र में वर्णित हस्तिनी द्वार की श्रेणी में रखा गया है। द्वार स्तम्भों में सात शाखाएँ हैं। पत्र शाखा, गंधर्व शाखा, रूपशाखिक, रूपशाखा, स्तम्भ शाखा, खल्व शाखा एवं सिंह शाखा द्वार स्तम्भों के निचले भागों में गंगा एवं यमुना नदीदेवियों का अपनी परिचारिकाओं सहित अंकन नारीरूप में किया गया है। साथ ही शिवगणों का भी अंकन किया गया है। गंगा एवं यमुना नदीदेवियों के हाथों में कलश एवं सिर के ऊपर नागफण का छत्र अंकित है। नदीदेवियाँ पारम्परिक अलंकरणों से सुसज्जित हैं। रूप स्तम्भ शाखा पाँच कोष्ठों में विभक्त है, जिनमें शिव, ब्रह्मा, सरस्वती आदि की प्रतिमाएँ विद्यमान हैं। सिरदल सात शाखाओं में विभक्त हैं। पत्र शाखा, विशाखा, मालाधार, छज्जा, रथिका, कण्ठा एवं उद्गम। ललाटबिम्ब पर अष्टभुजी नृत्यरत शिव-प्रतिमा को उत्कीर्ण किया गया है। दायीं छोर के प्रोजेक्टेड ब्रेकेट पर अष्टभुजी नृत्य करते हुए गणेशजी की प्रतिमा को उत्कीर्ण किया गया है। रथिका में दायीं ओर आसनस्थ ब्रह्मा तथा स्थानक मुद्रा में सरस्वती की प्रतिमा उत्कीर्ण है। रथिका की बायीं ओर के भाग में आसनस्थ विष्णु तथा स्थानक मुद्रा में लक्ष्मीजी का अंकन किया गया है। रथिका के उत्तरी किनारे पर गजासीन लक्ष्मी का अंकन किया गया है। उद्गम के अधि भाग में नवगृह को उत्कीर्ण किया गया है, तथा सर्वोच्च अधोभाग में सप्तमातृकाओं एवं शिव का अंकन किया गया है। अंतराल के दोनों छोरों पर कुण्ड स्तम्भ है जो कि महामण्डप के स्तम्भों के समान ही है। अंतराल का माप 2.65X2.55 मी० है।

गर्भगृह का माप 2.95X2.95मी० है। गर्भगृह का आकार चौकोर है। गर्भगृह के मध्य में अग्रहपट्ट पर शिवलिंग प्रतिष्ठित किया गया है। अग्रहपट्ट का धरातल प्रदक्षिणा-पथ के धरातल की तुलना में कुछ ऊँचा है। जल एवं दूध शिवलिंग पर भक्तों द्वारा चढ़ाया जाता है। गर्भगृह के चारों कोनों पर एक-एक कुण्ड स्तम्भ भी है। गर्भगृह का वितान आपस में सम्बद्ध चतुर्भुजों से निर्मित किया गया है।

उपर्युक्त विवेचना से बाद हम कह सकते हैं कि शहडोल का विराटेश्वर मन्दिर न केवल अपनी भव्यता के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि अपनी स्थापत्य के लिये भी एक विशिष्ट मन्दिर है। मन्दिर का योजन, रंग योजन तथा लम्बवत् योजना के कलचुरि-स्थापत्य के मापदण्डों के अनुरूप है। ऐतिहासिकता की दृष्टि से मन्दिर महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ :

1. कनिंघम, ए.क.आ.स.ई.रि. भाग 7, पृ.240-243
2. अली, रहमान, *आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ कलचुरिज*, 63-67
3. शर्मा, आर.के., *दी कलचुरिज एण्ड देअर टाइम*, पृ० 264-65
4. वही

5. स्वयं के सर्वेक्षण पर आधारित
6. वही
7. अली, रहमान, पूर्वोक्त, पृ.244
8. वही
9. वही
10. सक्सेना, चैतन्य स्वरूप, *रीवा संभाग के कलचुरिकालीन मन्दिर-स्थापत्य एवं मूर्तिकला का अध्ययन*
11. वही
12. वही





13.

परमारकालीन मन्दिरों से प्राप्त शिव-प्रतिमाएँ

प्रो० (डॉ०) आनन्द मिश्र

(कुलसचिव, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर)

शि

व की अनुग्रह-प्रतिमाओं में अर्जुनानुग्रह, विष्णुग्रह, चण्डुनुग्रह, नंदीनानुग्रह, विघ्नेश्वरनुग्रह, किरातार्जुन एवं रावणानुग्रह प्रतिमाओं की गणना की जाती है। रावणानुग्रह प्रतिमाओं में कैलाश पर शिव के समीप बैठी हुई पार्वती घबराकर शिव का आलिंगन कर लेती हैं। रावण अपने हाथों से कैलाश पर्वत को उठाने का प्रयास करता है। उस समय अनेक शिवगण भयभीत होकर भागने लगते हैं, रावण उन शिवगणों को पकड़कर रोक लेता है। ऐसा कथन है कि कुबेर का पराभव करने के पश्चात् जब रावण लंका लौट रहा था, उस समय उनका विमान कैलाश पर्वत से टकराकर रुक गया था। तभी उसने उस पर्वत को उखाड़ फेंकना चाहा। इस घटनाक्रम को शिव ने देख लिया और उसे दण्डित करने के बजाय अपना प्रिय भक्त समझकर क्षमा कर दिया। रावणानुग्रह प्रतिमाओं का विवरण *भागवतमहापुराण* एवं *विष्णुमहापुराण* में भी मिलता है। उपर्युक्त कथानक पर आधारित परमारकालीन 3 रावणानुग्रह प्रतिमाओं का विवरण निम्नानुसार है :

प्रथम सव्यललितासन चतुर्भुजी महेश्वर की बायीं जंघा पर विद भुजी उमा बैठी हैं। शिव का दाहिना पैर पद्म पुष्प पर है। महेश्वर की भुजाओं दक्षिणाग्रः क्रम अभयमुद्रा, त्रिशूल व सर्प धारण किये हैं। बायाँ निचला हाथ उमा की पीठ के दायें स्कन्ध पर तथा बायीं भुजा में दर्पण धारण किया है जो भग्न है। अलंकरणों में महेश्वर की सुसज्जित केशराशि जटामुकुट में

रही होगी। वर्तमान में महेश्वर का जटामुकुट भग्न हैं। कानों में चक्रकुण्डल गले में हार के साथ अन्य आभूषणों में कटिवलय, केयूर, यज्ञोपवीत, कटिसूत्र, अरुदाम और पादजालकों आदि अलंकरणों को धारण किये हैं। उमा ने अलंकृत जटामुकुट, कुण्डल, हार, तरल स्तनहार, केयूर वलय, कटिसूत्र तथा पादजलकों को धारण किए हैं। प्रतिमा वितार पर ही दाहिना और चतुर्भुजी ब्रह्मा सत्य ललितासन में आसनरत हैं, उनकी दाहिनी नीचे की भुजा भग्न है। ऊपर की भुजा में सूची और बायीं भुजा में क्रमशः पुस्तक एवं कमण्डलु का अंकन है। ब्रह्मा ने यथेष्ट अलंकरण धारण किया है। बायीं ओर चतुर्भुजी विष्णु पीठ पर सव्यललितासन में हैं। विष्णु की मुखाकृति भग्न है तथा वे अपनी भुजा में दक्षिण क्रम से अभय, गदा एवं बायीं ऊपरी भुजा भग्न है। सम्भवतः इस हाथ में चक्र रहा होगी, बायीं निचली भुजा में राख लिए है। विष्णु यथेष्ट अलंकरण धारण किये हैं। पादपीठ पर क्षीणकाय भृंगी ऋषि, शिव का वाहन नंदी एवं उमा के वाहन सिंह का भी आलेखन है। यहीं पर द्विभुजी गणेश एवं बायीं ओर मध्य में द्विभुजी कार्तिकेय अपने वाहन मोर के साथ सव्यललितासन में पदस्थ दिखाये गए हैं। दाहिनी ओर बायीं ओर शिवगण का अंकन किया गया है। पादपीठ पर दशानन रावण को अपनी दो भुजाओं में कैलाश को हिलाते हुए दिखाया गया है। भुजाओं में चंद्रहास, धनुष, ढाल, बाल, शिव द्वारा प्रयोग की हुई तलवार हैं। मुख का अंकन प्रायः पाँच मुखों से युक्त ही किया गया है। साथ ही कुछ शिवगणों का भी अंकन है, जिनमें से एक गण के पैर रावण पकड़े हुए है, सम्भवतः कैलाश पर्वत के कम्पन से भयभीत होकर वह गण भाग रहा होगा, जिसे रावण द्वारा रोका जा रहा है। पादपीठ पर ही दोनों ओर उपासकों को भी अंकित किया गया है।

कलापक्ष की दृष्टि से परमारकालीन यह कृति अत्यन्त मनोहारी व सजीव है। परमार शिल्पी ने उमा-महेश्वर प्रतिमा के निर्माण करने में प्रतिमाशास्त्रीय सिद्धान्तों का समुचित प्रयोग किया है। शिल्पी ने शिव की बलिष्ठ देहयष्टि एवं मानवीय नायका के रूप में पूर्ण नवयौवनयुक्त उमा का अंकन गोल चेहरा, धनुषाकार, ऊर्जा अर्ध-उन्मिलित नेत्र, हाथ एवं पैरों की ऊँगलियों का नुकीलापन आदि को संजीव रूप में अंकित करने का प्रयास किया है। भावपक्ष की दृष्टि से प्रतिमा उल्लेखनीय है। कैलाश पर्वत का रावण द्वारा कम्पन व उमा का भयभीत होना एवं शिव की ओर उनका झुकना आदि भाव परमारकालीन शिल्पी ने प्रतिमा में आलेखित करने का प्रयास किया है। परमारकालीन अन्य कलाकृतियों में प्रायः शिव को कैलाश पर्वत को अपने पैर के अंगूठे से दबाते हुए दर्शाया गया है, परन्तु इस कृति में ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है। पर्वत का अंकन भी इस कलाकृति में पर्वत-शृंखलाओं के रूप में न कर एक सम्राट् पट्टिका के रूप में किया गया है। उपर्युक्त तथ्यों के बावजूद भी प्रतिमा का अंत ब्रह्मपुराण के आधार पर किया गया हैं। सम्पूर्ण प्रतिमा कला एवं भावपक्ष की दृष्टि से परमार काल की एक कलात्मक अभिव्यक्ति कही जा सकती है। सचेत, बलुआ पत्थर पर निर्मित 97x46.5x21 से०मी० आकार प्रतिमा लगभग दशम शती की प्रतीत होती है।

शिव की रावणानुग्रह से संबंधित प्रतिमा अत्यधिक भग्न है। उमा और महेश्वर के

अधिकांश अंग भग्न है। आसन पर बैठे हुए वाहन नंदी एवं सिंह भी टूटा हुआ है। आसन पर नीचे कैलाश को उठाए हुए दशानन तथा भयभीत शिवगणों का अंकन है और उनके दोनों ओर क्रमशः शिवगण एवं परिचारिकाएँ सिंह व्याल बने हुए हैं। उमा और महेश्वर— दोनों की स्वतंत्र प्रभावली है। परिकर में दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु तथा बीच में लकुलीश शिव एवं मालाधारी यक्ष-गन्धर्वों का आलेख किया हुआ है। अलंकरण साधारण परन्तु, रमणीय रहा होगा किन्तु क्षरण के कारण इनकी विविधता कम हो गई है। बलुआ पत्थर पर निर्मित 85x60x25 से०मी० आकार की प्रतिमा लगभग 12वीं शती की प्रतीत होती है।

तृतीय प्रतिमा फलक में सम्मुख मुद्रा में बैठे हुए शिव-पार्वती की यह प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है। सुन्दर अलंकृत जटामुकुट धारण किये हुए महेश्वर के कानों में कुण्डल और गले में एकावली द्विवली धारण किये हुए महेश्वर की यह प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर है। चतुर्भुजी महेश्वर की तीन भुजाएँ कलाई से भग्न हैं। केवल महेश्वर की बायीं भुजा उमा की पीठ से जाते हुए स्तन के नीचे है। यज्ञोपवीत के साथ वनवीर धारण किये हुए कटीपट्ट भी सुन्दर अलंकृत हैं और पैरों में तोड़े व पायजेब हैं। महेश्वर के आसन के समीप नंदी का अंकन है। कुन्तलित सुन्दर केशराशि से सुज्जित उमा की यह प्रतिमा मनोहारी प्रतीत होती हैं। सिर पर करण्ड मुकुट धारण किये हुए कानों में ताक चक्र, गले में एकावली, द्विवली, वनवीर, स्तनों पर झूलता हुआ तरल हार है। कटिमेखला और पैरों में पायजेब हैं। उमा का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर है और बायाँ हाथ कलाई पर से भग्न है। उमा के आसन के समीप सिंह का अंकन है। आसन पर भयावृद्ध मुद्रा में कैलाश को दो हाथों से उठाये हुए दशानन का अंकन है। दशानन के कानों में ताटक चक्र है। शेष भुजाओं में चन्द्रहास, धनुष, ढाल, बाण, शिव द्वारा प्रदान की गई तलवार है, निचली भुजाओं से भागते हुए शिवगणों के पैरों को पकड़े हुए हैं। समीप में गणेश व कार्तिकेय का अंकन हैं। आस-पास त्रिशूलधारी एवं कपालदण्ड धारी शिवगण खड़े हुए अंकन है। वितान के मध्य पर वीणा धारण किए हुए शिव के दोनों ओर मालाधारी यक्ष व गन्धर्वों का अंकन है।





14.

गौरी सोमनाथ मन्दिर, ओंकारेश्वर

डॉ० रमण सोलंकी

ओं

कारेश्वर मध्यप्रदेश के पूर्वी निमाड़ जिले की खण्डवा तहसील में नर्मदा नदी के तट पर 22°14' उत्तरी अक्षांश तथा 76°01' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। जिला मुख्यालय खण्डवा से यह स्थल 75 कि०मी० उत्तर में तथा मुख्यालय इन्दौर से लगभग 77 कि०मी० की दूरी पर है। यहाँ से 11 कि०मी० दक्षिण-पश्चिम में ओंकारेश्वर रोड नामक रेलवे स्टेशन है, यह मीटर गेज लाइन अजमेर को खण्डवा से जोड़ता है। ओंकारेश्वर पहुँचने के लिये बस सेवा उपलब्ध रहती है।

गौरी सोमनाथ मन्दिर ओंकारेश्वर दीप के मध्य पहाड़ी पर स्थित है, पूर्वाभिमुख देवालय भूमिज शैली के हर्म्यतलक अष्टभद्र प्रकार का है। इसकी योजना सप्तरथी तारांकित है। तल-विन्यास में गर्भगृह एवं अन्तराल है, मण्डप की भी योजना थी, इसमें तीन ओर मुख मण्डप रहा होना प्रतीत होता है। मण्डप वर्तमान में भग्न प्रायः है। मण्डप एवं मुख मण्डप का अधिष्ठान ऊँचा था, इसमें तीन ओर सोपान बने हुए हैं। उत्सेध विन्यास में अधिष्ठान, वेदिबन्ध, वराण्डिका, जंघा एवं शिखर है, शैलीगत आधार पर जंघा एवं शिखर 16वीं शती का प्रतीत होता है। गर्भगृह के बाह्य विन्यास में अधिष्ठान में जाड्यकुम्भ, मसूरक, अंतर्पट्टिका एवं कणिका भाग है। अंतर्पट्टिका एवं कणिक के मध्य अलंकृत पट्टी है। वेदिबन्ध में विशाल कुम्भ, कलश, अंतर्पट्टिका तथा कपोतिका है। वराण्डिका के ऊपर कूट छाडय व जंघा है।

वेदिबन्ध के कुम्भ भाग पर नीचे ग्रास पट्टी मध्य में वर्गाकार लघु गवाक्ष में रत्नबन्ध एवं ज्यामितीय अलंकरण है। कुम्भ शीर्ष पर दातरणी एवं गगरक अलंकरण भी है। वराण्डिका के ऊपर का भाग शैलिंगत आधार पर 16वीं शती का निर्मित प्रतीत होता है। इसके परिकर्म में शिव के विभिन्न रूपों का शिल्पांकन रहा है। कूट स्तम्भों के सलिलान्तर में सुर-सुन्दरी या देवांगनाओं का आकर्षक आलेखन रहा है, जो अन्तराल की बाह्य भित्ति के सलिलान्तर पर उपलब्ध है। यह भाग प्रथम चरण का निर्मित है। वेदिबन्ध के कुम्भ भाग के मुख्य रथों पर लघु रथिकाओं में देवियों का ललितासन में शिल्पांकन है। उत्तरी ओर के रथ के कुम्भ भाग पर ब्राह्मी, पश्चिमी ओर दुर्गा, दक्षिणी ओर वैष्णवी का आकर्षक आलेखन है। अन्तराल के बाह्य विन्यास के बन्धन मालिका के कुछ स्तम्भों के मध्य शिव के विविध रूप तथा देवांगनाएँ शिल्पांकित हैं। इसमें क्रमशः पूर्वी ओर से नायिका, नर्तकी, ईशान शिव, नर्तकी, शिव नर्तकी, अग्नि, नायिका, शिव आदि का शिल्पांकन है। सम्भवतः अष्टदिक्पालों का भी अंकन था। जंघा के परिकर्म की रथिकाएँ रिक्त हैं, इसमें कोई भी प्रतिमा नहीं है। शुकनासा नीचे बिखरे हुए वास्तुखण्डों में विद्यमान है। इसमें षड्भुजी नटेश को शिल्पांकित किया गया है। गर्भगृह चौकोर है, इसकी माप 4.10X3.90 मीटर है, इसमें विशाल शिवलिंग योनिपीठ पर स्थापित है। शिवलिंग के रुद्रभाग की ऊँचाई 160 सेमी० है तथा इसकी परिधि 3.40 मीटर है। योनिपीठ का आकार 2.20X2.38 मीटर है। गर्भगृह में सामने की देवकुलिका में गौरी की स्थानक प्रतिमा स्थापित है। शिवलिंग, योनिपीठ, गौरी तथा विशाल नन्दी आदि काले चमकीले बेसाल्ट प्रस्तर पर निर्मित हैं।

प्रवेश-द्वार में सात शाखायें हैं—। इनमें प्रथम शाखाओं में नदीदेवी, द्वितीय में पद्मधारिणी, तृतीय स्तम्भ में शिव द्वारपाल, चतुर्थ शाखा में पुष्पधारिणी, पञ्चम में शालभञ्जिका, षष्ठ में कुम्भकन्या तथा सप्तम शाखा में कुबेर का शिल्पांकन है। पद्म वल्लरीयुक्त गवाक्षों के नीचे द्वार शाखाओं में शिल्पांकन है। दाहिनी ओर की स्तम्भ-शाखा में शिव द्वारपाल द्विभंग में अंकित हैं, उनकी भुजाओं में गदा, त्रिशूल, नाग तथा बीजपूरक है। बायीं ओर की स्तम्भ-शाखा के द्वारपाल की प्रथम भुजा वरद मुद्रा में तथा शेष त्रिशूल, खट्वांग एवं गदा है। ललाटबिम्ब पर गणेश शिल्पांकित हैं। उत्तरंग अलंकरणविहीन द्वितीय चरण का निर्मित है। अन्तराल की दोनों ओर की भित्तियों की देवकुलिकाओं में प्रतिमाओं का आलेख रहा होगा, जो अवशिष्ट नहीं है। अन्तराल की बाह्य भित्ति में बने हुए स्तम्भों, धरणियों तथा भारवाही कीचकों के अंकन से इसके आगे मण्डप की योजना स्पष्ट परिलक्षित होती है। मण्डप स्तम्भों पर आधारित रहा होगा। गर्भगृह के ठीक सामने नन्दी मण्डप है, इस पर विशाल नन्दी स्थापित है। मन्दिर के सामने प्रांगण में दाहिनी ओर विशालकाय गणेश तथा बायीं ओर हनुमान् की विशालकाय प्रतिमा पादपीठ पर स्थापित है। वर्तमान में गणेश की मूर्ति दो भागों में तथा हनुमान् की प्रतिमा भूमि पर पड़ी हुई है। सामने प्रांगण से बाहर मन्दिर के समकालीन दीपस्तम्भ था, इसके टुकड़े वहाँ पर विद्यमान हैं। मन्दिर का निर्माण तीन चरणों में हुआ प्रतीत

होता है। शैलीगत आधार पर मन्दिर मूलतः 11वीं शती का निर्मित प्रतीत है। वेदिबन्ध का विशाल कुंभ एवं उसका रत्नबन्ध तथा ज्यामितीय अलंकरण अमरेश्वर मन्दिर के अलंकरण के परिष्कृत रूप में है, इसके प्रतीत होता है कि, अमरेश्वर मन्दिर के पुनर्निर्माण तथा गौरी सोमनाथ मन्दिर के निर्माण का लगभग एक ही काल रहा होगा। उदयपुर-प्रशस्ति में भोज द्वारा सोमनाथ मन्दिर बनाए जाने का उल्लेख है। एच०व्ही० त्रिवेदी ने भोज द्वारा निर्मित मन्दिर को मालवा में होने की सम्भावना व्यक्त की है। मालवा में सोमनाथ नामक कोई भी मन्दिर अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। सम्भवतः भोज द्वारा निर्मित सोमनाथ ओंकार मांधाता का गौरी सोमनाथ मन्दिर है। शैलीगत आधार पर भी 11वीं शती निर्धारित किया जा सकता है। मन्दिर-प्रांगण में रखी हुई गणेश-प्रतिमा गर्भगृह की गौरी प्रतिमा तथा जंघा का शिल्पांकन भी शैलीगत आधार पर 11वीं शती का प्रतीत होता है। मन्दिर के समीप विद्यमान वास्तुखण्डों में मूल मन्दिर की शुकनासा भी इसमें अंकित नटराज की तिथि शैलीगत आधार पर 11वीं की प्रतीत होती है।

मन्दिर प्रथम चरण में भूमि शैली के अष्टभद्र प्रकार का तारांकित योजना में निर्मित किया गया है। वास्तुखण्डों में उपलब्ध शिखर के कूटस्तम्भ तथा शुकनासा आदि के शिखर के नागर कर्म की कल्पना साकार होती है। सम्भवतः सप्तभूमि शिखर रहा होगा। तल-विन्यास में गर्भगृह अन्तराल, मण्डप तथा तीन ओर मुखमण्डप की योजना थी। ओंकार मांधाता के अन्य मन्दिरों के समान यह मन्दिर भी भग्न हो गया, जिसमें वेदिबन्ध की कपोतिका के ऊपर वराण्डिका तक प्राचीन भाग अवशिष्ट रहा। शैलीगत आधार पर प्रतीत होता है कि 16वीं शती में इस मन्दिर के पुनर्निर्माण का प्रयास किया गया। इसमें प्राचीन अवशिष्ट भाग के ऊपर जंघा व शिखर बनाए गये, किन्तु मण्डप व मुखमण्डप बनाने का प्रयास नहीं किया गया। गर्भगृह का वितान, प्रवेश द्वार का उत्तरंग, अन्तराल का वितान, शिखर आदि द्वितीय चरण के हैं। यद्यपि 16वीं शती के शिल्पी ने मन्दिर में मूल वास्तुखण्डों को पुनः जोड़ने का सुन्दर प्रयास किया है, तथापि प्रस्तरभिन्नता, अलंकरण एवं नक्काशी आदि के आधार पर पुनर्निर्माण स्पष्ट देखा जा सकता है। शिखर को भूमिज शैली के अनेकामण्डक रूप देने का सुन्दर प्रयास किया गया है, इसमें ऊर्ध्व पंक्तियाँ बनी हुई हैं। शिखर का शीर्ष भाग अर्थात् तृतीय तल शैलीगत आधार पर मराठा काल में निर्मित हुआ प्रतीत होता है।





15.

ग्यारसपुर का बाजरा मठ

डॉ० हर्षवर्धन सिंह तोमर

क्षेत्रीय संगठन-सचिव, अ०भा०इ०सं०यो०, मध्य क्षेत्र

ग्या

रसपुर मध्यप्रदेश के विदिशा जिले के अंतर्गत है। यहाँ वैदिक, जैन तथा बौद्ध स्मारक भी हैं। हिंदुओं से संबंधित यहाँ हिण्डोला तोरण, बाजरामठ, अठखम्बा मन्दिर हैं। यहाँ जंगलों व ग्राम में इससे संबंधित जगह-जगह प्रतिमाएँ बिखरी हैं, किन्तु प्रमुख रूप से बाजरा मठ विशेष उल्लेखनीय है।

यह प्रतिहारकालीन मन्दिर 'ब्रज मठ' या 'बाजरा मठ' के नाम से जाना जाता है। यह मन्दिर गाँव के दक्षिण-पश्चिम दिशा में विदिशा मार्ग से लगभग 100 मीटर दूर स्थित है। यह माला देवी मन्दिर की पहाड़ी की तलहटी में बना है। इसका निर्माण लगभग 10वीं शती में हुआ था। यह मूलतः हिंदू-धर्म से संबंधित था, जो मन्दिर के मुख्य द्वार पर बना सूर्य, शिव और विष्णु की भग्न मूर्तियों व नदीदेवियों की भग्न प्रतिमाओं से ज्ञात होता है, किन्तु कालान्तर में यह जैन-मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। इसका मुख्य कारण मन्दिर के तीनों गर्भगृहों में तीर्थंकरों— आदिनाथ व पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ पद्मासन तथा कामोत्सर्ग मुद्रा में रखी गई हैं। मूर्तियों के पिछले भाग में पत्थरों को सटाकर दीवार खड़ी की गई है, जिससे ज्ञात होता है कि मूर्तियों को स्थापित करने के पूर्व पीछे की दीवारों को परिवर्तित किया गया था।

भू-विन्यास : यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है तथा लगभग 3 फुट ऊँचे एक साधारण चबूतरे पर बना है। भू-विन्यास में इसके मुखमण्डल, मण्डप, तीन लघु गर्भगृह हैं जो

एक ही पंक्ति में निर्मित हैं। वर्तमान में केवल मन्दिर का कुछ भाग व तीन गर्भगृह शेष हैं, जिनमें से सम्भवतः पहला शिव को दूसरा सूर्य तथा तीसरा विष्णु को समर्पित था। यह गर्भगृहों के द्वारों (ललाटबिम्ब) पर बनी शिव, सूर्य व विष्णु की भग्न मूर्तियों को देखने से ज्ञात होता है।

मन्दिर का अर्द्धविन्यास— मन्दिर के उर्ध्व विन्यास को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। मन्दिर का शिखर भूमि आम्लक के आधार पर 4 तलों का माना गया है। शिखर के प्रमुख भागों में बीजपूरक, इन्द्रिका आमलक ग्रीवा तथा शिखर है। शिखर के नीचे जंघा है, जिस पर एक पंक्ति में विभिन्न देवी-देवताओं की नृत्य मुद्रा में प्रतिमाएँ लगी हैं। वरण्डिका के नीचे मध्य में देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ परिचर या अप्सराओं सहित लगी हैं। तीनों गर्भगृहों में केवल नीचे के मुख्य गर्भगृह में ही रथोंवाला शिखर है, जबकि दोनों पार्श्वों के गर्भगृहों के ऊपर पीढ़ायुक्त लघु शिखर है जो वर्तमान में भग्नावस्था में दिखाई देता है। जंघा के नीचे पृष्ठ भाग पर विभिन्न प्रकार के मौलिङ्क्स हैं जो कि साधारण हैं। इनमें क्रमशः कूटयुक्त व्योत, ग्रास पट्टी, अन्तरपट्ट कलश कुम्भक, स्कन्ध व मिट्टा मौलिङ्क्स हैं। वरण्डिका के ऊपर कई पंक्तियों में कमलपुष्प का आलेखन है।

द्वार-शाखाएँ— यहाँ तीनों गर्भगृहों के प्रवेश-द्वार पर विभिन्न प्रकार के सप्तशाखाओं युक्त सुन्दर अलंकरण है जो पूरी तरह सुरक्षित है। सप्तशाखाओं में लता-पुष्प व मनुष्य मुख्य है। सप्तशाखाओं के निचले भाग में दोनों ओर क्रमशः गंगा व यमुना नदीदेवियाँ अपने-अपने वाहनों— कच्छप व मकर सहित विद्यमान हैं। वाहन वर्तमान में भग्नावस्था में हैं।

गर्भगृह-क्रमांक 1— यह मुख्य गर्भगृह (क्रमांक-2) के बायें भाग में स्थित है तथा गर्भगृह के द्वार पर बनी शिव की भग्न प्रतिमाओं से ज्ञात होता है कि यह शिव को समर्पित था। इसके सबसे ऊपरी भाग के बड़े आलिये बने हैं जिनके आस-पास स्त्री-परिचर या अप्सराएँ हैं जो द्विभंग में खड़ी हैं एवं शिव की पूजा करते हुए प्रदर्शित हैं। शिव जटामुकुट पहने तथा त्रिशूल आदि आयुधों से सज्जित हैं। किन्तु त्रिशूलवाला भाग भग्नावस्था में है। द्वार पर सप्तशाखाओं का अलंकरण है। गर्भगृह में एक बड़ी प्रतिमा आदिनाथ की है, जिसमें उन्हें पद्मासन व ध्यान मुद्रा में दिखा गया है। मन्दिर के भीतर का भाग बिना अलंकरण एकदम साधारण है जो मूल भागों में परिवर्तन का द्योतक है। द्वार पर सप्तशाखाओं में लतापत्र, जिनमें जानवर वनडय नृत्यरत है। तदर्थ स्तम्भ शाखा में चतुर्भुजी शिव द्विभंग मुद्रा में हैं जिनका चार बार अंकन प्रदेश के दोनों ओर की शाखाओं के निचले भाग में गंगा व यमुना है जिनके पैरों के पास उनके वाहन कूर्म व मकर स्थित हैं, जो वर्तमान में भग्नावस्था में हैं। इन नदीदेवियों के पीछे एक-एक स्त्री परिचर है, जिनके हाथों में छत्र हैं जो देवियों के मस्तक पर है। इनके साथ ही अन्य मानव व स्त्री परिचरों का अंकन बहुत ही सुन्दर है। ललाटबिम्ब के मध्य में शिव बने थे जो चतुर्भुजी हैं किन्तु पूर्णतः भग्न कर दिए गए हैं। प्रवेश-द्वार का पाषाण साधारण है, जिस पर किसी प्रकार का अंकन नहीं है। गर्भगृह के आगे चन्द्रशिला है, जो खराब अवस्था में है।

गर्भगृह-क्रमांक-2— यह प्रमुख व मध्य में स्थित है, जो सूर्य को समर्पित था, यह गर्भगृह के प्रवेश-द्वार के मध्य लगे पाषाण-खण्ड (ललाटबिम्ब) पर बनी सूर्य की हाथों में सनाल कमल लिए भूमि आमलक के नीचे बनी किरणाक्ष की प्रतिमा द्वादशादित्यों में एक ज्ञात होती है। किन्तु प्रतिमा के निचले भाग में सूर्य के वाहन सप्ताश्वों का स्पष्ट चित्रण है। ये सप्ताश्व निचले भाग में सुरक्षित हैं, किन्तु इनका ऊपरी भाग भग्न है। गर्भगृह के प्रवेश-द्वार के सबसे ऊपरवाले पाषाण खण्ड पर तीन आलियों में समभंग मुद्रा में सूर्य-प्रतिमाएँ बनीं हैं, सूर्य ने मुकुट, कुण्डल, कवच तथा घुटनों तक जूते पहने हैं, जो मूर्तिशिल्प पर विदेशी प्रभाव का द्योतक है। सूर्य-प्रतिमाओं के आसपास स्त्री परिचर द्विभंग में खड़ी है जो सूर्य की स्तुति करती प्रदर्शित है। गर्भगृह के प्रवेश-द्वार की सप्तशाखाओं में पुष्प, लतापुष्प, अलंकृत शाखा, जिनमें स्त्रियाँ नृत्यरत हैं तथा धनुष लिए हैं जो शायद उषा या प्रत्युषा हो सकती हैं। अर्द्धस्तम्भ शाखा में द्वादशादित्यों का अंकन है, जो सूर्य सप्तशाखाओं के निचले भाग में नदीदेवियों गंगा व यमुना हैं। अपने वाहनों कूर्म व मकर के साथ हैं। उनके पीछे स्त्री परिकर हैं जिनके पीछे द्विभंग में मानव परिचर खड़े हैं। मन्दिर का द्वार पाषाण साधारण है। द्वारशाखा के निचले हिस्से में अर्द्धचन्द्रिका लगी है जो साधारण है। इस गर्भगृह में आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित है, जिसकी लम्बाई लगभग 5 फुट है। इन्हें ध्यान मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है, पादपीठ पर सिंह का अंकन है। प्रतिमा के पीछे का हिस्सा अत्यन्त साधारण है जो परिवर्तन को दर्शाता है।

गर्भगृह-क्रमांक 3— यह गर्भगृह विष्णु को समर्पित है जो ललाटबिम्ब पर बनी विष्णु की चतुर्भुजी भग्न प्रतिमा से स्पष्ट होता है। यहाँ विष्णु की सभी प्रतिमाओं पर शेषनाग का अंकन है, जो बलराम का प्रतीक है। परन्तु यहाँ बलराम के आयुध हल आदि का अंकन यहीं देखने को मिलता है। द्वार के ऊपरी भाग में वास्तुखण्ड पर विष्णु की तीन प्रतिमाएँ हैं जो अर्द्धस्तम्भ आलियों में बनी हैं। विष्णु के हाथों के आसपास क्रमशः शंख, चक्र, गदा व पद्म हैं। मस्तक पर शेषनाग का छत्र है। पैरों के आसपास क्रमशः आयुध पुरुष, चक्रपुरुष, द्विभंग में खड़े हुए प्रदर्शित किए गए हैं। अन्य दोनों गर्भगृहों के समान ही इसमें सप्तशाखाएँ बनी हुई हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं— डायमण्ड- पुरुष से अलंकृत शाखा, लता-पत्र से जिस पर हाथी, पशु-पक्षियों का अलंकरण की शाखा, हार लिये मानव या विधाधर की शाखा, त्रिभंग में विष्णु परिकर सहित शाखा, नृत्य करते मनुष्य की शाखा तथा लतापुष्प शाखा। यहाँ विष्णु-परिचरों के मस्तक पर भी शेषनाग का छत्र है। शाखाओं के निचले भाग में नदीदेवियाँ अपने वाहनों सहित विद्यमान हैं जिनके छः छत्र लिए स्त्री परिचर व मानव परिचर भी खड़े हैं। द्वार पाषाण (ओजरशिला) साधारण हैं जिस पर किसी भी प्रकार का अंकन नहीं है। प्रवेश-द्वार के आगे एक चन्द्रशिला भी लगी हुई है।

गर्भगृह के आगे मण्डप बना हुआ है जो अधिकांश स्थानों से जर्जर हो रहा है। मध्य भागवाले गर्भगृह के सामने कुछ छत का भाग है जो अलंकृत है।

बाजरा मठ के स्तम्भ— मण्डप व गर्भगृह में कई प्रकार के अलंकृत स्तम्भ हैं, जिन

पर मन्दिर की छत टिकी है। इन स्तम्भों को रचना की दृष्टि से तीन भागों में बाँटा जा सकता है— 1. स्तम्भ का ऊपरी भाग, जिनमें चार मोर, भूला ब्रेकेट फिगर हैं, 2. जिन पर चार भारवाहक हैं और 3. जिनके चार हाथ हैं जो वास्तव में सहारा देने का कार्य करते हैं। इसके नीचे चन्द्रिका भाग है, जिसमें आमलक समान आलेखन है। स्तम्भ का मध्य भाग अष्टकोणियाँ हैं जिस पर कीर्तिमुख ज्यामितिक आलेखन बने हैं। इसी भाग पर ही चार हाथोंवाले देवता की प्रतिमा बनी है जो भग्न होने से स्पष्ट नहीं है। स्तम्भ का निचला भाग चौकोर है जिस पर मन्दिर समान ही कलश, कुम्भक, कर्णिका व मिट्टा मौलिंग्स बने हैं।

बाजरा मठ की प्रतिमाएँ

बाजरा मठ मूलतः वैष्णव मन्दिर था जो सूर्य को समर्पित था। यद्यपि गर्भगृह-क्रमांक 2 में शिव तथा गर्भगृह-क्रमांक 3 में विष्णु को मुख्य देवता के रूप में स्थापित किया गया था, तथापि कालान्तर में इस क्षेत्र में जैन मत के प्रभाव के कारण इस मन्दिर को जैन-मन्दिर में परिणत किये जाने का प्रयास किया गया। फलस्वरूप वर्तमान में तीनों गर्भगृहों में हिंदू-देवताओं की प्रतिमाओं के स्थान पर तीर्थकरों— पार्श्वनाथ और आदिनाथ की प्रतिमाएँ रखी हुई हैं।

जैन-प्रतिमाएँ— इन प्रतिमाओं में पार्श्वनाथ, आदिनाथ की प्रतिमाएँ प्रमुख हैं जो तीनों गर्भगृहों में रखी हुई हैं। गर्भगृह क्रमांक 1 में तीर्थकर की लगभग साढ़े तीन फीट लम्बी व 2 फुट चौड़ी प्रस्तर-प्रतिमा है जिसके शीश के नीचे जटाएँ दिखाई दे रही हैं जो कन्धों तक झूल रहीं हैं। प्रतिमा ध्यान मुद्रा में है। यह प्रतिमा प्रथम तीर्थकर आदिनाथ की हो सकती है। गर्भगृह-क्रमांक 2 में पादपीठ पर, जिसमें हाथी और व्याल का अंकन है, तीर्थकर-प्रतिमा है, जिसके सिर पर छत्र है। वस्तुतः इसके तीर्थकर को सिंहासनारूढ़ बताया गया है। प्रतिमा के दोनों ओर चँवरधारी हैं। कामोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थकर बने हैं। प्रतिमा में वक्षस्थल पर श्रीवत्स अंकित है। गर्भगृह-क्रमांक 3 में कामोत्सर्ग मुद्रा में तीर्थकर-प्रतिमा है, जिनके सिर पर छत्र है तथा दोनों ओर परिकर हैं। इसी गर्भगृह में पार्श्वनाथ तथा सुपाश्वनार्थ की भी प्रतिमाएँ हैं जिनके सिर पर क्रमशः 5 तथा 7 फणोंवाले सर्प का छत्र है। तीनों गर्भगृहों की मुख्य मूर्तियों के संबंध में पूरी तरह कुछ पता नहीं चल पाता। सम्भवतः तीनों गर्भगृहों की मुख्य प्रतिमाएँ आदिनाथ की ही हैं।

हिंदू-प्रतिमाएँ— मन्दिर की जंघा तथा वरण्डिका में अनेक देवी-देवताओं, अष्टदिक्पालों, शिव, सूर्य व विष्णु के अनेक रूपों का सुन्दर चित्रण हुआ है। बीच में देवियों तथा नृत्यांगनों की सुन्दर प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर के पूर्वी भाग में अष्टदिक्पालों में प्रमुख इन्द्र की प्रतिमा है। यहाँ अष्टदिक्पालों का विशेष रूप से अंकन हुआ है। इन्द्र की प्रतिमा पूर्वाभिमुख है जो त्रिभंगी है। सिर पर मुकुट से तथा चारों भुजाओं में से एक में वज्र है। शेष आयुध भग्न हैं। नीचे इनका वाहन ऐरावत दिखाई दे रहा है।

मन्दिर की आग्नेय दिशा में दिशा के प्रमुख देवता अग्नि का अंकन हुआ है। यद्यपि

मूर्ति पूरी तरह भग्न है, किन्तु सिर के ऊपर बने तेजपुञ्ज से ज्ञात होता है कि यह अग्नि की प्रतिमा है। प्रतिमा का एक हाथ वरद मुद्रा में है, शेष तीन हाथ भग्न हैं।

दक्षिण दिशा में यम की अस्पष्ट सी प्रतिमा है, जो अधिकांशतः भग्न है। प्रतिमा के नीचे भैसे के समान कोई आकृति दिख रही है जो वाहन हो सकता है। इस आधार पर प्रतिमा को इस दिशा का स्वामी यम माना जा सकता है। गर्भगृह के ठीक पीछेवाले भाग में पश्चिमी दिशा में वरुण की प्रतिमा है। प्रतिमा का केवल धड़ शेष है, अतः इसकी पहचान नहीं हो सकती है, किन्तु दिशा की स्थिति के अनुसार यह इस दिशा के स्वामी वरुण की हो सकती है। पश्चिमोत्तर भाग में वायु की प्रतिमा है, जो द्विभंग है। प्रतिमा के पास वाहन हिरण जैसी आकृति दिखाई दे रही है। चूँकि यह प्रतिमा भी भग्न है, अतः वाहन हिरण के आधार पर ही इसे वायु माना जा रहा है। ईशान कोण में एक अस्पष्ट प्रतिमा है जो अधिकांशतः भग्न है। यह शिव के रूप में ईशान की प्रतिमा हो सकती है।

जंघा भाग व वरणिङ्का की अन्य प्रतिमाएँ— अष्टदिक्पालों के अतिरिक्त अन्य प्रमुख देवताओं का भी परिकर की पंक्तियों में सुन्दर चित्रण हुआ है।

1. नृसिंह— मन्दिर के दक्षिणी भाग में नृसिंहावतार का सुन्दर अंकन है। प्रतिमा ने अपनी जंघा पर हिरण्यकश्यप को लिटाया हुआ है तथा दोनों हाथों से उसका पेट चीरते हुए प्रदर्शित है। नीचे भक्त अञ्जलि मुद्रा में है।

2. चामुण्डा— मन्दिर की दक्षिणी जंघा पर चामुण्डा की प्रतिमा है, जिसके चारों हाथ भग्न हैं। प्रतिमा अतिभंग है, सिर का भाग भग्न है, उदर भाग में वृश्चिक दिखाई दे रहा है तथा नीचे शव पुरुष है, जिससे यह प्रतिमा चामुण्डा की प्रतीत होती है।

3. सूर्य— दक्षिणी भाग में ही समभंग में खड़ी सूर्य-प्रतिमा है। प्रतिमा के चारों हाथ भग्न हैं। सूर्य जनेऊ पहने हैं जो अलंकृत है। एकावली, धौतवस्त्र व जूते धारण किये हुए हैं। पैरों के पास परिकर दण्डी व पिंगल हैं जिनके हाथों में दण्ड व कमल है।

4. बलराम— मन्दिर के पश्चिमी भाग में ही बलराम की हल लिये हुए प्रतिमा है। चतुर्भुजी प्रतिमा हल, गदा, श्रीफल व वरद मुद्रा में है। प्रतिमा द्विभंग में, सर पर पाँच फणवाले सर्प हैं। बलराम को शेषनाग का अवतार माना गया है।

5. वराहावतार— मन्दिर की पश्चिमी जंघा में विष्णु के वराहावतार की सुन्दर प्रतिमा है। प्रतिमा को प्रत्यालीढ़ मुद्रा में पृथिवी पर उद्धार करते हुए दिखाया गया है। हाथों में चक्र, गदा, आयुध दिखाई दे रहे हैं।

6. नटराज— मन्दिर के पश्चिम भाग में वरणिङ्का भाग में नृत्यरत शिव (नटराज) की प्रतिमा है। उनके अष्टभुजी हाथों में त्रिशूल, गदा व वरद मुद्रा में है।

7. योगेश्वर विष्णु— पश्चिमी भाग में वरणिङ्का के मध्य विष्णु की चतुर्भुजी

पद्मासन व ध्यान मुद्रा में बैठी प्रतिमा है। विष्णु ने किरीट, मुकुट एकावली धारण किया है। ऊपरी भाग में विधाधर उड़ रहे हैं, पैरों के पास भक्त अञ्जलि मुद्रा में है।

8. अर्द्धनारीश्वर : यह बाजरामठ की विलक्षण प्रतिमा है जो पश्चिमी जंघा भाग में है। प्रतिमा में अर्द्धनारीश्वर का स्पष्ट ओर अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। प्रतिमा के हाथ भग्न हैं। नीचे अस्पष्ट रूप से बायीं और सिंह तथा दाहिनी ओर नन्दी वाहन की आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं।

9. इन्द्राणी : पश्चिमी जंघा भाग में देवी की प्रतिमा है जो अत्यधिक भग्न है। प्रतिमा ने वरण्ड मुकुट, एकावली, कमरबंध व उरुदान पहन रखा है। नीचे गज का अंकन है जिससे ये देवी इन्द्राणी प्रतीत होती हैं।

10. वाराही : पश्चिमी जंघा भाग में ही एक अस्पष्ट तथा भग्न देवी-प्रतिमा है। प्रतिमा का सिर आगे से पूरी तरह भग्न है, पीछे बालों की लटें दृष्टव्य है। देवी के एक हाथ में मछली तथा एक हाथ में कलश है। शेष हाथों में परशु व दूसरे में अस्पष्ट आयुध है। एकावली पहने यह प्रतिमा कुछ विशेष प्रकार की है। इसके नीचे भैसे-जैसी आकृति दिखाई दे रही है, केशों की लटों की स्थिति तथा मछली के कारण यह प्रतिमा वाराही की मानी जा सकती है।

11. त्रिपुरान्तक शिव : यह पश्चिमी जंघा भाग में शिव की विलक्षण प्रतिमा है। इसी प्रकार की बड़ी प्रतिमा भोपाल स्थित राज्य पुरातत्व संग्रहालय में प्रदर्शित है। प्रतिमा में शिव को रथ पर बैठे युद्धरत दिखाया गया है। शिव की चार भुजाओं में एक में धनुष, दूसरे में बाण है, तथा ऊपर मुँह किये वे अतिभंग मुद्रा में त्रिपुर नामक, राक्षस का वध कर रहे हैं। सिर के किनारे पर महल-जैसी आकृति है। प्रतिमा में गतिशीलता का आभास होता है। प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से भी यह विशेष है।

12. कुबेर : मन्दिर के उत्तरी भाग में कुबेर की प्रतिमा है जिनके एक हाथ में धन की थैली, शेष हाथ भग्न है। नीचे मनुष्य दिखाई दे रहा है।

13. गणेश : ऊपरी भाग में वरण्डिका में द्विभंग में गणेश-प्रतिमा है। इनके एक हाथ में लड्डू-जैसी रचना है। नीचे उनका वाहन मूषक दिख रहा है।

14. ब्रह्माणी : उत्तरी भाग में जंघा में ब्रह्माणी की त्रिमुखी मातृका ब्रह्माणी की प्रतिमा है जो अतिभंग में नृत्यरत है। हाथों में आयुध भग्न हैं। नीचे वाहन हंस दिखाई दे रहा है। पैरों के पास एक मानव वेणु वादन कर रहा है।

15. कार्तिकेय : उत्तरी भाग में कार्तिकेय की मूर्ति है, जो द्विभंग में खड़े हैं। तीन मुख तथा अष्टभुजाओंवाले कार्तिकेय के हाथ भग्न हैं। पैरों के पास वाहन मयूर देवता की दृष्टि से किए दिखाई दे रहा है। पैरों के पास भक्त स्तुति मुद्रा में है। ऊपर दोनों कोनों पर हार लिए विधाधर उड़ रहे हैं।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त अनेक देवियाँ, नृत्यरत अप्सराओं, नटराज व सूर्य की प्रतिमाएँ जंघा व वरण्डिका भाग में भग्नावस्था में हैं।

16. योगी-शिव : बाजिरामठ से लगभग 100 मीटर पश्चिम में एकान्त स्थान पर एक चबूतरे के पास लगभग एक मीटर लम्बी तथा 10 इंच मोटाई वाली प्रस्तर शिला पर सम्भवतः योगी शिव की प्रतिमा है। यह प्रतिमा मिट्टी में आधी धँसी हुई थी जिसे सावधानीपूर्वक मिट्टी हटाकर ऊपर लाया गया है। स्वच्छ करने के उपरान्त यह स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है कि योगी जो सम्भवतः शिव हैं, उत्कटासन में बैठे हैं। प्रतिमा द्विभंग है, कोहनी के नीचे के हाथ भग्न है। प्रतिमा ने द्विस्तरीय जटामुकुट धारण किया हुआ है। सिर के ऊपरी भाग में दोनों ओर विद्याधर माला लिये हैं, जिससे यह प्रतिमा मुख्य देवता की सिद्ध होती है। पादपीठ पर नीचे दोनों ओर एक-एक भक्त है। प्रतिमा के गले में जनेऊ है। उत्कटासन तथा विशेष मुद्रा के कारण यह प्रतिमा विशेष प्रकार की है। विदिशा से प्राप्त योगनारायण की प्रतिमा, जो वर्तमान में बिड़ला संग्रहालय में रखी है, से साम्य के कारण भी यह विशेष प्रतिमा है।





16.

चिखल्दा का पाशुपत शिव-मन्दिर : पशुपतेश्वर

डॉ० पुष्पलता खरे

प्राध्यापक, इतिहास, शहीद भीमानायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बड़वानी

नर्मदा-तट के ग्राम सदैव से शैव साधना के केन्द्र रहे हैं। नर्मदा तट पर अनेक शिव मन्दिर मिलते हैं इन्हीं में से एक होलकर राज्य के पुराने परगने कोठड़ा¹ में स्थित चिखल्दा² ग्राम का पाशुपत शिव-मन्दिर है। यह मन्दिर शैव धर्म के पाशुपत सम्प्रदाय के अनुगामियों का है। पाशुपत सम्प्रदाय की गुरु-शिष्य परम्परा बृहत् थी। ये वस्त्र धारण नहीं करने थे तथा तंत्र-मंत्र में इन्हें विशेष विश्वास था। विवाह वर्ज्य था तथा मन्दिर के पास ही मठ होता था जहाँ रहकर ये साधना करते थे।

यहाँ के मठाधीश गोस्वामी या गोसाईं थे जो अपने नाम के अंत में 'गीर' लगाते थे। ये सिद्ध तांत्रिक थे। किंवदन्ती है कि एक बार यहाँ के महन्त को यज्ञ करते समय घी कम पड़ गया तब घी की आपूर्ति के लिये चिन्तित शिष्यों को महन्त ने नर्मदा नदी से पात्रों में जल लाने को कहा। जब शिष्य जलभरे पात्र लेकर मठ में पहुँचे तो उन्होंने पाया कि जल घी के रूप में परिवर्तित हो गया है। निश्चित ही महन्त की तंत्र-मंत्र की सिद्धि के कारण यह सम्भव हुआ होगा।³

पशुपतेश्वर शिव मन्दिर मुख्यतः नागर शैली में निर्मित है। यह मन्दिर पश्चिमाभिमुखी है जो प्रस्तर से निर्मित है। यह एक ऊँचे अधिष्ठान पर स्थित है, जिसके ऊपर 72 सेमी० ऊँचाई का कंगूरों द्वारा अलंकृत पीठ है। इस पीठ पर मन्दिर स्थित है। मन्दिर में

प्रवेश करने के लिये वर्तमान में कोई सोपान-शृंखला नहीं है व इसी तरह मन्दिर के चारों ओर परकोटा भी नहीं है।

तलछन्द विन्यास की दृष्टि से मन्दिर को मुखमण्डप व गर्भगृह में विभाजित किया जा सकता है। ऊर्ध्वछन्द विन्यास की दृष्टि से इसमें अधिष्ठान, पीठ, जंघा, वरण्डिका तथा शिखर मुख्य है।

मुखमण्डप में प्रवेश के लिये 1.75 मीटर लम्बे व 80 सेमी० चौड़े तीन समान आकार के द्वार हैं। प्रत्येक प्रवेश द्वार में ऊपर सात कंगूरे हैं। मध्य के प्रवेश द्वार की दाहिनी ओर विघ्नविनाशक गणपति की दक्षिणावर्ती सूंडवाली प्रतिमा है। इसमें गणपति सुखासन में बैठे हैं तथा उनके चार हाथ हैं। इनमें दाहिने ऊपर व नीचे के हाथों में क्रमशः फरसा व अक्षमाला हैं जबकि बायें ऊपर व नीचे के हाथों में क्रमशः गदा व मोदक(लड्डू) हैं। गले में यज्ञोपवीत है। समीप ही गणपति का वाहन मूषक अंकित है।

प्रवेश-द्वार की बायीं ओर भैरव जी की प्रतिमा है जो शिव के अवतार माने जाते हैं। इसकी विशेषता इनके चार हाथों का होना है। इनके दायें ऊपरी व निचले हाथों में क्रमशः डमरु व फरसा है जबकि बायें ऊपरी व निचले हाथों में क्रमशः चक्र व नरमुण्ड चित्रित किए गए हैं। स्तम्भों के पास तीन कंगूरेवाले चार छोटे आले (कोष्ठ) हैं।

मुखमण्डप 2.95 मी० लंबा व 4.10 मीटर चौड़ा है। इसमें दायें व बायीं ओर सात कंगूरेवाले दो-दो द्वार हैं। इनका आकार प्रवेश-द्वारों के समान ही है। मण्डप का वितान अष्टकोणीय आधार पर गुंबदाकार है। इसकी ऊँचाई अन्दर से 3 मीटर है। अंदर मण्डप की छत के मध्य में तीन वलय लिए हुए चक्र हैं। मण्डप के मध्य में शिव के वाहन नन्दी की लाल बलुआ पत्थर की मूर्ति है।

गर्भगृह में प्रवेश के लिए एक ही द्वार है जो 1.25 मीटर लम्बा व 73 सेमी० चौड़ा है। द्वार के ललाटबिम्ब पर गणेशजी उत्कीर्ण हैं। द्वार के ऊपर बड़ा शिलाफलक है जिस पर देवनागरी लिपि में यह छः पक्तियों का एक लेख अंकित है :

प्रथम पंक्ति -	राते कारीगर श्री सनराम एकनाथ श्री गिरनाथ श्री गणेशायनम साधु वीसानगीर
द्वितीय पंक्ति	उपरचा संमत 1811 साके 1677 प्रपेते माने दशवाणो गोसावी सु-वार मांगसीर-मगा से आरंभ
तृतीय पंक्ति	पौष-हर सो प सुवासे से सुश्रुती प-उपीगयेत समगीर वासरे जे दीन हे तऊ सहासी कोष द्यावे ते नरमदातीर सजेरा
चतुर्थ पंक्ति श्री महंत बीनोद गीर बापा पा सीबे गुरु मेसुरगीर शिष्य अमर गीर गोसाईं मोजे चिखल्दा

पञ्चम पंक्ति सी सुभारंभ-माहे-मगसीर-गीरभाषे उ गुसाई सिपमांसुत सीधो
 थमीडा के राणै गिरी पासून
 षष्ठ पंक्ति गोत्रराचा

द्वार के समीप दो गोल स्तम्भ हैं जिनके पीछे दायें-बायें तीन कंगूरेवाला एक-एक आला है। गर्भगृह व मुखमण्डप के मध्य 20 सेमी० ऊँचा उदुम्बर (देहरी) है। उसके नीचे की ओर मुखमण्डप में भूरे-लाल चिकने पत्थर की चंद्रशिला है। इसके अंत में दायें, बायें— दोनों ओर उभरे तीन पंखुरीवाले अर्द्धपुष्पाकृति है। इसके पास में ही विष्णु भगवान् के प्रतीक चिह्न एक शंख की उभरी हुई आकृति है जो इसे परमारकालीन सिद्ध करती है। प्रवेश-द्वार के दायें व बायें प्रस्तर-निर्मित एक-एक द्वारपाल हैं। इनकी आँखें व भौहें उभरी हुई हैं। इन्होंने पगड़ी पहनी है तथा मूँछें रखी हैं। द्वारपालों के हाथ में दण्ड है तथा पोषाक में साधारण भिन्नता है।

मन्दिर का पवित्रतम भाग गर्भगृह है। यह 2.7 मीटर लंबा व इतना ही चौड़ा वर्गाकार है। गर्भगृह की भीतरी दीवारों में कोई अलंकरण नहीं है व मध्य में बलुआ पत्थर से निर्मित पशुपतेश्वर शिवलिंग है। रथों पर तीन सुन्दर देवकोष्ठ हैं जिनमें देवमूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गई हैं। इनमें एक उत्तराभिमुखी गणेश-प्रतिमा है।¹ गर्भगृह-द्वार के ठीक सामने के देवकोष्ठ में पश्चिमाभिमुखी देवी पार्वती की प्रतिमा है इसमें देवी पार्वती को चतुर्भुज स्वरूपवाली तथा स्थानक मुद्रा में खड़ी निरूपित किया गया है। देवी पार्वती के दाहिने ऊपरी व निचले हाथ में क्रमशः शिवलिंग व अक्षमाला है जब कि बायें ऊपरी व निचले हाथ में क्रमशः गणेश-प्रतिमा व कलश² अंकित है। देवी प्रतिमा में नीचे दाहिनी ओर नन्दी व बायीं ओर सिंह अंकित है। देवी ने लांघवाली साड़ी धारण की है। सिर पर मुकुट, गले में हार व हाथों में चूड़ियाँ पहनी हैं।

उत्तरी देवकोष्ठ रिक्त है जिसमें दाक्षिणाभिमुखी प्रतिमा स्थापित की जाती है। देवकोष्ठ बड़े व चौकोर हैं। गर्भगृह में दीपदान है। प्रवेश-द्वार के ऊपर अन्दर की ओर तीन मेहराबदार प्रतीक गवाक्ष बने हैं। अन्दर से गर्भगृह की छत 2.10 मीटर तक सीधी-चौकोर है व उसके ऊपर पिरामिड के समान चौकोर है जो आगे की ओर बढ़ती हुई सँकरी होती गई है। शीर्ष में अन्दर की तरफ एक वर्ग बना है व इसके मध्य में अनेक वलयवाला उभरा हुआ चक्र है। पूजा के पानी के निकासी हेतु उत्तर की ओर प्रजालिका (वरि मार्ग) बनी है।

मुखमण्डप की छत मध्य में गुंबदाकार है। यह सात फलकों में विभाजित है। मुखमण्डप पर गुंबद का होना इस बात का प्रमाण है कि इसका निर्माण परमार शासकों के अंतिम समय में हुआ होगा क्योंकि धीरे-धीरे मुसलमानों का प्रभाव गुंबद-निर्माण के रूप में दिखने लगा था। मुखमण्डप की औरी तीनों ओर ढालदार है जिसके ऊपर प्रत्येक तरफ आठ-आठ कंगूरे बने हैं। गुंबद के पीछे व गर्भगृह के शिखर के नीचे की ओर अग्रभाग में एक गवाक्ष है जिसके ऊपर सिंह की प्रस्तर-प्रतिमा है। इस गवाक्ष से शिखर के अंत तक समानान्तर छोटा व सँकरा रास्ता है। मन्दिर का शिखर भुवनेश्वर (ओड़ीशा) के मन्दिरों के शिखरों से

मिलता-जुलता है। शिखर में सात-सात प्रतीक कुंभों की चार उभय पंक्तियाँ हैं। इसके अतिरिक्त ऋंग भी उकेरे गये हैं।

गर्भगृह बाहर से सादा है इसके जंघा व वरण्डिका भाग पर कोई अलंकरण नहीं है। मन्दिर निरन्धार हैं। इसमें 62 सेमी० चौड़ा पीठ का हिस्सा प्रदक्षिणा-पथ का कार्य करता है।

पुरातात्विक महत्त्व का यह मन्दिर दुर्भाग्यवश सरदार सरोवर में लीन हो जायेगा। अतः इसका संरक्षण करना आवश्यक है, ताकि ये भारतवासियों को उनके भव्य अतीत की सुखद स्मृति कराता रहे।

सन्दर्भ :

1. वा०वा० ठाकुर (सं०), होलकरशाहीच्या इतिहासाची साधने, भाग 1, अक्र 26, पृ० 16-17, 1944; राजेन्द्र वर्मा (सं०), मध्यप्रदेश डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर धार, पृ० 303, 1984; कोठडा ग्राम 22.7° उ० व 74.51° पू० में स्थित है।
2. चिखल्दा ग्राम नर्मदा के उत्तरी तट पर स्थित है।
3. यह जानकारी मन्दिर के समीप ही निवास करने वाले पंचोली परिवार ने दी है।
4. यह गणेश-प्रतिमा प्राचीन नहीं है तथा पुजारी जी श्री पंचोली ने स्थापित की है।
5. सुराही





17.

मन्दसौर जिले में पाशुपत सम्प्रदाय से संबंधित देवालय

डॉ० हंसा व्यास (सक्सेना)

प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद

भा रतीय जीवन सनातन से अध्यात्म प्रभावित रहा है। धर्म एवं जीवन की पारस्परिक घनिष्टता इस देश की सर्वप्रमुख विशेषता रही है। भारतीय जीवन का कोई भी क्षेत्र धार्मिक प्रेरणा एवं चेतना से अछूता नहीं रहा। धारणा तो यह रही कि बिना धार्मिक उपचेतना के जीवन क्षेत्र ही निष्प्राण है। सच भी है भारतीय धर्म का कलेवर ही इतना विशाल रहा है कि मानव जीवन के सभी क्षेत्र भौतिक एवं पारमार्थिक उसके क्रोड़ में कवलित हो जाते हैं। भारतीय जीवन की धर्मप्रियता भारतीय सभ्यता की उच्चता का प्रतीक है।

ऋग्वेद न केवल भारत का प्राचीनतम साहित्यिक स्मारक है, वरन् विद्वानों के मत में संसार के प्राप्त साहित्यिक स्मारकों में अत्यन्त प्राचीन है।¹ ऋग्वेद में वास्तुकला-सम्बन्धी जो संकेत मिलते हैं, उनसे इस कला के शैशव का अनुमान लगाया जा सकता है। समय के साथ-साथ वास्तुकला का विकास हुआ और मन्दिर-स्थापत्य कला का विशाल एवं भव्य इतिहास प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण भारत में मन्दिर-स्थापत्य शैली स्थानीय स्तर पर विकसित हुई। शैव, वैष्णव, बौद्ध, जैन-मन्दिरों ने मन्दिर-स्थापत्य कला का महत्वपूर्ण इतिहास लिखा। मालवा का मन्दसौर जिला, मन्दिर-वास्तुकला और शिल्पकला का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ शैव, वैष्णव सम्प्रदाय खूब फले और फूले।

मध्यप्रदेश के उत्तरी छोर पर 24°4'30' उ० अक्षांश एवं 75°5' पू० देशान्तर पर समुद्रतल से लगभग 510 मीटर ऊँचाई पर शिवना नदी के किनारे मन्दसौर स्थित है। इसका प्राचीन नाम 'दशपुर' है। प्राचीनकाल में दशपुर की गणना भारत के प्रमुख नगरों में होती रही है। सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व था। शक-क्षत्रप काल में इसकी गणना महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थानों में की गई है। गुप्त तथा गुप्तोत्तर काल में यह स्थान औलीकरवंशीय शासकों की राजधानी रहा। इस वंश के पराक्रमी शासक यशोधर्मन ने हूणराज मिहिरकुल को परास्तकर भारतीय इतिहास की गरिमा बढ़ाई थी।¹

ऐतिहासिक मन्दसौर अपने अञ्चल में शैव स्थापत्य को समेटे हुए है। शैव सम्प्रदाय का सबसे प्राचीनतम सम्प्रदाय पाशुपत माना जाता है। सैंधव सभ्यता से लेकर वर्तमान तक इसका अस्तित्व विद्यमान है। पाशुपत-सम्प्रदाय के आराध्य लकुलीश माने गए हैं। लकुलीश शिव के आद्यावतार और 28वें अवतार भी माने गये हैं।² श्वेत की परम्परा में महेश्वर के 28वें योगावतार लकुलीश के नाम से जाने जाते हैं।³ पाशुपतसूत्रों के प्रवर्तन का श्रेय लकुलीश को ही है।⁴ पाशुपतसूत्रों के पञ्चार्थभाष्य में कहा गया है कि भगवान् लकुलीश का ब्राह्मण कुल में कायावतार हुआ था। यह स्थान गुजरात में माना जाता है।⁵ इस स्थल को 'कारवन', 'करोहण' और 'कायावरोहणेश्वर' के नाम से जाना जाता है। पुराणों में इसे भृगुमण्डल में स्थित बताया गया है।⁶ अवतरण के पश्चात् लकुलीश उज्जयिनी आये जहाँ करोहण⁷ में उन्होंने अपने शिष्य कुशिक को पाशुपतसूत्रों का उपदेश दिया। यह स्थान 'कायावरोहणेश्वर' भी कहलाता है। यहाँ कायावरोहणेश्वर का मन्दिर है। मन्दिर के सामने अश्वत्थ वृक्ष के नीचे लकुलीश की प्रतिमा स्थापित है। इसकी पुष्टि कावेरी शोध संस्थान, उज्जैन के निदेशक एवं प्रख्यात इतिहासकार डॉ० श्यामसुन्दर निगम ने की है। महेश्वर के कायरूपी योगावतार लकुलीश के प्रति धार्मिक श्रद्धा एवं उनकी उपासना की एक अन्य पौराणिक धारा प्रचलित थी जिसका सम्बन्ध मूर्तिकला से है। कायावतार की कथा में उल्लिखित है कि लकुलीश करोहण से ब्रह्मेश्वर गये और वहाँ ब्रह्मेश्वर लिंग में लीन हो गये। पाशुपत सम्प्रदाय में लिंगपूजा का अत्यधिक महत्त्व है।⁸ लकुलीश के हाथों में दण्ड और बीजपूरक का उल्लेख मिलता है। शिव की योग मुद्रा का उल्लेख *पाशुपतयोग* में हुआ है। *पाशुपतसूत्र* के पञ्चार्थभाष्य में कहा गया कि पाशुपतों द्वारा हाथ में प्राणलिंग धारण किया जाता है।⁹ लकुलीश की विशेषता ऊर्ध्वमेढू एवं पद्मासनस्थ है। पद्मासन योग की विशिष्ट मुद्रा है।¹²

पाशुपत सम्प्रदाय के मन्दिरों में मन्दिर के ललाटबिम्ब में लकुलीश की प्रतिमा स्थापित है और गर्भगृह में लिंग प्रतिष्ठित है। *प्रासादमण्डन* के अनुसार ललाटबिम्ब में जिस देव की प्रतिमा स्थापित होती है, मन्दिर उसी देव का होता है।¹³ इस आधार पर जहाँ-जहाँ ललाटबिम्ब में लकुलीश मिले, वह-वह मन्दिर पाशुपत सम्प्रदाय का ही कहलायेगा। इन मन्दिरों में पूजा लिंग रूप में ही होती रही है। कुछ पाशुपताचार्या द्वारा शिवलिंग स्थापित करने के भी सन्दर्भ मिलते हैं। हेनसांग हर्ष (606-647) के समय भारत आया था। उसने अपने

यात्रा-विवरण में अनेक जगह पाशुपतों का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि मो-ला-पो (मालवा) में सैकड़ों देव मन्दिर थे। परन्तु बहुमत पाशुपतों का था।

महिष्मती कलचुरी नरेश पाशुपत मत के अनुयायी थे। वासुदेव विष्णु मिराशी के अनुसार इन्हीं नरेशों के शासनकाल में एलिफेन्टा में गुफा-मन्दिर का निर्माण हुआ था। सम्भवतः पाशुपतों द्वारा प्रथम गुफा-मन्दिर का निर्माण कराया गया था।¹⁴

मालवाञ्चल का महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल मन्दसौर लकुलीश की भव्य प्रतिमाओं के साथ-साथ पाशुपत सम्प्रदाय के मन्दिर-स्थापत्य वैभव को अपने में समेटे हुए है। मन्दसौर का हिंगलाजगढ़, मोड़ी, इन्द्रगढ़, संधारा, कैथूली, मल्हारगढ़, अन्तरालिया, सुवासरा, नीमथूर आदि क्षेत्र पाशुपत सम्प्रदाय के पुरातात्विक सन्दर्भों से समृद्ध हैं।

मन्दसौर क्षेत्र के संधारा स्थान पर परमारकालीन शिव-मन्दिर है।¹⁵ लगभग 12वीं-13वीं शताब्दी के इस मन्दिर के ललाटबिम्ब में लकुलीश का अंकन है। परमारकालीन इस मन्दिर का मण्डप, गर्भगृह कुछ सुरक्षित हैं। मण्डप 12 स्तम्भों पर आधारित है। मध्य मण्डप अपेक्षाकृत अधिक अलंकृत है।

मन्दिर के ललाटबिम्ब पर लकुलीश की प्रतिमा उत्कीर्ण है। प्रतिमा की दाहिनी ओर ब्रह्मा तथा बायीं तरफ विष्णु उत्कीर्ण किए हैं। मन्दिर भूमिज शैली में निर्मित है। शिखर ध्वस्त हो चुका है परन्तु कुछ अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस पर शृंगयुक्त रेखा-शिखर रहा होगा। वर्तमान में यहाँ विष्णु-प्रतिमा स्थापित है।

संधारा का ही एक अन्य परमारकालीन मन्दिर के ललाटबिम्ब पर लकुलीश का अंकन है। लकुलीश पद्मासन मुद्रा में हैं। वर्तमान में जैन मतानुयायी इसे जैन मन्दिर कहते हैं। जबकि मन्दिर के ललाटबिम्ब पर अभी भी लकुलीश का ही अंकन है।¹⁶ परमारकालीन एक मन्दिर कैथूली में है। इस शिव मन्दिर के ललाटबिम्ब पर चतुर्भुजी लकुलीश का अंकन है। लकुलीश पद्मासन मुद्रा में हैं। वर्तमान में यह लक्ष्मीनारायण मन्दिर के रूप में प्रसिद्ध है।

कैथूली में ही एक और शिव-मन्दिर है इसका समय लगभग 12वीं-13वीं शताब्दी का है। इस मन्दिर के ललाटबिम्ब पर लकुलीश का अंकन है। चतुर्भुजी लकुलीश पद्मासन मुद्रा में बैठे हैं।

मन्दसौर जिले की भानपुरा तहसील में मोड़ी ग्राम से विक्रम संवत् 1314 का एक अभिलेख मिला है जो दो प्रस्तर खण्डों पर उत्कीर्ण है। यह प्रस्तर खण्ड पुरातत्त्व संग्रहालय, इन्दौर में विद्यमान है। अभिलेख की पंक्ति 33 में अवन्तिनिवासी पाशुपत ऋषि मल्लिकार्जुन का उल्लेख है, साथ ही विभिन्न देवी-देवताओं के दानों का विवरण है। सम्भवतः परमार शासक जयवर्मन द्वितीय ने शिव-मन्दिर बनवाकर अवन्ति के निवासी पाशुपत ऋषि मल्लिकार्जुन को यहाँ का आचार्य नियुक्त किया होगा। मोड़ी में लकुलीश की मूर्तियाँ भी मिली हैं और मन्दिर मिलने के सन्दर्भ भी हैं। गाँधी सागर में समा जाने से पूर्व सभी पुरातात्विक सामग्री इन्दौर

संग्रहालय में ले आई गई है।

‘पाशुपतोऽयं ब्रह्मर्षिः श्री’ (अभिलेख-पंक्ति 33)

मोड़ी में विक्रम संवत् 1317 का एक भग्न शिव-मन्दिर विद्यमान है।¹⁷ यह मन्दिर लकुलीश का है। मन्दिर में केवल गर्भगृह एवं अन्तराल का ही भाग शेष बचा है। अन्तराल से प्रवेशवाले चौखट के ऊपरी भाग पर लकुलीश की प्रतिमा का अंकन था। प्रतिमा के दाहिनी तरफ ब्रह्मा तथा बायीं तरफ विष्णु की प्रतिमा थी। अधिष्ठान, खुर, कुम्भादि विभिन्न अलंकरणों से युक्त था। जंघा भाग रेखाकृत व पद्मयुक्त था। शिखर उरु-शृंगों एवं आमलक से सुशोभित था। मुखद्वार के ऊपर शुक-नासिका विद्यमान थी। शिखर का अंतर्भाग क्रमशः चौकोर, अष्टकोणीय एवं वृत्ताकार था। मोड़ी के इस मन्दिर के समीप और भी तीन शिव-मन्दिरों के अवशेष बिखरे हुए हैं। संभवतः वे भी लकुलीश के रहे होंगे।

मन्दसौर क्षेत्र के इन्द्रगढ़ से एक अभिलेख मिला है। इस अभिलेख में पाशुपताचार्य द्वारा मन्दिर-निर्माण कराए जाने का उल्लेख है। अभिलेख में अक्षर की बनावट 8वीं शताब्दी के आरम्भ की है। अभिलेख का आरम्भ ‘ॐ नमः शिवाय’ से हुआ है। अन्त की कुछ पंक्तियों को छोड़कर सारा लेख छन्दोबद्ध है। लेख संस्कृत-भाषा में है। इस लेख में विनीत राशि और दानराशि के नामों का उल्लेख है। ये दोनों पाशुपताचार्य थे। दोनों आचार्य शास्त्रनिष्णात थे। सत्य विद्या, ज्ञान और शीलादि गुणों से भूषित योगाभ्यासरत तथा अध्यापन कला में पटु थे। उनके यहाँ विद्यार्थियों का ताँता लगा रहता था। इसके बाद तीन श्लोकों में इसी दानराशि द्वारा शिव-मन्दिर के निर्माण का उल्लेख तथा उसकी टूट-फूट की दुरुस्ती का अधिकार सारे नगर या उसके किसी भी निवासी या अन्य किसी व्यक्ति को देने का उल्लेख है। शेषांश में मन्दिर के निर्माण का समय विक्रम संवत् 767 बताया गया है। इसी अभिलेख में मन्दिर-निर्माण के निमित्त हुए दान तथा उसकी सीमा का उल्लेख किया गया है।¹⁸ यह शिलालेख इन्दौर संग्रहालय में विद्यमान है।

वही पार्श्वनाथ मन्दिर

वही पार्श्वनाथ मन्दिर, मन्दसौर जिले की मल्हारगढ़ तहसील में मुख्य राजमार्ग से कोई 2 किमी० पश्चिम में स्थित है। मूल रूप में यह मन्दिर पाशुपत सम्प्रदाय के लकुलीश को समर्पित था। इस मन्दिर में विक्रम संवत् 1100, 1163 का एक अन्य अभिलेख था जो जीर्णोद्धार के दौरान नष्ट कर दिया गया अथवा प्लास्टर कर दिया गया।

वर्तमान में इस मन्दिर के संबंध में हिंदुओं और जैनियों के मध्य विवाद चल रहा है। जैन इस मूल मन्दिर को तोड़कर नवीन मन्दिर बनाना चाहते हैं परन्तु हिंदुओं का विरोध है कि यह मन्दिर हिंदू मन्दिर है। अतः इसे तोड़ा नहीं जाना चाहिये।

मध्यप्रदेश पुरातत्त्व विभाग को चाहिये कि वह मन्दिर की प्राचीनता को देखते हुए इसे संरक्षित स्मारक घोषित करे, ताकि समाज में रोष पैदा न हो और प्राचीन धरोहर को

सुरक्षित रखा जा सके।

रणछोड़नाथ मन्दिर, रुनिजा, तहसील सुवासरा, जिला मंदसौर

मंदसौर जिले के पूर्व में जिला मुख्यालय से कोई 71 किलोमीटर दूर स्थित ग्राम रुनिजा के मध्य श्री रणछोड़नाथ का मन्दिर स्थित है। यद्यपि इस मन्दिर के बाहरी स्वरूप में पर्याप्त जीर्णोद्धार हो चुका है तथापि इसका भीतरी भाग प्राचीन स्वरूप में यथावत है।

मूलतः यह मन्दिर पाशुपत सम्प्रदाय को समर्पित था इसका प्रमाण हमें मन्दिर के उपमण्डप की द्वारशाखा के ललाटबिम्ब के मध्य रथिका में लकुलीश के अंकन से मिलता है। लकुलीश पद्मासन में कुञ्चित केश, कानों में कुण्डल, खुले नेत्र, गले में पत्रहार, द्विहस्त अंकित किए गए हैं। इनके दाहिने हाथ में मातुलिंग फल एवं बाएँ हाथ में दण्ड है। द्वारशाखा का अधोभाग अलंकृत है।

वर्तमान में इस मन्दिर में गरुड़ासीन विष्णु की प्रतिमा 'रणछोड़नाथ' के नाम से पूजित है। यह प्रतिमा स्थानीय खाल में रेती में दबी हुई प्राप्त हुई थी। कोई 200 वर्ष पूर्व यह मन्दिर वीरान था। अतः यह प्रतिमा इस मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दी गयी। मूल मन्दिर प्रतिहारकालीन देवालय के अवशेषों से पुनः निर्मित होकर 20 स्तम्भों पर टिका है। इस मन्दिर के निर्माण में जैन, वैष्णव एवं शैव मन्दिरों के अवशेषों का प्रयोग किया गया है। दाहिने ओर की द्वारशाखा पर पार्श्वनाथ का अंकन है। इसके नीचे गंगा, यमुना उत्कीर्ण हैं जबकि बायीं ओर उमाउहेश्वर के साथ नन्दी उत्कीर्ण हैं। इनके हाथों में दक्षिणाक्रम से पुष्प, त्रिशूल, सनालपद्म तथा खण्डित है। ऊपर नवगृह मध्य में मिथुन युग्म तथा नीचे की ओर गंगा-यमुना का अंकन है।

मन्दिर के वर्तमान स्वरूप का निर्माण संभवतः 1594 ई० में किया गया होगा; क्योंकि बाहर की ओर बायीं ओर एक स्तम्भ पर 24 पंक्तियों का अभिलेख लगा है जिसमें विक्रम संवत् 1615 में यहाँ निर्माण-कार्य होने की सूचना मिलती है।

फूटा मन्दिर, अंतरालिया

मंदसौर जिले की भानपुरा तहसील में मंदसौर-भानपुरा मार्ग से कोई 3 किमी. भीतर की ओर तथा भानपुरा से कोई 14 किमी० दक्षिण-पूर्व में अंतरालिया स्थित है। चंद्रावतों के शासनकाल में अंतरालिया चंद्रावतों की एक प्रमुख जागीर रहा है। यहाँ स्थित जागीरदार का बहुमंजिला भवन आज भी अपने अतीत की याद दिलाता है।

चंद्रावतों के महल के समीप ही एक खण्डहर मन्दिर दिखाई पड़ता है, जो संरक्षित स्मारक घोषित किया जा सकता है।

ग्राम अंतरालिया में स्थित यह फूटा मन्दिर नागर शैली का सप्तरथी पुनर्निर्मित मन्दिर है जिसका शिखर वर्तमान में आधे से अधिक क्षतिग्रस्त हो गया है।

पूर्वाभीमुखी इस देवालय को स्थानीय शैली में पुनः निर्मित किया गया है। प्रमुख द्वार के दाएँ-बायें दो वातायन निर्मित किए गए हैं। ऐसा ही एक वातायन भीतर सभामण्डप में बायीं ओर खुलता है। सभामण्डप की दायीं ओर एक द्वार निर्मित किया गया है जिससे समीप गुजरनेवाले मार्ग से आया-जाया जा सकता है। इस सम्पूर्ण देवालय के निर्माण में स्थानीय पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

यह देवालय पाशुपत सम्प्रदाय के लकुलीश को समर्पित था। इसका प्रमाण हमें गर्भगृह की द्वारशाखा के मध्य ललाटबिम्ब पर अंकित लकुलीश प्रतिमा से मिलता है। कालप्रवाह में यह मन्दिर अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो गया है। इसके सभामण्डप का भाग ऊपर से पूर्णतः नष्ट हो चुका है।

लकुलीश, जटामुकुट, पत्रहार, मुक्ताकुण्डल, यज्ञोपवीत धारण किए हुए पद्मपीठिका पर पद्मासन में विराजमान है। द्वारशाखा के निचले दोनों भागों में शिवप्रतिहारों का अंकन है।

द्वारशाखा के दाहिने ओर निचले भाग में अंकित शिवप्रतिहार, जटामुकुट, एकावली, यज्ञोपवीत, वनमाला, उरुदाम धारण किए हुए द्विभंग मुद्रा में चतुर्हस्था निर्मित किए गए हैं। इनके हाथों में क्रमशः पुष्प, त्रिशूल, नाग व खट्वांग का अंकन है जबकि बायीं ओर के प्रतिहार में दक्षिणाक्रम से पहला हाथ खण्डित है। इसके सिवाय वे डमरू, नाग व खट्वांग धारण किए हुए हैं। इन दोनों के साथ-साथ गंगा और यमुना का भी कलात्मक अंकन किया गया है।

मन्दिर का पुनर्निर्माण किसी प्राचीन शिवालय से किया गया है। इस कारण इसमें कुछ प्रतिमाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। सभामण्डप की छत में लगे हुए स्तम्भ पर पार्वती की एक सुन्दर एवं कलात्मक प्रतिमा लगी हुई है। इसमें पार्वती चतुर्हस्था निर्मित की जाकर सव्य ललितासन में अपने वाहन सिंह पर बैठी हुई दिखायी गई है। चारों हाथों में क्रमशः वरद, पुष्पादि है। देवी ने अपने गले में कण्ठहार, स्तनसूत्र, कुण्डल तथा हाथ और पाँवों में मुक्ता कड़े धारण कर रखे हैं।

देवालय की स्थिति अत्यधिक खराब है और यदि विभाग द्वारा इसको तत्काल संरक्षण में लिए जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है तो एक अच्छा देवालय राज्य-संरक्षित स्मारक बन सकता है।¹⁹

शिव मन्दिर, नीमथूर

मंदसौर जिले की भानपुरा तहसील में तहसील मुख्यालय से कोई 7 किलोमीटर दूर नीमथूर स्थित है। प्राचीन काल में यह गाँव पहाड़ पर बसा हुआ था। इसका प्राचीन नाम लीमगढ़ था। यहाँ भी पाशुपत, वैष्णव तथा जैन सम्प्रदाय के अनेक मन्दिर विद्यमान थे। वर्तमान में यह ग्राम पहाड़ से नीचे मैदानी भाग में बसा हुआ है। बसाहट के पश्चात् यहाँ अनेक देवालयों का पुनर्निर्माण किया गया। इनमें शिवमन्दिर नीमथूर सड़क के समीप ही विद्यमान है। इस मन्दिर का निर्माण मध्ययुगीन मुस्लिम शैली में किया गया है। इसके निर्माण में अनेक मन्दिरों के

अवशेषों का प्रयोग किया गया है।

इस मन्दिर में भानपुरा क्षेत्र की सबसे बड़ी जलाधारी में चतुर्मुखी शिवलिंग स्थापित किया गया है। मन्दिर के गर्भगृह की द्वारशाखाएँ किसी प्राचीन शिव मन्दिर की प्रतीत होती हैं। इनमें दक्षिणाक्रम से गंगा, शिवप्रतिहार, चँवरधारिणी का अंकन है, बायीं ओर यमुना, शिवप्रतिहार एवं चँवरधारिणी है। द्वारशाखा के ऊपर क्रमशः ब्रह्मा-ब्रह्माणी, शिव-पार्वती एवं लक्ष्मीनारायण का अंकन है।

सीधे रूप से इस मन्दिर का पाशुपत सम्प्रदाय से कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ता है। परन्तु मन्दिर के सभामण्डप के दाहिने ओर एक सूर्य-प्रतिमा लगी हुई है। इस त्रिमुखी सूर्यप्रतिमा में सूर्य सम्भंग अवस्था में सनालपद्म, किरीटमुकुट, पत्रहार, मुक्ताकुण्डल, यज्ञोपवीत, कटिसूत्र, उरुद्राम, वनमाला व पैजंन धारण किये हुए है। चर्म पहने हुए सूर्य ने पाँवों में जूते धारण नहीं कर रखे हैं। छः हाथों में क्रमशः कमल, पानपात्र, त्रिशूल, गदा, शंख एवं पद्म का अंकन है। यह सूर्य, भैरव एवं विष्णु की समन्वित प्रतिमा है जिसके नीचे दण्ड और पद्म का अंकन है। पाँवों के नीचे एक पाशुपत संन्यासी पद्मासनस्थ दिखाया गया है। दायें-बायें ऊपर की ओर क्रमशः ब्रह्मा एवं विष्णु का अंकन है।

यह प्रतिमा लकुलीश के समन्वित रूप का प्रदर्शन करती है क्योंकि इसके सबसे ऊपरी भाग में उपासिकाओं से मण्डित द्विभुजी लकुलीश, जटामुकुट, कुण्डल, पत्रहार, यज्ञोपवीत धारण किए हुए पद्मासन में ऊर्ध्वलिंग सहित विराजमान है। प्रतिमा के हाथों में मातुलिंग फल एवं दण्ड का अंकन न करके इन्हें पृथक् से बनाया गया है। लकुलीश के दोनों हाथों की दो मुद्राएँ निर्मित की गई हैं जिसमें दाहिना हाथ वरद एवं बायां हाथ ज्ञानमुद्रा में अंकित है। लकुलीश की यह प्रतिमा 10वीं-11वीं शताब्दी के मध्य निर्मित जान पड़ती है। इसकी पुष्टि मन्दिर की द्वारशाखा के ललाटबिम्ब पर अंकित चामुण्डराज के अभिलेख से भी होती है। 7 पंक्तियों के इस अभिलेख में 7वीं पंक्ति में 1028 संवत् का अंकन किया गया है।

मन्दसौर जिले के पाशुपत सम्प्रदाय के मन्दिर इस बात को प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन काल में मन्दसौर पाशुपत सम्प्रदाय का एक सशक्त एवं महत्वपूर्ण केन्द्र था।

सन्दर्भ :

1. शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, *भारतीय वास्तुशास्त्र* (वास्तुविद्या तथा पुरनिवेश), वास्तु वाङ्मय प्रकाशनशाला, फैजाबाद रोड, लखनऊ, 1955 पृ० 14
2. त्रिवेदी, चन्द्रभूषण, दशपुर, *मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी*, भोपाल, 1979 पृ० 21
3. भाण्डारकर, जर्नल बम्बई ब्रांच रॉयल एशियाटिक सोसायटी, वॉल्यूम XXII, पृ० 156
4. *कूर्मपुराण*, 1.51.9.10, 1.53.4; *वायुपुराण*, 23.219-214
5. *पाशुपतसूत्राज ऑफ पञ्चार्यभाष्य* (श्री कौण्डिन्य); त्रिपाठी, आलोकमणि, *पाशुपत शैवधर्म और दर्शन*, भाग 1, प्रतिभा प्रकाशन, 1988, दिल्ली, पृ० 67
6. मेहता आर०एन० (आलेख), *जर्नल ऑफ़ दी ओरियण्टल इंस्टीट्यूट*, बड़ौदा, वॉल्यूम 7, वर्ष, 1957,

पृ० 169

7. गणकारिकारत्नटीका, अपेंडिक्स, पृ० 4 (त्रिपाठी आलोकमणि, पूर्वोक्त)
8. वही, पृ० 4
9. करोहण उज्जैन से 7 किमी. दूर इन्दौर-उज्जैन मार्ग पर स्थित है
10. कूर्मपुराण, 1,32, 9.12
11. पाशुपतसूत्र पञ्चार्थभाष्य, 5.33
12. त्रिपाठी, आलोकमणि, पूर्वोक्त, पृ० 133, श्लोक 28, 29, 31
13. प्रासादमण्डन (मण्डन विरचित), अध्याय 2 (अनु० जैन, भगवानदास), जयपुर, प्रथम संस्करण, 1963, पृ० 1-2
14. मिराशी, वासुदेव विष्णु, कलचुरि नरेश और उनका काल, भोपाल, विक्रम संवत् 2000, पृ० 75
15. लेखिका द्वारा स्वयं किया गया सर्वेक्षण
16. उक्त; भारद्वाज रवीन्द्र, 'दाशेरक प्रदेश की मूर्तिकला' (शोध-प्रबन्ध), विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, 1984, पृ० 55
17. लेखिका द्वारा किया गया सर्वेक्षण
18. सोजतिया, सुभाष कुमार, मालवा की सांस्कृतिक विरासत एवं पर्यटन, मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल, 2001, पृ० 143 लेखिका द्वारा स्वयं किया गया सर्वेक्षण
19. सभी मन्दिरों का सर्वेक्षण लेखिका द्वारा स्वयं किया गया





18.

पद्मावती की प्राचीन मूर्ति एवं मन्दिरों का व्यावहारिक स्वरूप

डॉ० मीना श्रीवास्तव

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, इतिहासस, शासकीय के०आर०जी० स्नातकोत्तर
स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर

पद्मावती नामक ऐतिहासिक नगर, जो वर्तमान में 'पद्मपवाया' कहलाता है, ग्वालियर के दक्षिण-पश्चिम में यहाँ से 42 मील दूर एक छोटा सा गाँव है। पवाया ग्वालियर जिले की पिछोर तहसील के अंतर्गत स्थित है।¹ ईसापूर्व छठी शताब्दी में षोडश महाजनपद प्रतिष्ठित हो चुके थे। वत्स महाजनपद के अंतर्गत उत्तर में ग्वालियर तक उसके क्षेत्र का विस्तार था। भविष्यपुराण में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि मध्यप्रदेश में 'पद्मावती' नाम का भी एक जनपद था। इस जनपद के राजा नागवंश के थे।²

ईसा पश्चात् प्रथम शताब्दी के आरम्भ में ग्वालियर क्षेत्र के आसपास नाग राज्य था।³ खजुराहो के वि०सं० 1058 (1001 ई०) के अभिलेख से ज्ञात होता है कि पद्म राजवंश के राजा ने पद्मावती की स्थापना की थी।⁴ लगभग 20-10 ई०पू० में भूतननन्दी ने पदमावती को अपनी राजधानी बनाया।⁵ कुषाणों ने इस क्षेत्र के नागों को अपदस्थ किया और अपने क्षेत्रों को यहाँ का शासन -प्रबन्ध सौंप दिया। तत्पश्चात् तीसरी और चौथी शताब्दी में ग्वालियर क्षेत्र में नागवंश के राजाओं ने कुषाणों का अंत करके⁶ पुनः पद्मावती और इसके पार्श्ववर्ती क्षेत्र पर नाग राज्य को स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। पद्मावती नगर के नागराजाओं की राजधानी के संबंध में विष्णुपुराण एवं वायुपुराण में भी उल्लेख प्राप्त होता है जो इस प्रकार है—

‘नवनागाः पद्मावत्यां कांतिपुर्या मथुरायाम्’⁷

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि नवनाग राजाओं की राजधानी पद्मावती⁸, कान्तिपुरी और मथुरा में थी। पुरातत्त्व विभाग द्वारा किए गए उत्खनन से प्राप्त सिक्कों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि पद्मावती पर शासन करनेवाले नाग शासक वृषनाग, व्याध्र, विभु, वसु, वीरसेन, स्कन्द, भीम, बृहस्पति, देव या देवेन्द्र, प्रभाकर, रवि, भवनाग और अन्तिम नागराजा गणपति थे।⁹ पवाया में सन् 1925, 1934, 1940 एवं 1941 ई० में चार बार उत्खनन-कार्य किया गया। उत्खनन में नागवंश के नवनाग राजाओं एवं पूर्व के प्रारम्भिक नागराजाओं के भी ऐतिहासिक प्रमाण सिक्कों, मूर्तियों व मन्दिरों के रूप में प्राप्त होते हैं।

1. पद्मावती की 'मणिभद्र यक्ष' की मूर्ति

उत्खनन में 'मणिभद्र यक्ष' की पूर्ण मानवाकार मूर्ति प्राप्त हुई है। इस मूर्ति पर प्रथम शताब्दी ईसवी का लेख उत्कीर्ण है। लेख की लिपि ब्राह्मी¹⁰ है। इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि राजा स्वामिन 'शिवनन्दी' के राज्यकाल के चतुर्थ वर्ष में किसी लोकनिकाय के कुछ सदस्यों ने 'यक्ष मणिभद्र' की एक मूर्ति अर्पित की थी।¹¹

प्राचीन काल में 'यक्ष मणिभद्र' व्यापारियों के देव थे। इस सम्बन्ध में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि नाविकों की देवी 'मणिमेखला' थी और स्थल पर चलनेवाले सार्थवाहों के अधिष्ठाता देवता 'मणिभद्र यक्ष' थे।¹² डॉ० ईश्वर शरण विश्वकर्मा के अनुसार¹³ 'नाग शासकों ने शिव एवं विष्णु के अतिरिक्त समृद्धि एवं सुरक्षा के प्रतीक यक्षों की पूजा को भी महत्वांकित किया। सार्थवाहों के समाज में यक्ष को विशेष स्थान मिला था। पद्मावती तत्कालीन महापथों का एक विशिष्ट केन्द्र था। मध्यदेश से गुजरनेवाले यात्रीगण 'यक्ष मणिभद्र' की उपासना करते थे और उनसे अपने व्यापारिक लाभ प्राप्ति के लिए वन्दना भी करते थे।'।

2. पद्मावती का 'सुवर्णविन्दु-धूमेश्वर' शिव मन्दिर

पद्मावती के नाग राजा 'भारशिव' थे। ये बुन्देलखण्ड के निवासी थे। ये परम शिवभक्त थे। यही कारण था कि वे शिव-विग्रह को सदैव अपने पास रखते थे। नागराजाओं ने शिव को अपने साम्राज्य के प्रधान उपास्य देव के रूप में प्रतिष्ठापित किया था।¹⁴ डॉ० काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार¹⁵ 'नवनाग ने नवनागवंश की स्थापना की जिसका वास्तविक नाम 'भारशिव' वंश था। वह कुषाण-शासक वासुदेव (अंतिम ज्ञात तिथि 176-77 ई० है) का समकालीन था। उसने लगभग 140-170 ई० तक राज्य किया। नवनागों के भारशिव वंश में वृषनाग को पद्मावती का संस्थापक माना गया है। इस वंश का अन्तिम राजा गणपतिनाग था जिसका शासनकाल 310-344 ई० तक था।'।

इतिहासकार हरिहर निवास द्विवेदी के अनुसार¹⁶ 'भारशिवों ने शिवलिंग को अपने कंधे पर वहन करके शिव को भलीभाँति परितुष्ट किया था। जिनका राज्याभिषेक उस भागीरथी के पवित्र जल से हुआ था जिसे उन्होंने अपने पराक्रम से प्राप्त किया था और जिन्होंने

दस अश्वमेध-यज्ञ कर अवभृथ स्नान किया था ।’

नागराजा सम्भवतया भूतनन्दी (लगभग 20-10 ई०पू०) ने पद्मावती में ‘स्वर्णबिन्दु’ नामक एक ‘विशालिङ्गम्’¹⁷ की स्थापना की थी। द्विवेदी ने इस शिवमन्दिर के सम्बन्ध में लिखा है,¹⁸ ‘पद्मावती पर कभी ‘स्वर्णविन्दु’ महादेव का मन्दिर था और आज भी उसी स्थान पर इसी नाम का आधुनिक मन्दिर विद्यमान है। इस मन्दिर की प्राचीन मूर्ति नहीं है।’ *ग्वालियर गज़ेटियर* में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि¹⁹ ‘मुग़ल सम्राट् जहाँगीर (1605-1627) ने इसे ओरछा के वीरसिंह देव को उसकी स्वामिभक्ति के बदले दिया। बुन्देला सरदार ने शिव का दुर्मांजिला मन्दिर बनवाया जो ‘धर्मेश्वर महादेव’ कहलाता है और जो नदी के जलप्रपात के निकट चट्टानी किनारे पर एक प्रहरी की भाँति खड़ा है।’ भवभूति के अनुसार²⁰ ‘पद्मावती नगरी सिंधु और पारा नामक दो नदियों से घिरी हुई है। इसके समीप ही पर्वत है तथा सिंधु (सिंध) और मधुमती (महुअर) का पवित्र संगम है। इस संगम पर प्राचीन काल से प्रतिष्ठित ‘सुवर्णबिन्दु’ शिव का मन्दिर है। यह प्राचीनकाल में तीर्थस्थली था, वर्तमान में यह ‘सोनेन्दु’ के नाम से जाना जाता है।’ भवभूति, प्राचीनकाल में संस्कृत साहित्य के नाटककार थे। उन्होंने ‘मालतीमाधवम्’ नामक नाटक में पद्मावती का वर्णन किया है। भवभूति का समय 700-760 ई० के मध्य माना जाता है।

डॉ० आनन्द मिश्र के अनुसार²² ‘मालती माधव में लिखा है कि विशाल जलप्रपात, राजप्रासाद, देवमन्दिरों से यह नगर सुशोभित था। आज भी यहाँ पर स्थित ‘धूमेश्वर पवाये’ के मन्दिर में शिवरात्रि के दिन भव्य मेला लगता है। दूर-दूर से गंगाजल को काँवरों में लेकर पैदल शिवभक्त आते हैं तथा इससे शिवलिंग का अभिषेक करते हैं।’

3. पद्मावती का विष्णु मन्दिर

पद्मावती नगर में वर्तमान में अनेक टीले दिखलाई देते हैं। इनमें से ही नदी के उत्तरी तट के निकट स्थित एक टीले की खुदाई की गई थी। इस खुदाई में एक विष्णु मन्दिर के अवशेष²³ प्राप्त हुए हैं।

ग्वालियर गज़ेटियर में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि²⁴ ‘एक टीले की खुदाई से एक महत्त्वपूर्ण सीढ़ीदार ईंट की संरचना का पता चलता है जिसमें एक के ऊपर एक उपर्युक्त अनुपात में घटते हुए तीन चबूतरे हैं। ऐसा दिखाई देता है कि सबसे ऊपर का चबूतरा किसी समय उपरि-रचना को सहारा देता था जो मन्दिर रहा होगा। नीचे अन्य दो चबूतरे संभवतः उक्त रचना के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ का काम देते होंगे। मन्दिर ‘विष्णु मन्दिर’ जैसा लगता है। विष्णु की प्रतिमा मिलने एवं हिंदू-धर्म संबंधी मृण्मयी मूर्तियों से पता चलता है। इस स्थल पर मृत्तिका-निर्मित अनेक छोटी-बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं जो सम्भवतः किसी समय मन्दिर की पार्श्व भित्तियों को अलंकृत करती थीं। ये अधिकांशतः टुकड़ी में हैं और कोई भी यथास्थान प्राप्त नहीं हुई।’

उपर्युक्त मन्दिर की शैली के आधार पर यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि यह मन्दिर गुप्त काल²⁵ का माना जा सकता है परन्तु हरिहर निवास द्विवेदी ने यह उल्लेख किया है कि²⁶ 'इस मन्दिर के पास प्राप्त नागराजा की मूर्ति तथा नागों संबंधी मृण्मूर्तियाँ तथा सूर्य स्तम्भ उनकी विष्णुभक्ति को स्पष्ट करते हैं। चूंकि नागराजा को पराजित कर 344/345 ई० में समुद्रगुप्त ने पद्मावती के नागराज्य को अपने राज्य में मिला लिया था, सम्भवतया इस कारण नागमूर्ति के संबंध में संदेह होना स्वभाविक है।

4. पद्मावती के नाग-सिक्कों पर धर्मचिह्न के लाक्षण

वायुपुराण में 'नागों' को 'वृष' अर्थात् शिव का नन्दी कहा गया है। नाग-शासकों ने अपने सिक्कों पर 'वृष' को स्थान दिया है। इसके साथ ही शिवोपासक होने के कारण नाम राजाओं ने अपने सिक्कों में नागछत्र, पार्वती का वाहन सिंह, स्कन्द का वाहन मयूर, शिव का परमास्त्र त्रिशूल, चन्द्र, कलश लिए हुए गंगा की आकृति आदि के लाक्षण से युक्त सिक्के निर्मित करवाये थे। भवनाग एवं अन्य नागराजाओं के सिक्कों पर चक्र का चिह्न भी मिलता है। यह चिह्न विष्णु के चक्र का प्रतीक²⁷ है। उपर्युक्त सिक्कों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि नागशासक, वैष्णव और शैव सम्प्रदाय के उपासक थे। मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व के संग्रह ग्रंथ²⁸ से ज्ञात होता है कि नागकालीन इन सिक्कों पर ताँबे के टप्पे लगे थे। ये इन्दौर एवं ग्वालियर संग्रहालय में संरक्षित किए गए थे।

पद्मावती के नाग-शासकों से संबंधित तत्कालीन मूर्तियों, मन्दिरों के भग्नावशेष एवं सिक्कों के लाक्षण के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है :

1. प्रथम शताब्दी में प्रारम्भिक नागराजाओं ने पद्मावती को अपनी राजधानी बना लिया था।
2. पद्मावती के नागराजा शिव और विष्णु के उपासक थे। इन्होंने शिव और विष्णु के मन्दिरों का निर्माण करवाया और अपने सिक्कों पर अपने उपास्य देवी-देवताओं के प्रतीक अंकित करवाये। ये सभी प्रमाण प्राचीन पद्मावती की मूर्ति एवं मन्दिरों के व्यावहारिक स्वरूप को उद्घाटित करते हैं।
3. पद्मावती के इन नाग-शासकों ने कुषाणों को पराजित कर यहाँ से विदेशी सत्ता को समाप्त किया और हिंदू-संस्कृति के विकास में सहायता की, जो भारतीय इतिहास के अविस्मरणीय पहलू है।

सन्दर्भ :

1. कृष्णन, व० सु० मध्यप्रदेश जिला गजेटियर ग्वालियर, पृ० 19, जिला गजेटियर विभाग, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1968
2. द्विवेदी, हरिहर निवास, मध्यप्रदेश का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० 34, 193, अनन्तमराल शास्त्री, संचालक, सूचना विभाग, मध्यप्रदेश गवर्नमेंट सेन्ट्रल प्रेस, ग्वालियर
3. क्र० 1

- 4 क्र०1 पृ० 473 एवं महाजन, बी०डी०, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 417, एस चाँद एण्ड कं०
लि०, नयी दिल्ली, षष्ठम संस्करण, 1986
- 5 वही
- 6 क्र०1 पृ० 473 एवं क्र० 2
- 7 क्र०2 पृ० 472 एवं (पप) शान्ति चन्द्र, 'संस्कृति की शोभा यात्रा का ध्वजवाहक : ग्वालियर क्षेत्र',
युगयुगीन ग्वालियर, पृ० 6, भारतीय इतिहास संकलन समिति, मध्यभारत, भोपाल।
- 8 शर्मा, राजकुमार, मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का सन्दर्भ ग्रंथ, पृ० 304, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी,
भोपाल, प्रथम संस्करण, 1974
- 9 क्र० 2 470 व 471; विश्वकर्मा, ईश्वरशरण, 'ग्वालियर क्षेत्र की सांस्कृतिक समृद्धि में नाग शासकों का
योगदान', युगयुगीन ग्वालियर, पृ० 17, क्र०7; मिश्र, आनन्द, वैभवपूर्ण अतीत पद्मावती, पृ० 24,
भारतीय इतिहास संकलन समिति, मध्यभारत, भोपाल
- 10 क्र०1 पृ० 474
- 11 क्र०1
- 12 क्र०9 (पप)
- 13 क्र० 9 (पप)
- 14 क्र०1 पृ० 20
- 15 क्र० 9
- 16 क्र० 2 पृ० 477
- 17 क्र० 4
- 18 क्र० 2 पृ० 483
- 19 क्र० 1 पृ० 474
- 20 सिंह, जे०वी०, ग्वालियर की विभूति भवभूति, पृ० 26-27, युगयुगीन ग्वालियर
- 21 शर्मा, चन्द्रमणि, ग्वालियर क्षेत्र की संस्कृत-सर्जन, पृ० 18, मनीषा-ग्वालियर दर्शन, प्रथम चरण
जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, संस्करण 1980
- 22 क्र० 9, पृ० 22
- 23 क्र०8
- 24 क्र० 1 पृ० 474
- 25 क्र० 1 पृ० 474
- 26 क्र० 2 पृ० 483
- 27 क्र० 2 पृ० 483, 626 व 627
- 28 क्र० 8 पृ० 443





19.

चोली का ऐतिहासिक मन्दिर : शिल्पकला एवं दार्शनिकता का विवेचन

रुचिका वर्मा

शोधार्थी, पीएच० डी० (इतिहास)

भारत देश भौगोलिक विविधताओं का एक विशाल भूखण्ड है। भारत के हृदय स्थल मध्यप्रदेश में भी इसी प्रकार की भौगोलिक विविधता है। यहाँ पर उष्णकटिबन्धीय जलवायु पाई जाती है। इस प्रदेश के पश्चिम दक्षिण में निमाड़ एक स्वतंत्र क्षेत्र है। क्षेत्र का आकार मुकुट के समान प्रतीत होता है।¹ नवम्बर, 1956 को नये प्रदेश के निर्माण के साथ निमाड़ को दो भागों में विभक्त किया गया— 1. पश्चिमी निमाड़ एवं 2. पूर्वी निमाड़।¹ खरगोन को पश्चिम निमाड़ का एवं खण्डवा को पूर्वी निमाड़ का जिला मुख्यालय बनाया गया। पश्चिम निमाड़ में खरगोन जिले की ऐतिहासिक नगरी चोली 22.14° उत्तरी अक्षांश से 75.37° पू० देशान्तर है। इन्दौर से 98 किलोमीटर तथा बड़वाह से पूर्व में 37 किलोमीटर पर स्थित है। जिला मुख्यालय खरगोन से उत्तर में 40 किलोमीटर की दूरी पर है।

चोली तालाब के किनारे बसा एक ग्राम है। यह ढालनुमा क्षेत्र है। यह क्षेत्र प्राकृतिक दृष्टि से परिपूर्ण है। क्योंकि लावे से बनी चट्टानों के कारण लोहे तथा मैग्नीज के अंश अधिक मात्र में पाये जाने से यह काले रंग की चिकनी तथा अधिक उपजाऊ मिट्टी है। जिससे यहाँ सागौन के वन की प्रचुरता है।² यहाँ क्षेत्र दक्षिण में सतपुड़ा पर्वतश्रेणियों में आता है। अतः भू-आकृति विज्ञान का प्रभाव चोली में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

चोली ग्राम का पुरातात्विक प्रमाण प्रोटोमाइक्रोलिथिक (पूर्ण लघुपाषाणिक) काल से

मिलते हैं। यहाँ लघु पाषाण काल के काली मिट्टी या रेगर से युक्त बर्तनों के विशाल आकार के उद्योगों के प्रमाण मिलते हैं।^१ चोली का ऐतिहासिक दृष्टि से भी विशेष महत्त्व है। प्राचीन काल में यह ग्राम चालुक्य वंश के राजाओं की राजधानी था एवं 10 मील के क्षेत्रफल में बसा हुआ था। आर्इन-ए-अकबरी में इसका उल्लेख सरकारी माण्डू के महान् चोली महेश्वर के नाम से जाना जाता था। तदुपरान्त 9वीं शती में परमार वंश का शासन हुआ। इस क्षेत्र में वास्तुकला और मूर्तिकला का अभूतपूर्व विकास हुआ। परमार शासनकाल में यहाँ कई मन्दिर व इमारतों का निर्माण किया गया। इसके बाद सन् 1728 मल्हारराव प्रथम ने इसे अपने अधिकार में ले लिया। उन्होंने प्रशासकीय दृष्टि से प्रमुख निवास चोली में रखा तथा महेश्वर में फौजी छावनी स्थापित की गयी। सन् 1767 में देवी अहिल्या ने महेश्वर को राजधानी बनाया। फलतः चोली ग्राम का ऐतिहासिक महत्त्व कम हो गया।^१ होलकर वंश के शिवाजीराव होल्कर की धात्री माँ राधाबाई इसी ग्राम की थीं। राधाबाई के पति फकीरचन्द ठाकुर के परिवार को होल्कर घराने से चोली ग्राम का खर्च दिया जाता था।

शैव साधना केन्द्र ओंकार मान्धाता के अंतर्गत महेश्वर, वेदान्त चिन्तकों का केन्द्र था। मण्डलेश्वर वैदिक काण्ड का केन्द्र था। चोली वाममार्गीय तान्त्रिक साधनों का केन्द्र रहा। इसके प्रमाण में यहाँ पर रुद्रावतार मारुति की मूर्तियाँ हैं। आधी मूर्ति का तान्त्रिक साधना में महत्त्व होता है। वाममार्गीय साधना का केन्द्र होने से इस ग्राम का नाम 'चोली' पड़ा है। इस ग्राम में गौरी-सोमनाथ, गणेश, भैरव, भैरवी, ओंकारेश्वर आदि के अति प्राचीन मन्दिर हैं।

गौरी-सोमनाथ मन्दिर— ग्राम चोली में यह मन्दिर परमारकालीन है। यह एक टीले पर निर्मित है एवं सरोवर किनारे है जो वनाच्छादित क्षेत्र है। पहाड़ी पर निर्मित होने के कारण सीढ़ियों पर चढ़कर मन्दिर में प्रवेश करना होता है। इस मन्दिर के सभा मण्डप में तीनों दिशाओं में खुले सीढ़ियों के प्रवेश द्वार हैं। सभामण्डप 32' 32' का है। सभामण्डप में 16 प्रस्तरखण्ड हैं। इसकी छत पर गोल कंगूरे बने हुए हैं। साथ ही मण्डप के गोल छत में में राधा-कृष्ण एवं गोपियों की रासलीला रचाते हुए मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह से 24 फीट की दूरी पर सामने सभामण्डप में काले पत्थर की नन्दी की मूर्ति है। मध्यभाग में कछुआ है एवं 6 फीट का अन्तराल है। गर्भगृह में एक ही पाषाण का आदमकद 6 फीट का भव्य शिवलिंग है। मूर्ति की पीठ गोल है। शिवलिंग की गोलाई इतनी है कि दो आदमियों के बाहों में भी आसानी से नहीं समा सकती है।^१ इतना बड़ा शिवलिंग भारत में बिरले स्थानों पर ही देखा जा सकता है। सीढ़ियों से ऊपर जाकर जलाभिषेक करने की पूर्ण व्यवस्था है। गर्भगृह की छत गोल लहरों से युक्त है। शिखर चूने व प्रस्तरों से निर्मित है। शिखर के मध्य में बाहर की ओर शेर बना हुआ है। अधिष्ठान व जंघा के ऊपर शिखर निर्मित है जो कि भूमिज शैली में है। मुख्य शिखर के चारों ओर उरुशृंग है। शिखर को छोटे से बड़े रूप में विभाजित कर आमलक, आमलक सारक व कलश बने हुए हैं जो एक के बाद एक पृष्ठ शिखर पर चार भाग में हैं।

परमार राजाओं द्वारा निर्मित इस मन्दिर का जीर्णोद्धार होल्कर वंश की कृष्णाबाई माँ

साहिबा ने करवाया था। सामने की ओर अहिल्याबाई द्वारा निर्मित सभामण्डप है जिसके ऊपर छतरी है। यह मन्दिर दार्शनिक रूप से आत्माभिमुखी होने के लिए प्रसिद्ध है।

मन्दिर के सामने एक दीप स्तम्भ है।⁶ जनश्रुति है कि रानी रूपमति यहाँ पर शाम को दीप प्रज्ज्वलित करती थीं और उसकी लौ माण्डव के बाजबहादुर महल से दिखाई देती थी। इस क्षेत्र की युवती का पता चलने पर राजा ने उनसे विवाह कर लिया।

भैरवान् मन्दिर— नवम शताब्दी का यह परमारकालीन मन्दिर कालभैरव का प्रसिद्ध मन्दिर है। पूरा मन्दिर पाषाण का बना हुआ है। कालभैरव की मूर्ति पूर्णरूपेण सिन्दूर से निर्मित है। दीवारों में विभिन्न योगनियों की पाषाण मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के बाहर चारों दिशाओं में गणेश की चार मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।⁷

ओंकारेश्वर मन्दिर— ओंकारेश्वर नाम का भग्न शिवमन्दिर है। जनश्रुति है कि यहाँ पाण्डव रुके थे और एक ही रात्रि में मन्दिर को पूर्ण करना था, परन्तु रात्रि में आधा ही मन्दिर बन पाया था। अतः अर्द्धनिर्मित मन्दिर छोड़कर मान्धाता की नगरी में चले गये और उस नगरी में ओंकारेश्वर का पूर्ण मन्दिर बनाया।

गणेश मन्दिर— यहाँ एक अति प्राचीन गणेश मन्दिर भी है जो पत्थरों से बना हुआ है। गर्भगृह में इस मूर्ति की ऊँचाई 10 फीट है। गणेश जी की यह मूर्ति नृत्य मुद्रा में है और देखने में भव्य लगती है। गणेश जी के चार हाथ हैं। एक हाथ में मोदक पात्र, दूसरे हाथ में अश्वमाला और एक हाथ में कुठार दिखाया गया है। आसन के रूप में लड्डू खाते हुए चूहा भी दिखाई देता है।⁸ मन्दिर के अन्दर भगवान् शंकर का एक उपज्योतिर्लिंग बना है। दीवार में देवी की मूर्ति है।

यहाँ स्थित गढ़ियों एवं बुर्ज पर छोटे-छोटे हनुमानजी बने हैं। अगर यह मन्दिर पूर्ण हो जाते तो बंगाल के तांत्रिक केन्द्र जैसा होता परन्तु हनुमानजी के मन्दिरों की संख्या तांत्रिक साधना के तहत पूर्ण नहीं हो पायी।

यह क्षेत्र परिवहन के साधन से परिपूर्ण है। वायु परिवहन के लिए 100 किमी० दूर इन्दौर में देवी अहिल्या एयरपोर्ट है। खण्डवा व इन्दौर से अजमेर मार्ग पर रेल परिवहन सुविधा उपलब्ध है। सड़क परिवहन के लिए इन्दौर-आगरा राजमार्ग 100 किमी० दूरी पर स्थित है। आवासीय सुविधा महेश्वर के नर्मदा रिसोर्ट, मध्यप्रदेश पर्यटन विकास निगम लि० द्वारा संचालित है।⁹ मण्डलेश्वर में शास्त्रीलाल एवं श्रीराम धर्मशाला भी उपलब्ध है। स्थानीय बाजार में हस्तकला शिल्प की वस्तुएँ, जैसे— पत्थर के शिवलिंग, सीप व बाँस की टोकरियाँ, खिलौने, काष्ठ पात्र, चौखट व काँटन की महेश्वरी साड़ियाँ भी प्रसिद्ध हैं।¹⁰ वैशाख शुक्ल चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को भैरव के सम्मान में एक मेला लगता है जिसमें लोग दूर-दूर के स्थानों से सम्मिलित होते हैं।¹¹

चोली का ऐतिहासिक व प्राकृतिक वैभव आज भी इतना आकर्षक है कि वहाँ

जानेवाला प्रत्येक व्यक्ति इस बात की प्रशंसा किये बिना नहीं रहता कि महान् कलापण्डितों ने एवं वाममार्गी साधकों ने अपनी साधना के लिए चोली के रूप में जिस स्थान को चुना, वह सर्वथा उपयुक्त था।

मन्दिरों का पुरातन महत्त्व, जो प्रतिमाओं की भावभंगिमाओं में और उनके मन्दिरों के आकार के रूप में हमें देखने को मिलता है, के पीछे मूल आशय दार्शनिक रूप में तत्त्वशास्त्री सिद्धान्त प्रकट होता है। इस तत्त्वशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार चिन्तन-मनन करते हैं कि मन्दिरों का भव्य आकार दार्शनिक पर्यावरण के निर्माण में सहायक होता है। जो उस परमात्मशक्ति को देवत्वरूप में मन्दिरों के आकार-प्रकार में स्थापित कर मानवीय मनोवृत्ति को एक अच्छा संकेत प्रदान करता है। यहाँ हम जो पुरातन महत्त्व की दृष्टि से मानवीय कुशलता की सराहना करते हैं कि परमात्मशक्ति असीम व अद्वितीय है। उसे भले ही पार्थिक रूप में स्वीकार करें या दार्शनिक मनोभावों को प्रेरित करने के लिए, यह उत्कृष्ट प्रेरणास्रोत बनता है।

सन्दर्भ :

1. कुमार पूर्णेन्द्र, *मध्यप्रदेश : विस्तृत अध्ययन*, अरिहन्त पब्लिकेशन (ई) प्रा० लि०, मेरठ, 2008, पृ० 86
2. न्याति, जानकीलाल, खन्ना, बी०एल०, *भारत का भूगोल*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, भोपाल, 2008, पृ० 275
3. *दि एक्सकेवेशन्स एट महेश्वर एवं नावदाटोली : 1952-'53*, डॉ० एच०डी० सांकलिया, पृ० 21
4. *स्टेट गज़ेटियर*, वॉल्यूम 4, 1931, पृ० 18
5. डॉ० वासुदेव उपाध्याय, *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान*, पृ० 164
6. *इण्डियन आर्कियालॉजी : ए रिव्यू*, 1959-60, पृ० 69
7. *माहिष्मती स्मारिका*, पृ० 95
8. डॉ. वासुदेव उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ० 145
9. www.narmadaresort.com
10. www.mptourism.com
11. श्रीवास्तव प्रेमनारायण, *पश्चिमी निमाड़ गज़ेटियर*, भोपाल, पृ० 467





20.

अग्निकुण्डों एवं मन्दिरों का प्रारम्भिक केन्द्र : दंगवाड़ा (उज्जैन)

डॉ० प्रीति पाण्डे

मन्दिर मनुष्य के धर्म अर्थात् आस्था से जुड़ा हुआ वह केन्द्र है जहाँ वह परमशक्ति के अस्तित्व की कल्पना करता है एवं उसकी प्रार्थना द्वारा उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता रहता है। मन्दिर से पूर्व भी वह प्राकृतिक शक्तियों का सम्मान एवं पूजन करता था जो उसके नियंत्रण से परे थी एवं जो उसके लिए उपयोगी सिद्ध होती थी, यथा— जल (नदी एवं वर्षा), अग्नि, पवन आदि।

मन्दिर अथवा तत्संबंधी स्थापत्यों के प्रारम्भ का प्रश्न सदैव खड़ा होता है और उत्तर कभी भी ऐतिहासिक काल के पीछे नहीं जा पाता है। इस संगोष्ठी के कारण इसके प्रारम्भ की प्राचीनता को जानने की चेष्टा की तो अनायास ही एक नवीन तथ्य सामने आया। मालवा की ताम्रपाषाणिक संस्कृति के एक उन्नत केन्द्र दंगवाड़ा के उत्खनन में कुछ ऐसे स्थापत्यिक अवशेष प्राप्त हुए हैं जो सीधे तौर पर मन्दिर एवं अग्निकुण्ड से संबंधित हैं। इसी विषय को विस्तृत स्वरूप में प्रस्तुत करना ही इस पत्र का अभीष्ट है।

दंगवाड़ा (50.30° पू० देशान्तर एवं 23°10' उ० अक्षांश) उज्जैन जिले में चम्बल नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित एक ग्राम है।¹ यह उज्जैन से 26 किमी० दूर बड़नगर मार्ग पर स्थित है। डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर जी ने इस स्थल को 1966 में सर्वेक्षित किया था। उसके आधार पर 1978-'79 एवं 1979-'80 में निर्देशक, पुरातत्त्व एवं संग्रहालय मध्यप्रदेश एवं

विक्रम विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वाधान में वाकणकर जी एवं अन्य सहयोगियों के द्वारा यहाँ उत्खनन संपन्न हुआ था।

दंगवाड़ा में एक टीला है जो एल आकार का है इस पर आठ खातें लगाकर उत्खनन-कार्य किया गया। इस उत्खनन में ताम्रपाषाण काल की अहाड़ संस्कृति से लेकर परमारकाल तक कुल पाँच प्राचीन सांस्कृतिक स्तर प्राप्त हुए हैं।

यहाँ से मन्दिर एवं अग्निकुण्डों के प्राचीनतम प्रमाण मिलते हैं। उत्खनन के निम्नतम स्तरों पर ऐसे ध्वंसावशेष मिले हैं जिनके मन्दिर होने का आभास होता है। साथ ही कई अग्निकुण्डों के भी प्रमाण मिले हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थल धार्मिक कार्यों एवं अनुष्ठानों से सम्बन्धित रहा होगा।

उत्खनन में काल क्रमांक आई०बी० (2) में एक आयताकार ध्वंसावशेष मिला है जिसके समीप यूपस्तम्भ भी मिला है। यहाँ एक यज्ञशाला है जिसमें पाँच अग्निकुण्ड हैं। यूपस्तम्भ 25-27 सेमी० चौड़ा है जिसमें सागौन की लकड़ी के अवशेष गर्त से प्राप्त हुए हैं। कुण्ड के समीप तीन काले एवं लाल पात्र हैं जिसमें चावल, गेहूँ एवं उड़द मिले हैं। ये सभी पूर्ण रूप से कार्वनीकृत हो चुके हैं।¹

यज्ञशाला के समीप एक अन्य ढाँचा है इसे पुरातत्त्वविद् मन्दिर मानते हैं। यह 1.2 मीटर लम्बा एवं 0.7 मीटर चौड़ा है। यह ईंट का बना है एवं दोनों ओर से मिट्टी से प्लास्टर करा हुआ है। यद्यपि मन्दिर में कोई भी अवशेष नहीं मिला है तथापि कुछ तिकोनी वस्तुएँ हैं जो सम्भवतः मातृमूर्तियों का प्रतीकांकन है। कुछ मिट्टी के दीपक हैं जो घर के उत्तर-पूर्वी कोने में हैं। इस मन्दिर के 1.15 मीटर दक्षिण की ओर एक ओर अग्निकुण्ड मिला है। यह आयताकार एवं 1.95 गुने 1.5 मीटर विमाओंवाला है। यह कुण्ड चारकोल से भरा हुआ है। कुण्ड की चारों दीवारों पर जल लकड़ी का कोयला लगा है जिसे मिट्टी से प्लास्टर करके बनाया गया था। इसी स्तर पर एक अन्य भवन मिला है जिसमें कई प्रकार के पात्र मिले हैं। इसके साथ ही यहाँ जले हुए अनाज एवं जली लकड़ी के भी अवशेष मिले हैं।

कई ऐसे घर भी प्राप्त हुए हैं जिनमें पूजाघर एवं अग्निकुण्ड मिले हैं। एक भवन में प्लेटफॉर्म-जैसा आधार भी मिला है जो सम्भवतः मन्दिर का आधार प्रतीत होता है।

इसी स्थल पर पुनः शुंग-कुषाणाकालीन अग्निकुण्ड प्राप्त होते हैं। इनका माप 4 गुने 3.85 मीटर है। यहाँ एक टेराकोटा सील मिली है जिस पर 'दामोदर याजायी' अंकित है। यहाँ पर एक ताम्र अंगूठी एवं जला अनाज मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुनः इस काल में यह स्थल मन्दिर अथवा धार्मिक स्थल बन चुका था। यहाँ से एक लेंसनुमा उपकरण भी मिला है जिससे सम्भवतः सूर्य के प्रकाश के माध्यम से अग्नि उत्पन्न की जाती होगी। वाकणकर जी इसे सूर्यकान्त मणि कहते हैं।²

इस प्रकार दंगवाड़ा-उत्खनन के कई प्रमुख स्तरों में हमें मन्दिर एवं अग्निकुण्डों के

साक्ष्य मिले हैं। उत्खननकर्ता श्री विष्णु श्रीधर वाकणकर जी का मानना है कि स्तर-विन्यास के आधार पर एवं कार्बन डेटिंग के आधार पर प्राथमिक उदाहरण ताम्रपाषाण संस्कृति की मालवा संस्कृति (1600 ई०पू०) से सम्बन्धित थी। उनका मानना था कि इस स्थल में पाए गए ये अकेले उदाहरण हैं।¹ चूंकि ऐसे उदाहरण ताम्रपाषाण संस्कृति में लगभग न के बराबर हैं, ऐसे में यदि हम ऐसा मानें कि दो उदाहरण अपनी तरह के प्राचीनतम उदाहरण हैं तो निश्चित ही सर्वमान्य होगा। पुरातत्त्व की यही सीमा होती है कि जब तक किसी नवीन अवधारणा की पुष्टि विभिन्न साक्ष्यों, सूत्रों एवं उदाहरणों के रूप में नहीं होती है, तब तक वह मान्य नहीं होती है। किन्तु शुंग-कुषाणयुगीन अग्निकुण्डों एवं मन्दिरों के उदाहरणों को साथ रखकर देखें तो हम पाते हैं कि दंगवाड़ा न केवल उज्जैन का, वरन् मध्यभारत का वह प्रथम स्थल है जहाँ के उत्खनन में हमें मन्दिर एवं अग्निकुण्डों की प्रथम संकल्पना मिलती है। निश्चित रूप से यह तथ्य अपने आपमें अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिन मन्दिरों का स्थापत्यिक प्रारम्भ हम गुप्तकाल में फलीभूत पाते हैं, उनकी नींव उससे लगभग 1400 से 2000 वर्ष पूर्व दंगवाड़ा में संकल्पित की जा चुकी थी।

सन्दर्भ :

1. दंगवाड़ा उत्खनन रिपोर्ट, मालविका, वी०एस० वाकणकर एवं एम०डी. खरे, पृ० 92
2. यज्ञकुण्ड एण्ड टेम्पल इन चाल्कोलिथिक इण्डिया, वी०एस० वाकणकर, अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० 162
3. वही, पृ० 163
4. दंगवाड़ा उत्खनन रिपोर्ट, पूर्वोक्त, पृ० 92





21.

नागेश्वर मन्दिर, बड़वाह

डॉ० मंगला ठाकुर

प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह

डॉ० सुमेर सिंह सोलंकी

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, एस०बी०एन० शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बड़वानी

बड़वाह की भौगोलिक स्थिति $22^{\circ} 15'$ उ० तथा $76^{\circ} 02'$ पू० है।¹ मध्यप्रदेश की जीवनदायिनी पतितपावनी नर्मदा के उत्तर-पूर्वी छोर पर मात्र 03 किमी० की दूरी पर स्थित यह नगर बड़वाह, इन्दौर और खण्डवा मार्ग पर लगभग समान दूरी पर है। ब्रिटिश-होलकरकालीन अजमेर-खण्डवा मीटर गेज रेलवे लाइन यहाँ से होकर गुजरती है।

बड़वाह नगर पर प्रकृति ने अपनी सभी घटाओं को बिखेरा है। दक्षिण में 3 किमी० की दूरी पर नर्मदा, पूर्व में चोरल एवं बड़ाली नदी, उत्तर में विन्ध्य पर्वतशृंखला, सघन वन, झरने, जंगली पशु-पक्षियों से युक्त है। इन्दिरा सागर, ओंकारेश्वर बांधों ने तो पूर्व-पश्चिम निमाड़ में नहरों का जाल बिछा दिया है।

नगर के पूर्व दिशा में पुराने बड़वाह (प्राचीन बस्ती) में बड़ाली नदी के समीप नागेश्वर कुण्ड एवं मन्दिर, बड़वाह की पहचान बनाते हैं। इस नगर को भूतभावन भगवान नागेश्वर की नगरी के नाम से जाना जाता है।²

नगर के आराध्य देव नागेश्वर के प्रसिद्ध मन्दिर का इतिहास सैकड़ों वर्ष पुराना है। यहाँ पर विराजित शिवलिंग स्वयंभू है और इस प्रकार के शिवलिंग में कृत्रिम चिकनी पिण्डाकार बनावट एवं नाग, जनेऊ इत्यादि के निशान मौजूद नहीं हैं, बल्कि असमतल है।

ऐसी किंवदन्ती है कि पाँच-छः सौ वर्ष पूर्व ऊँची-नीची पहाड़ियों के मध्य यहाँ एक

गड्डे में चरवाहे को शिवलिंग के दर्शन हुए थे, तभी से एक सन्त नियमित पूजा-अर्चना एवं जलाभिषेक किया करते थे। उन तपस्वी संत की शिवलिंग में अगाध श्रद्धा थी। वह प्रतिदिन नर्मदाजी स्नान के लिए जाते और वहाँ से जल लाकर शिवलिंग का अभिषेक करते थे। यह क्रम अनवरत चलता रहा। संत ने वृद्धावस्था में शारीरिक दुर्बलता से अनेक कष्ट सहकर भी नर्मदा जल से शिवलिंग का अभिषेक जारी रखा। एक बार अत्यन्त रुग्णावस्था में वे नर्मदाजी गये तब नर्मदाजी वहाँ प्रकट हुई और सन्त से बोलीं, 'अब आपको मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है, मैं स्वयं ही शिवलिंग के समीप प्रकट हो जाऊँगी, जहाँ से आप स्नान और जलाभिषेक—दोनों कर सकते हो।' संत ने उनसे पूछा, 'माँ, मैं कैसे समझूँगा कि आप ही वहाँ विराजित हुई हो?' तब माँ रेवा ने कहा, 'बेटा तुम तुम्हारी लाठी यहाँ मुझमें प्रवाहित कर दो, वहीं तुम्हें मिलेगी और इसमें हीरे भी मिलेंगे।' कुछ दिनों बाद शिवलिंग के निकट एक जलधारा प्रस्फुटित हुई। उसी में से वह लाठी भी निकली, जिसे एक ग्वाले ने उठाकर रख ली। संत ने जब ग्वाले से अपनी लाठी माँगी तो विवाद बढ़ने के स्थिति में दोनों तत्कालीन राणा शासक के पास पहुँचे। राणा ने लाठी के स्वामित्व के लिए साक्ष्य सबूत माँगे। ग्वाला तो सबूत दे नहीं सका किन्तु संत ने इस लाठी में हीरे होने की बात कही। जब लाठी की मूठ खोली गई तो उसमें से हीरे निकले। इस तरह संत की सच्चाई पर राणाजी ने संत को लाठी लौटा दी।

प्रारम्भ में शिवलिंग पर एक मढ़िया थी, किन्तु बाद में वहाँ मन्दिर का निर्माण किया गया। इस मन्दिर के शिवलिंग में सदैव चैतन्य नाग-नागिन का जोड़ा लिपटा रहता था। इसलिए इस मन्दिर को 'नागेश्वर' नाम दिया गया।^३

मन्दिर का पूरा परिसर 125 गुने 125 का आयताकार है। यहाँ पहुँचने के लिये 30 सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं। परवर्ती होल्कर-शासकों ने पूरे परिसर को किलेनुमा अभेद्य दीवारों से सुरक्षित कर दिया है।^४ मन्दिर में विराजित शिवजी एवं कुण्ड के दर्शन बिना नीचे जाये, ऊपर से भी किए जा सकते हैं। मन्दिर के चारों ओर भग्नावेश में दीप स्तम्भ आज भी अपने होने की गवाही देते हैं।

नागेश्वर के कुण्ड को गोमुखाकार बनाया गया था जहाँ से स्वच्छ, शीतल और मीठा जल सदैव बहता रहता था। चारों दिशा से मन्दिर में प्रवेश के लिये चार पुलियाँ लगाई गई हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि चार कुण्ड हैं जबकि कुण्ड एक ही है।

मुख्य शिव मन्दिर पश्चिमोमुखी होकर नागर शैली में निर्मित है। मन्दिर का निर्माण काले पत्थरों से किया गया है। मण्डप में नन्दी विराजित हैं। ड्योढ़ी बहुत भारी एवं अलंकरणयुक्त चौरस है। यहाँ जहाँ यक्ष-यक्षिणियों एवं द्वारपालों की सुन्दर प्रतिमाएँ उकेरी हुई हैं, वहीं ऊपर शिवपरिवार के प्रथम पूज्य गणेशजी स्थापित हैं। यह मन्दिर वर्गाकार है। मन्दिर की जंघाएँ पञ्चरथी हैं, जिनमें विविध देवी-देवताओं की भग्न मूर्तियाँ हैं। प्रत्येक भुजा के बीच से प्रक्षेप निकलकर क्रमशः ऊपर तक चला गया है। शिखर पर खड़ी रेखाएँ हैं, इसे रेखीय शिखर भी कह सकते हैं। शीर्षभाग आमलक रूपी है। गर्भगृह में शिवलिंग के ठीक सामने

गवाक्ष में देवी पार्वती एवं दक्षिण दिशा में कार्तिकेय की प्रतिमा है।

देवी अहिल्या के आराध्य देव, भूतभावन भगवान शिवजी का मन्दिर होने से मातुश्री यहाँ विशेष अवसरों पर दर्शन करने आया करती थीं। 1783 में मार्गशीष शुक्ल प्रतिपदा को भी माता अहिल्या देवी का यहाँ दर्शनार्थ अपनी तत्कालीन राजधानी महेश्वर से आई थीं।⁵ उन्होंने भी मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था।⁶

मन्दिर के उत्तर में बायीं ओर गणेश मन्दिर तथा दक्षिण में हनुमान् मन्दिर भी बनाए गये। नागेश्वर मन्दिर के पीछे पूर्व दिशावाले परकोटे की दीवार पर दूसरी और गोमुख बना था, जहाँ से कुण्ड के स्तर को बनाए रखते हुए अतिरिक्त पानी मन्दिर के पीछे बहनेवाली बड़ाली नदी में छोड़ने की व्यवस्था की हुई थी। इससे नदी जीवन्त अवस्था में वर्षभर पानी से लबालब रहती थी।

बड़वाहवासी वे श्रद्धालु, जो स्नान के लिए नर्मदा तट नहीं जा सकते थे, प्रतिदिन, पर्व-त्योहारों पर गोमुख से निकले नर्मदा जल से स्नान कर लिया करते थे। इस कुण्ड का महत्त्व इतना अधिक था कि नर्मदा परिक्रमावासी अपनी पुरानी परम्परा का निर्वाह करते हुए आज भी इस मन्दिर की परिक्रमा करे बिना नहीं जाते हैं।⁷

मुख्य मन्दिर के बाहर चार शिवलिंग हैं जिसमें से 1. कुबेर भण्डारी लक्ष्मीजी की आसीम कृपा प्रदान करनेवाले, 2. ऋणमुक्तेश्वर की अपने समस्त प्रकार के ऋण से मुक्त होने के लिये, 3. रामेश्वरम् की अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्ति हेतु एवं 4. घृणेश्वर नामक लिंग की स्थापना जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति अर्थात् पुरुषार्थचतुष्टय में अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण— मोक्षप्राप्ति की कामना पूर्ति हेतु किए गए हैं।

मन्दिर की पुजारीन सुश्री रेखा गोस्वामी भारती हैं, जो इस वंश-परम्परा की 12वीं पीढ़ी हैं। इसी कुण्ड के जल से सन् 1985 तक पेयजल वितरण व्यवस्था हेतु नगरपालिका द्वारा केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल के परिसर सहित सम्पूर्ण बड़वाह नगर को जल वितरित किया जाता था। मन्दिर पुजारी श्रीहरीदासजी भारती के समय 25-30 वर्ष पूर्व तक मन्दिर की प्राकृतिक जलधारा पूरी तरह बंद हो गई है। सम्भवतः कम बरसात एवं ट्यूबवेल और नलकूपों के अत्यधिक उत्खनन से भूमिगत जलस्तर कम हो गया है। इससे मन्दिर ने अपना प्राचीन वैभव खो दिया था। किन्तु 2008-'11 के मध्य नगरपालिका प्रशासन एवं विधायक निधि से मन्दिर के सौंदर्यीकरण हेतु जलकुण्डों को भरने की व्यवस्था, फव्वारों का चलना इत्यादि व्यवस्था की, जिससे मन्दिर ने अपना वैभव पुनः प्राप्त कर लिया है। श्रावण मास एवं हर सोमवार को यहाँ नाग-नागिन के जोड़ों के साक्षात् दर्शन होते हैं, जो अपने इष्ट के नाम 'नागेश्वर' को सार्थक करते हैं। हमारे एवं कई लोगों के द्वारा आज भी नाग-नागिन का जोड़ा भूतभावन भगवान नागेश्वर पर लिपटा हुआ देखा गया है, जो शायद भाग्यवान को ही ऐसा अवसर प्रदान करते हैं। इस प्रकार महादेव बड़वाह में आज भी अपने नाम नागेश्वर की महिमा,

गरिमा बनाए हुए हैं।

सन्दर्भ :

1. पश्चिम निमाड़ स्टेट गज़ेटियर, पृ० 432
2. वही, पृ० 433
3. जनश्रुति एवं मन्दिर के पुजारी के कथनानुसार
4. वही
5. सांगाती, न०वा० मुल्ले, पृ० 98
6. वही, पृ० 90
7. पश्चिम निमाड़ दर्शिका, रमेश बम, निर्मल प्रकाशन, 1977





22.

चम्बल परिक्षेत्र के भदावर में अनोखा प्राचीन मन्दिर

डॉ० एम०डी० मिश्र

पूर्व प्राफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास, पुरानी कचहरी, सिंहपुर रोड, पो०
मुरार, ग्वालियर

भदावर का इतिहास प्रमुखतः मध्यकाल में ही प्रस्तुत होता है, जब चौहानों की एक शाखा भदौरियों ने इस क्षेत्र पर अपनी सामंतीय सत्ता स्थापित की। यद्यपि भदावर का क्षेत्र राजस्थान तक विस्तृत विस्तृत था, तथापि भदावर नरेशों ने भिण्ड के समीप स्थित अटेर में ही 'देवगिरि दुर्ग' निर्मित कर इसे अपनी राजधानी बनायी।

किन्तु, चम्बल के तीर पर स्थित एक भग्नावशेष यहाँ के इतिहास को प्राचीनकाल तक ले जाता है, यह है भिण्ड में अटेर के समीप स्थित खेरहट ग्राम का लगभग आठवीं शती का एक देवालय, जो स्थापत्य की दृष्टि से अनोखा है क्योंकि यह ईंटों से निर्मित हुआ। ऐसे ईंटों के मन्दिर भारतवर्ष में अत्यल्प मिलते हैं। इसे कुछ इतिहासज्ञ 'मर्बदे' का मन्दिर और कुछ खेरहट का देवालय कहते हैं। इसके इतिहास के स्रोत अत्यन्त सीमित हैं; क्योंकि पूर्व से ही दस्युपीड़ित होने के कारण यह क्षेत्र शोधकों के लिए लगभग अगम्य रहा। 1830 में सर्वप्रथम श्री एम०वी० गर्दे ने *ग्वालियर स्टेट गज़ेटियर* में इसका कुछ विवरण प्रस्तुत किया। गर्दे, ग्वालियर स्टेट आर्कियोलॉजिकल सर्वे डिपार्टमेंट के सुपरिंटेंडेंट थे। उन्होंने खेरहट मन्दिर का जीर्णोद्धार तो कराया, किन्तु इसका विस्तृत विवरण नहीं दिया। 1950 के दशक में ग्वालियर के ही डॉ० हरिहरनिवास द्विवेदी ने इसका ऐतिहासिक सर्वेक्षण कर अपनी प्रसिद्ध कृति *मध्यभारत का इतिहास* (प्रथम खण्ड) में इसे हिंदी में सचित्र प्रकाशित किया। किन्तु इसमें मन्दिर के वास्तु

अंगों का समुचित विवरण नहीं मिलता। 1979 में जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर के प्राचीन इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ० आर०एन० मिश्र के सहयोग से नयी दिल्ली के शास्त्रीय इण्डोकेनेडियन इंस्टीट्यूट के तत्वावधान में श्री माइकेल डी विलिस ने स्वयं खेरहट मन्दिर का भ्रमण कर सबसे अच्छा विवरण जीवाजी विश्वविद्यालय की पत्रिका *मनीषा* में अंग्रेजी में लिखा। 1983 में मैंने स्वयं अपने कुछ साहसी छात्रों के सहयोग से अटेर क्षेत्र के सर्वेक्षण के अंतर्गत इस देवालय के दर्शनकर फोटोग्राफ लिए और अपने तत्संबंधी निष्कर्ष प्रस्तुत किए, जिसका संक्षिप्त अंश यह शोध-पत्र है। उस समय भी यह अनोखी कृति उपेक्षित-सी पड़ी थी। ईंटें गिर रही थीं। जहाँ तक अन्य स्रोतों का सम्बन्ध है, डॉ० कृष्णदेव और भोजकृत *समरांगणसूत्रधार* से इसकी वास्तुशैली की तुलनात्मक समीक्षा की।

खोज और जीर्णोद्धार— जैसा कि हमने देखा है कि सर्वप्रथम 1930-31 में गर्दे महोदय ने इस क्षेत्र का गहन सर्वेक्षण कर खेरहट के मन्दिर के भग्नावशेषों को सहेज उन्हें पुनर्स्थापित किया था। यहाँ चतुर्दिक झाड़ियों को साफ कर बीहड़ों का समतलीकरण किया गया। इसके प्लेटफार्म पर ईंटों को नये सिरे से संयोजितकर उन पर प्लास्टर किया गया। देवालय के समीप पड़े प्रस्तर प्रवेश-द्वार को मन्दिर से फिर सम्बद्ध कर दिया गया। गर्भगृह में चबूतरे को नये सिरे से बनाकर देवमूर्ति की पुनर्प्रतिष्ठा कर दी गई। शिखर और गर्भगृह के कक्ष पर कंक्रीट का नया प्लास्टर लगाया गया। चतुर्दिक् बिखरे मूर्तिशिल्प को साफकर उसे मन्दिर में संयोजित किया गया। इस प्रकार गर्दे साहब ने 'मर्बदे' में नये प्राण फूंक दिए थे।

निर्माण-तिथि— दुर्भाग्यवश इस मन्दिर से कोई अभिलेख न मिलने के कारण हमें इसकी तिथि-निर्धारण की समस्या से जूझना पड़ा। तब इसकी वास्तु और शिल्पशैलियों को इतिहासज्ञों ने आधार बनाया। स्वभावतः ही समीपस्थ गोपक्षेत्र (ग्वालियर) के देवालयों की ओर इतिहासकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इनका गहन सर्वेक्षण कर यह ज्ञात हुआ कि ये खेरहट से कितना साम्य रखते हैं। चूँकि ये मन्दिर 7वीं-9वीं शती के मध्य निर्मित हुए थे, अतः परीक्षणोपरांत खेरहट के देवालय का काल 8वीं शती के चतुर्दिक् निश्चित किया गया। दूसरे, खेरहट मन्दिर में प्रयुक्त 'अष्टभद्र' शैली का प्रयोग उत्तर भारत में 8वीं शती के मन्दिरों में अधिक हुआ था। यद्यपि ये सब प्रस्तर-निर्मित थे। इसके अतिरिक्त खेरहट मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर उत्कीर्ण मूर्तिशिल्प भी 8वीं शती का प्रतीत होता है।

वास्तुशिल्प

वास्तुशिल्प का विवरण वास्तुशास्त्र के तकनीकी नामों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

तलछंद— 'मर्बदे' मन्दिर ईंटों से निर्मित है। इसे 'अष्टभद्र' प्रकार का कहा गया है। इसमें आठ भद्र गर्भगृह के चतुर्दिक् निर्मित है। सात भद्र तो स्पष्ट हैं किन्तु आठवाँ आंतरिक द्वार के पार्श्व में अवस्थित है। भद्रों के बीच में 'कर्ण' बने हैं। ये सब भोजकृत *समरांगणसूत्रधार* की व्यवस्थानुसार है। उक्त का विकसित स्वरूप कालांतर के 'भूमिज' शैली के मन्दिरों में दृष्टव्य है।

चतुर्भुजी गर्भगृह में मूर्ति के लिए पेडस्टल है और 'अंतराल' की उपस्थिति भी देखी जा सकती है।

मण्डप नहीं है तथा 'प्राग्रीवा' का मान दो लघुस्तम्भों से कराया गया है। 'प्राग्रीवा' तत्कालीन उत्तर भारतीय मन्दिरों की प्रमुख विशेषता रही है। इसके साथ ही यहाँ प्रस्तर के 'लिटल' भी उपस्थित हैं। जगति आयताकार है और ईंटों से निर्मित है। 1931 में इसके ऊपर कंक्रीट का प्लास्टर कर दिया गया था। जगति के पूर्वीभाग में अर्द्धवृत्ताकार ईंट-निर्मित सीढ़ियाँ बनाई गई थीं।

ऊर्ध्वछंद

पीठ— यह वृत्ताकार और नीची है। इस पर एक चतुर्दिक् चबूतरा है जिसे 'वेदिबन्ध' कहा जाता है। इसे ईंटों पर पकाने से पूर्व कई प्रकार के अलंकरण बनाए गए थे।

गर्भगृह— गर्भगृह के स्तम्भ भी प्रस्तर निर्मित है। स्तम्भशीर्ष पर कमल और अर्द्धकमल की उकेरियाँ हैं। गर्भगृह की सीलिंग पर भी कमल बना है। वैसे गर्भगृह सादा है। उस काल में यहाँ की ईंटों पर कभी मज़बूत वज्रलेप और सफेद चूना लगाया गया होगा जिसके कुछ भाग अभी भी द्रष्टव्य हैं। गर्भगृह में इस समय कोई मूर्ति नहीं है। यद्यपि गर्दे साहब के कथनानुसार यहाँ 1931 में 'मर्दि की माता' की प्रतिमा पुनर्स्थापित की गई थी जो कि कालांतर में कदाचित् सुरक्षा की दृष्टि से ग्वालियर संग्रहालय में रख दी गई। सम्प्रति यह मूर्ति कहाँ है, यह कहना कठिन है। खेरहट का यह मन्दिर सम्भवतः देवी मन्दिर था। कुछ वर्ष पूर्व भिण्ड के किले के नीचे की ओर चक्रपाणि विष्णु की एक खड़ी प्रतिमा रखी थी। सम्भव है कि वह खेरहट क्षेत्र में ही कहीं स्थापित रही होगी।

शिखर— यद्यपि यह भग्न है, तथापि देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह अनेक स्तरों की संरचना है। नीचे से अष्टभद्र योजना का प्रभाव शिखर तक चला गया है। प्रवेश-द्वार के ऊपर एक बड़ा 'गवाक्ष' है जो मन्दिर में प्रकाश-व्यवस्था करता रहा होगा। शिखर का एक प्रमुख वास्तु अंग अम्लसारिका अर्थात् दाँतेदार मुकुट सदृश्य है। मन्दिर का पूर्वी भाग काफी ध्वस्त है।

प्रवेश द्वार संरचना— ईंटों के इस देवालय में प्रवेश द्वार की संरचना प्रस्तर की है। यह पूर्व की ओर है, इसे गर्दे साहब ने पुनर्स्थापित कराया था। द्वार संरचना के उदंबर पर दो सिंह उत्कीर्ण हैं। सील के बाह्य भाग बिना उकेरे सादे हैं। यहाँ चित्रांकन रहा होगा। 'पेडिया' पर गंगा-यमुना और चँवरधारिणियों को कालिदास के 'मूर्ते च गंगा यमुने तदानीं स चामरे' के अनुसार उकेरा गया है। ये सब काफी गहरे उत्कीर्ण हैं। विलिस का मत है कि ये आकृतियाँ इस देवालय को 9वीं शती से पूर्व की संरचना प्रदर्शित कर रही हैं। इनके उपर शाखा पर संगीत तथा नृत्यमयी आकृतियाँ हैं। 'उत्तरांग' पर नवग्रह अंकित है। यहाँ ललाटबिम्ब बिना उकेरे चित्रांकन

के लिए छोड़ा गया है। मूर्ति की अनुपस्थिति में प्रवेश द्वार का यह समस्त शिल्प हमें आज भी यह बतलाने में असमर्थ है कि मूलतः गर्भगृह में किस देवता की प्रतिमा स्थापित थी।

हमें यह ज्ञात है कि उक्त प्रस्तर प्रवेश-द्वार के समीप से ही लाकर 1931 में यहाँ स्थापित किया गया। दूसरे द्वार आकृतियों का कुछ भद्दा स्वरूप मन्दिर की वास्तुकला से कुछ भिन्न है। इस आधार पर यह शंका व्यक्त की गई कि क्या प्रस्तर-द्वार वास्तव में इसी मन्दिर का अंग है ? इसका उत्तर इतिहासज्ञों ने इस प्रकार दिया है कि इसके कारीगर मूलतः ईंटों की वास्तु के निर्माता थे, प्रस्तर की रचनाओं में वे दक्ष नहीं थे, अतः उक्त दोष रह गया होगा। फलतः इस द्वार संरचना को मूलतः खेरहट देवालय का ही अविभाज्य अंग कहने में कोई अत्युक्ति नहीं दिखाई देती। यह प्रवेश-द्वार अपनी अनेकानेक वास्तु शिल्पगत विशेषताओं के कारण इस देवालय का सर्वप्रमुख अंग कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

यह मन्दिर राजपूतयुगीन (कदाचित् परमारकालीन) प्रतीत होता है। भदावर परिक्षेत्र के इतिहास की प्राचीनता को सिद्ध करनेवाला यह मन्दिर एकमात्र प्रमाण है। भिण्ड के संग्रहालय में अवस्थित चक्रपाणि विष्णु की प्रतिमा भी प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से इस मन्दिर की समकालिक प्रतीत होती है। खेरहट मन्दिर तक की दुर्गम पहुँच और स्थानीय परिस्थितियों की विषमता ने भावी शोध-मार्ग को अवरुद्ध कर दिया, यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

- यदि ग्वालियर स्टेट आर्कियोलॉजी विभाग के गर्दे साहब ने 1931 में इसका कायाकल्प न किया होता तो इतिहास की यह अमूल्य निधि लुप्तप्राय हो जाती।
- भारत में ईंटों के मन्दिरों की अत्यल्प संख्या के सन्दर्भ में खेरहट के देवालय का महत्त्व आज द्विगुणित हो गया है। गोपक्षेत्र का यह एकमात्र ईंटों का मन्दिर है।
- देवालय में किसी अभिलेख या तिथियुक्त प्रमाण की अनुपस्थिति में इसकी तिथि का निर्धारण एक दुष्कर कार्य रहा।
- ईंटों की वास्तु में प्रस्तर-शिल्प का अद्भुत समन्वय इस देवालय की प्रमुख विशेषता है।
- 'अष्टभद्र' प्रकार के इस देवालय के अंतर्गत अण्डाकार या वृत्ताकार और आयताकार शैली के सम्मिश्रण ने इसे वास्तु की अनूठी संरचना सिद्ध कर दिया। इस मन्दिर में भूमिज शैली के अनेक तत्त्व समाविष्ट दिखाई देते हैं।
- वास्तुशास्त्र द्वारा निर्धारित तकनीकी नामकरणों के प्रयोग ने हमारे इस विवरण को समृद्धि प्रदान की है।
- हर्षोत्तर काल में भिण्ड क्षेत्र में इस मन्दिर के निर्माण ने ऐसा ऐतिहासिक तारतम्य स्थापित किया कि क्रमशः मध्यकाल में चम्बल के तीर पर एक प्रसिद्ध देवगिरि दुर्ग निर्मित हुआ और अटेर का यह क्षेत्र भदावर वंश की राजधानी बना था।

अंततः चम्बल के अनमने से सुनसान बीहड़ों में भग्न और उदास-सा खड़ा यह देवालय सम्प्रति पुनरुद्धार के लिए पुनः किसी 'गर्दे'-जैसे मसीहा की बाट जोह रहा है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि मध्यप्रदेश का पुरातत्त्व विभाग इसकी सुध अवश्य लेगा।

सन्दर्भ :

1. दृष्टव्य : सर्वे ऑफ इण्डिया मैप- 54 - जे/10 (मनीषा, मार्च, 1980, पृ० 321 (ग्वालियर विश्वविद्यालय प्रकाशन)
2. ग्वालियर स्टेट आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेन्ट, एनुअल रिपोर्ट 1930-31, पृ० 3-4
3. मध्यभारत का इतिहास, प्रथम खण्ड (ग्वालियर 1959)
4. 'दि ब्रिक टेम्पल एट खेरहट' (मनीषा, वही, पृ० 321)
5. भूमिज टेम्पल्स पृ० 90-113 (स्टडीज़ इन इण्डियन टेम्पल आर्किटेक्चर, (सं०) प्रमोद चंद्र (न्यू दिल्ली, 1975)
6. संपादक, टी०जी० शास्त्री, अध्याय 65 (बहोड़ा 1966)
7. बी०एम० गर्दे, वही, आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट, पृ० 3-4
8. समकालीन देवालयों के नाम - नरेश्वर, श्रीक्रांतीकेश्वर देव, तेली का मन्दिर, चतुर्भुज मन्दिर, बटेसर, (मुरैना, म०प्र०) पढ़ावली, कदवाहा, मरखेरा (टीकमगढ़, म०प्र०); महुआ (शिवपुरी, म०प्र०) मालादेवी (ग्यारसपुर, म०प्र०) निमियखेड़ा (उ०प्र०) आदि स्थानों के मन्दिर।
9. विलिस, वही पृ० 336
10. वही, पृ० 322, फुटनोट - 2
11. सम्पादक, टी०जी० शास्त्री, वही, अध्याय 65
12. भूमिज, टेम्पल्स, वही, पृ० 90-113
13. गर्दे, वही, पृ० 3
14. विलिस, वही, पृ० 331





23.

रामजानकी मन्दिर, ग्वालियर के लघु भित्ति-चित्रांकनों में रामकथा-प्रसंग

डॉ० कुमकुम माथुर

प्राध्यापक, चित्रकला, शासकीय कमला राजा स्नातकोत्तर स्वशासी कन्या
महाविद्यालय, ग्वालियर

ग्वालियर के जयाजी चौक से फड़णीस की गोठ की ओर जाते समय गणेश बाजार नाम से प्रचलित स्थल पर रामजानकी मन्दिर है। बाहर से देखने पर यह मन्दिर एक सामान्य निवास स्थान की तरह प्रतीत होता है। इस मन्दिर के गर्भगृह में राम, जानकी एवं लक्ष्मणजी की प्रतिमाओं के दर्शन होते हैं। पूर्व में यहाँ गणेशजी की अष्टधातु से निर्मित प्रतिमा भी स्थापित थी जो सुरक्षा की दृष्टि से अन्यत्र रखवा दी गई है। गर्भगृह के समक्ष आयताकार बरामदानुमा कक्ष है जिसकी चारों भित्तियों पर *रामायण* अथवा *रामचरितमानस* में वर्णित 24 रामकथा प्रसंगों का अंकन किया गया था। वर्तमान में 13 चित्र दृष्टिगत होते हैं, शेष धुंधले पड़ गए हैं। मन्दिर में स्थापित प्रतिमाएँ एवं चित्रांकन विषय 'राम' से संबंधित होने के बावजूद स्थानीय निवासियों द्वारा यह मन्दिर 'गिरिराज-मन्दिर' नाम से जाना जाता है, जो आश्चर्यजनक है। इस विषय पर वर्तमान में देखरेख कर रहे सभ्रान्त जन तथा आसपास रह रहे लोग कोई सन्तोषजनक उत्तर देने में सर्वथा असमर्थ हैं।

रामजानकी मन्दिर के निर्माण काल के बारे में सटीक एवं पूर्ण जानकारी वर्तमान व्यवस्थापकों को भी नहीं है। वर्तमान व्यवस्थापक श्री कमला गुप्ता जी के अनुसार इस मन्दिर का निर्माण श्री मोती मदारी सिजरिया जी ने करवाया था तथा ग्वालियर की अम्बाह महाराज की छतरी, लक्ष्मी मन्दिर एवं इस मन्दिर का भूमिपूजन एक ही दिन हुआ था।¹

रामजानकी मन्दिर के चित्र संभवतः महाराजा जनकोजी अथवा दौलतराव की छतरी के निर्माण के समय के हैं, ग्वालियर में प्रचलित लोकधारणा के अनुसार यह मन्दिर किसी छत्री के निर्माण के समय का है। इसके बाद में बनी छत्रियों में जो चित्र सृजित किये गये हैं, उन पर मराठा शैली का स्पष्ट प्रभाव है, जबकि इस मन्दिर में बने चित्रों की शैली लोकशैली से प्रभावित होते हुए भी रंग संगति, रेखा, संयोजन एवं तकनीक के कारण 'ग्वालियर कलम' के अधिक निकट हैं। मन्दिर के भित्तिचित्र लघु आकारीय हैं। 17 चित्रों का आकार 8 गुने 10 इंच है तथा दो चित्र 12 गुने 13 इंच के हैं।¹ शेष चित्र पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं। गर्भगृह के द्वार एवं खम्बों पर फूल-पत्तियां अलंकृत हैं।

इन लघु भित्तिचित्रों के निर्माण में भित्तिचित्रों की परम्परागत तकनीक प्रयोग में लाई गई है। रंग चयन भड़कीला न होकर आँखों की शीतलता प्रदान करता है। कुछ चित्रों में गहरे रंगों का प्रयोग है जो पुनर्रंगांकन किए प्रतीत होते हैं। धुंधले पड़ रहे चित्रों की शैली व रंग-योजना जनकोजी की छतरी के भित्तिचित्रों से साम्यता रखती है। ग्वालियर स्थित चितेरा ओली के बुजुर्ग कलाकारों के अनुसार गिरिराज मन्दिर अर्थात् राम-जानकी मन्दिर के भित्तिचित्रों का अंकन कन्हाई पुत्र गंगाराम द्वारा किया गया था जो लगभग 1848 के आसपास माना जा सकता है। अतः सम्भवतः ये लघु भित्तिचित्र जयाजीराव सिंधिया के शासनकाल के दौरान परन्तु शासन के संरक्षण में नहीं वरन् मन्दिर के निर्माता द्वारा व्यक्तिगत रुचि के कारण सृजित हुए।

तात्त्विक तौर पर श्रीराम को विष्णु-अवतार माना गया है।⁴ रामजानकी मन्दिर के समस्त लघु भित्ति-चित्रांकनों का विषय *वाल्मीकीयरामायण* अथवा तुलसी के *श्रीरामचरितमानस* में वर्णित विविध कथा-प्रसंग हैं। जैसे विश्वामित्र एवं मुनि वसिष्ठ द्वारा राक्षसों से मुक्ति हेतु श्रीराम को अयोध्या से ले जाना, सीता-स्वयंवर, रामविवाह, राजा जनक का वनवासी राम-सीता से मिलन का दृश्य, शूर्पणखा द्वारा श्रीराम-लक्ष्मण को रिझाना, सीता-हरण, सुग्रीव के दरबार में लक्ष्मण द्वारा वचन के स्मरण कराने का दृश्य, स्वर्ण लंका का दृश्य, श्रीराम-विभीषण भेंट, श्रीराम-कुम्भकर्ण युद्ध, राम-रावण युद्ध एवं लंका विजय पश्चात् श्रीराम की अयोध्या वापसी आदि दृश्य उल्लेखनीय हैं। ये समस्त लघु चित्रांकन अण्डाकार क्षेत्र में सृजित किए गए तथा स्वर्ण रंगों के बेलबूटों से युक्त किनार से इन्हें पूर्णता दी गई थी। इन भित्तिचित्रों पर सुरक्षा कवच के रूप में काँच की फ्रेमिंग भी की गई थी जो अब पूर्णतया नष्ट हो चुकी है।

उक्त वर्णित प्रसंगों में से कुछ लघु भित्तिचित्रों का विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत है :

1. राक्षसों के नाश हेतु श्रीराम एवं लक्ष्मण को तपोवन ले जाने का अनुरोध करत विश्वामित्र एवं वसिष्ठ— इस दृश्य में महाराज दशरथ के गोद में राम लक्ष्मण विराजमान हैं। सिंहासन के समीप माता कौसल्या हैं। श्रीराम एवं लक्ष्मण को ले जाने के लिये

वसिष्ठ जी एवं विश्वामित्र जी पधारे हैं। चित्र के ऊपरी भाग में दो-दो नारी आकृतियाँ दर्शित हैं। पृष्ठभूमि हरितवर्णीय है। वस्त्र तथा अन्य स्थानों की सज्जा हेतु स्वर्ण रंग प्रयुक्त किया गया है जो वर्तमान में कहीं-कहीं खुरच गया है। चित्र नष्टप्राय है।

2. शिवधनुष तोड़ते श्रीराम— रामजानकी मन्दिर में चित्रांकित इस दृश्य में धनुर्भंग करते श्रीराम उनके सम्मुख आशीर्वाद देते स्वयं शिव जी उपस्थित हैं। विश्वामित्र, तीनों भ्राता एवं अन्य राजाओं को दर्शाया गया है। श्री राम के समक्ष सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति खड़ी दर्शित हैं। राजा जनक की पत्नी के अतिरिक्त चित्र में रावण एवं सिद्ध मुनिगण भी दृष्टिगत हो रहे हैं। संयोजन की पृष्ठभूमि हरितवर्णीय तथा धरातलीय वर्ण श्वेत है जो फूल-पत्तियों आलेखन से अलंकृत है।

3. लंकाविजय के पश्चात श्रीराम की अयोध्या-वापसी एवं राम-भरत मिलाप का दृश्य— इस चित्र में पुष्पक विमान में श्रीराम, सीता, लक्ष्मण के अतिरिक्त हनुमान्, सुग्रीव, नल एवं नील आसीन हैं। नभ अप्सराएँ पुष्पक विमान को सहारा देती चित्रांकित हैं। इसी दृश्य के निचले भाग में अयोध्या आगमन पर भरत द्वारा राम के आत्मीय स्वागत का दृश्य चित्रांकित है। दृश्य में भरत के साथ सुमन्त, शत्रुघ्न एवं दो अन्य पुरुष पात्र दृष्टव्य हैं तथा श्रीराम के पार्श्व में लक्ष्मण, सुग्रीव एवं हनुमान् दृष्टिगत हो रहे हैं। पृष्ठभूमि हरितवर्णीय है, चहुँओर पुष्प-वर्षा हो रही है।

4. श्रीराम का राज्याभिषेक— इस दृश्य में मुनि वसिष्ठ श्रीराम का राजतिलक कर रहे हैं, समीप ही स्वर्ण सिंहासन पर राजसी वेशभूषा में आभूषणों से सुसज्जित सीता जी आसीन हैं। पार्श्व में लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न दर्शित हैं। वसिष्ठ के पीछे राजा जनक एवं हनुमान् दृष्टिगत हो रहे हैं।

रामजानकी मन्दिर में सृजित समस्त लघु भित्तिचित्रों का अध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि इन चित्रों का रेखांकन खनिज एवं वनस्पति रंगों द्वारा किया गया है। स्वर्णिम रंग का प्रयोग अतिरिक्त लावण्य हेतु किया गया है। नीला रंग कहीं-कहीं प्रयुक्त किया गया है। पीला, लाल एवं हरे रंग की प्रधानता है। भित्तियों पर रामकथाओं का चित्रांकन है तथा कक्ष की छत को अलंकरण द्वारा पूर्ण किया गया है। नारी एवं पुरुषाकृतियाँ छरहरी, मंझोले कद की अंकित हैं। वेशभूषा पर महाराष्ट्रीय प्रभाव है। पात्र के पद एवं गरिमा का ध्यान रखा गया है। विषय के अनुरूप वेशभूषा, हावभाव, आभूषण सज्जा की गई है।

आज इस मन्दिर के चित्रांकनों की स्थिति उत्तम नहीं कहीं जा सकती। कालगत प्रभाव एवं तथाकथित भक्तजनों की अतिजिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण इन चित्रों में प्रयुक्त स्वर्ण रंग स्थान-स्थान से खुरचा जा चुका है। ग्वालियर कलम के इन अमूल्य चित्रों को संरक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है।

सन्दर्भ :

1. श्री कमल गुप्ता (मन्दिर के वर्तमान व्यवस्थापक) से प्राप्त जानकारी के अनुसार
2. भाण्ड, लक्ष्मण, *ग्वालियर कलम*, प्रथम संस्करण, 1998, पृ० 65
3. वही, पृ० 67
4. भण्डारकर, आर०डी०, *वैष्णव, शैव एवं अन्य धर्म*, 1978, पृ० 61





24.

आगर का बैजनाथ मन्दिर एवं लघु देवालय समूह

डॉ० किरण रमण सोलंकी

शा

जापुर जिले से 86 किमी० की दूरी तथा समुद्रतल से 2,718 की ऊँचाई पर राजस्थान जानेवाले स्थल मार्ग पर आगर स्थित है।

बैजनाथ एवं वैद्यनाथ महादेव मन्दिर— आगर से लगभग 5 किमी० उत्तर में सुसनेर जानेवाले मार्ग पर बाणगंगा नदी के दक्षिणी तट पर बैजनाथ महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर स्थित है। यह मन्दिर ग्राम पञ्चायत निपानिया बैजनाथ के क्षेत्राधिकार में ग्राम से कुछ दूरी पर है। बैजनाथ ग्राम के समीप होने के कारण इस मन्दिर का यह नामकरण होगा।

मन्दिर का वास्तु-विन्यास— आधुनिक मन्दिर में गर्भगृह एवं पश्चिमाभिमुखी एक सभामण्डप, सिंहद्वार और मन्दिर तक पहुँचने के लिए सोपान निर्मित हैं। सम्पूर्ण मन्दिर उच्चासन पर स्थित है। सभामण्डप 29.3 फीट गुने 27 फीट लम्बाई एवं चौड़ाई तथा छत का भार वहन करते पाँच पंक्तियों में चार-चार स्तम्भ खड़े हैं। मण्डप के मध्य में नन्दी की प्रतिमा विराजित है। प्रमुख पूजागृह, गर्भगृह उच्च कलश के सुसज्जित है। शिखर का रचना विन्यास नागर शैली के अनुरूप ग्रीवा, आमलक, स्तूपिका एवं कलश आदि में विभक्त है। शिखर का निम्न भाग परमारकालीन अलंकरण यथा पुष्प-पत्तियों से सुसज्जित है। सम्पूर्ण मन्दिर की लम्बाई पूर्व व पश्चिम में 64'.9" एवं उत्तर तथा दक्षिण में 29'.3" है। मन्दिर के वामभाग में कमलकुण्ड नामक तालाब और उत्तर पश्चिम में गोकुण्ड निर्मित है। मन्दिर में गर्भगृह भूमि तल

से नीचे है। गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग परमारकालीन है, जलाधारी पीतल की चादर से मढ़ी हुई है। गर्भगृह के द्वार के सम्मुख अर्द्धचन्द्र शिला स्थित है। गर्भगृह के भीतर पश्चिम दिशा के गवाक्ष में 2 फीट 3 इंच ऊँचे नन्दी पर आसीन उमामहेश्वर की प्रतिमा दर्शनीय है। मूल मन्दिर से संबंधित यह प्रतिमा 11वीं-12वीं सदी ई० का परमारकालीन है। प्रतिमा के हाथ भग्न हैं। उत्तर दिशा के गवाक्ष में पार्वती की आधी प्रतिमा स्थित है। मन्दिर का बाह्य दृश्य अत्याकर्षक है।

मन्दिर का वर्तमान स्वरूप अगस्त, 1882 ई० में मार्टिन के आदेश के तहत निखारा गया। बैजनाथ मन्दिर निर्माण के दो स्पष्ट प्रमाण वहाँ पर लगे लेखों में उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम इस महादेव मन्दिर की नींव का शुभ मुहूर्त माघ शुक्ल चतुर्थी, वि०सं० 1585 तदनुसार 1528-29 ई० में किया गया था। इस प्रकार यह प्रकट होता है कि मन्दिर की नींव के साथ ही मन्दिर का निर्माण भी किया गया होगा। आधुनिक मन्दिर के निर्माण का दूसरा प्रमाण संवत् 2033 अर्थात् सन् 1966 में लिखित अन्य प्रस्तर-लेख से मिलता है, जिसमें सन् 1883 में इस विशाल मन्दिर का निर्माण किया गया। प्रस्तर फलक पर अंकित वह लेख इस प्रकार है :

बाणगंगा मन्दिर नदी के दक्षिण तट पर प्रसिद्ध श्री बैजनाथ महादेव का यह लिंग गुप्तकालीन पहली शती के लगभग माना जाता है। बैजनाथ खेड़ा के निवासियों ने सोलहवीं सदी के अंत में एक छोटा-सा मठ-जैसा मन्दिर और सभामण्डप बनवाया। सौ वर्ष बाद उस भग्न शिवालय को सन् 1883 में ब्रिटिश सेना के हिंदू अधिकारियों की प्रेरणा तथा कर्नल मार्टिन की अनुसहायता से रियासतों, ठिकानों, जागीरों एवं जनता की वित्तीय सहायता से 11,600.00 रुपये की लागत से इस विशाल मन्दिर, कमलकुण्ड, वराह-मन्दिर, गणेश-मन्दिर तथा सप्तर्षि लघुदेवालयों का निर्माण हुआ। सन् 1884 ई० की अक्षत तृतीया से यहाँ विशाल वार्षिक मेला आरम्भ हुआ।

वसन्त पञ्चमी, 2023

नारायणदास वाहेती

वैद्यनाथ मन्दिर से संबंधित, चलित किंवदन्ति एवं चमत्कारिक घटनाएँ— महादेवजी के लिंग जलाधारी सहित प्रकट होने पर प्राचीन समय में एक मोड़ महाजन ने छोटा सा मन्दिर निर्माण करवाया था। समय में यह स्थल जंगल होकर यहाँ वन्य पशुओं का बाहुल्य था। ब्रिटिश शासनकाल में आगरा में सैनिक छावनी थी, उनमें एक अँग्रेज सैनिक अधिकारी मार्टिन हुआ। वह द्वितीय अफगान युद्ध में अपनी सेना सहित काबुल में युद्धरत था। उसकी पत्नी आगरा में निवास करती थी। जब कई दिनों तक उसकी पत्नी को उसका कोई सन्देश प्राप्त नहीं हुआ तो वह अत्यधिक व्याकुल तथा चिन्तातुर रहने लगी। एक बार भ्रमण करते समय वह इस प्राचीन चमत्कारी मन्दिर के पास से जा रही थी तो मन्दिर की आरती के समय

श्रद्धावश वहाँ ठहर गई और भगवान् से यह प्रार्थना की कि यदि एक सप्ताह में मेरे पति का सन्देश मिल जाएगा तो मैं यहाँ एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाऊँगी। संयोगवश एक सप्ताह में ही उनके पति के आगमन का सन्देश उसे प्राप्त हो गया जिसमें मार्टिन ने यह लिखा कि एक जटाधारी विशाल पुरुष बैल पर बैठा हुआ, हाथ में त्रिशूल लिए मुझे बार-बार दिखाई देता है तथा वह कठिन परिस्थितियों में मेरी रक्षा कर रहा है। तत्पश्चात् एक मास के भीतर ही कैप्टन मार्टिन अपनी सेनासहित सकुशल सैनिक छावनी आगर वापस लौट आया। इन्हीं कैप्टन दम्पति ने वर्तमान भव्य मन्दिर का निर्माण सभामण्डप सहित वर्ष 1883 में करवाया। इस मन्दिर के संबंध में अन्य कथन इस प्रकार हैं। आगर नगर के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार के सदस्य जयनारायण परम शिवभक्त हो गए हैं। एक बार यहाँ उनके ध्यानावस्था में उनकी अनुपस्थिति में साक्षात् शिव ही उनके बदले न्यायालय में पैरवी करने गये। जब उन्हें इसका वास्तविक ज्ञान हुआ तो उन्होंने वकालात तथा गृह त्यागकर संन्यास धारण कर लिया व यहीं रहने लगे।

बैजनाथ मन्दिर का आंतरिक भाग मराठाकालीन सुंदर चित्रणों से अलंकृत है। स्व० रामनारायण चौधरी ने सन् 1924 ई० में सुन्दर चित्रणों से गर्भगृह को अलंकृत करवाया। ये सभी चित्रण *शिवमहापुराण* के कथानकों पर आधारित हैं और अत्यन्त मनोहारी हैं।

बैजनाथ मन्दिर के पुजारी गोसाईं पुरी परम्परा के हैं। पुजारी मंगलपुरी के समय मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ। उसके पश्चात् उसके वंशज चन्द्रपुरी, कंचनपुरी तथा वर्तमान में इन्द्रपुरी पूजन-कार्य कर रहे हैं। इस विशाल मन्दिर के समीप ही अन्य लघु देवालय स्थित हैं। इनमें प्रमुखतः पूर्वाभिमुख वराह मन्दिर, पश्चिमाभिमुख गणेश मन्दिर, उत्तर-पूर्व में कालभैरव मन्दिर, दक्षिण-पूर्व में हनुमान् मन्दिर तथा दक्षिण में मंगलनाथ मन्दिर स्थित है।

1. वराह मन्दिर— यह मन्दिर प्राचीन मन्दिर के ध्वसांशेष से निर्मित है। इसमें स्थान विष्णु के दसावतारों में से एक नृवराह की चार फीट ऊँची प्रतिमा 10वीं-11वीं शती की परमारकालीन है। वराह का बायाँ पैर उच्चासन पर स्थित है तथा दो भू-स्पर्श करता हुआ दिखलाया गया है। प्रतिमा चतुर्हस्ता है, दाहिने ऊपरी हाथ में एवं निम्न हाथ जंघा पर स्थित है। बायें ऊपरी हाथ में चक्र व निम्न हाथ में अस्पष्ट अंकन है। वराह अपने दंतकोटि पर पृथिवी को धारण किए हुए है। वराह प्रतिमा के सिर नाग छत्र है। प्रतिमा के शीर्ष भाग के दायें ब्रह्मा और बायें भाग में शिव व अंकन है। निम्न भाग में दोनों ओर कतिपय नारी व पुरुषाकृतियाँ प्रदर्शित हैं। वराहेश्वर के बाहरी भाग के बायीं ओर तीन शिवलिंग व नन्दी-प्रतिमाएँ हैं।

2. मंगलनाथ मन्दिर— यह मन्दिर उच्चासन पर स्थित है। मन्दिर चौकोर शिखर व छत सपाट है। मन्दिर के गर्भगृह में शिवलिंग एवं उसके समक्ष नन्दी स्थित है। मन्दिर प्रवेश द्वार सरदल पर मध्य में गणपति का अंकन है। यह मन्दिर मराठाकालीन है। गण मन्दिर, कालभैरव मन्दिर तथा नृसिंह मन्दिर— तीनों लघुदेवालय हैं। यहाँ स्थित प्रतिमा सिंदूर लेपित

है।

आधार-ग्रन्थ :

1. एन्युअल रिपोर्ट ऑफ़ दी आर्किलोज़िकल डिपार्टमेंट ऑफ़ ग्वालियर स्टेट, संवत् 1986, सन् 1929-30, पृ० 26-27
2. दी डिस्क्रिप्टिव्ह एण्ड क्लासीफाइड लिस्ट ऑफ़ ऐंशियंट मान्युमेण्ट्स इन मध्य भारत, अनुक्रमांक 15





25.

जामगढ़-भगदेई का शिव मन्दिर

विनोद तिवारी

24/96 साँची रोड, जिला : रायसेन

रायसेन ज़िले की बरेली तहसील में स्थित जामगढ़-भगदेई का मन्दिर स्थापत्य कला का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह मन्दिर बरेली तहसील मुख्यालय के समीप खरगौन कस्बे से लगभग 6 किमी० पश्चिम-उत्तर में जामगढ़-भगदेई नामक गाँव के दक्षिणी छोर पर एक पहाड़ी के पास निर्मित है। यह मन्दिर 9वीं 10वीं शताब्दी का है। मन्दिर महामण्डप, अंतराल और गर्भगृह से युक्त है। यह पञ्चरथ योजना से निर्मित है, महामण्डप में कक्षासनों की व्यवस्था है। मन्दिर का अधिष्ठान खुर एवं कुम्भ बंधनयुक्त है। खुर बंधन अंतर्वत और गागरक अलंकरण से सज्जित तथा कुलिकाओं की एक पट्टी द्वारा आच्छादित है, जिसे रत्न अलंकरण द्वारा सजाया गया है। कुम्भ बंधन को कूट अलंकरण द्वारा सजाया गया है।

मन्दिर का बाह्य भाग भी विशेष कलापूर्ण है। यह दो धरणियों से विभक्त है, जिसमें नीचे का बंधन अपेक्षाकृत चौड़ा है। कपिली के दूसरी ओर देव कुलिकाएँ निर्मित हैं। जिनमें ब्राह्मण देवी-देवताओं का अंकन किया गया है। इसका अलंकरण चैत्य उद्गमनों द्वारा किया गया है, जबकि रथ अलंकृत न होकर साधारण ही है। रथनिर्माण ग्रीवा तक ही किया गया है। मण्डप का बाह्य अलंकरण सर्वथा भिन्न है, संभवतः इसे परवर्ती काल में बनाया गया होगा। मन्दिर के शिखर की रचना, अलंकरण से ओतप्रोत है। ग्रीवा से नीचे कपोतिका निर्मित है, जिसे गागरक, पुष्प और रत्न अलंकरणों से सज्जित किया गया है। विशाल आमलक के ऊपर

आमलसारिका है, जिसके शीर्ष पर कलश और बीजपूरक का संयोजन है। कक्षासनों में घटपल्लव और सलिलान्तर अलंकरण किया गया है, जो कूटाच्छादित है। मण्डप में दोनों ओर दो-दो स्तम्भ, धरणी और मण्डप की छत को सहारा देते हुए प्रतिस्थापित किए गये हैं। मण्डप की छत अंशतः आज भी विद्यमान है। मण्डप के शीर्ष भाग को एक आर्कषक शुकनासिका में सज्जित किया गया है। इसके ऊपर झरोखें निर्मित हैं।

अंतर्विन्यास की दृष्टि से भी यह मन्दिर कलात्मक एवं शैलीगत विशेषता लिए हुए हैं। इसके मुख्य द्वार पर चार सीढ़ियाँ हैं। महामण्डप चार बड़े-बड़े खम्भों पर अवलम्बित है। महामण्डप के वितान को सहारा देने हेतु बीच में 18 स्तम्भ लगाए गए थे, जिनमें से वर्तमान समय में केवल 7 ही शेष हैं। महामण्डप समतल वितानवाला है, जिसके मध्य में एक आकर्षक कमल पुष्प उत्कीर्ण किया गया है। इस मन्दिर की द्वार शाखा भी अलंकृत है, जिसकी संख्या पाँच है। निम्न भाग पर गंगा-यमुना अपने सेवकों के साथ उत्कीर्ण थी, जिनमें अब केवल दाहिनी प्रतिमा ही दिखाई दे रही है। उद्म्बर भाग भग्न है, परन्तु उस पर उत्कीर्ण खण्डित प्रतिमाएँ सुन्दर शिल्पांकन की द्योतक हैं। अंतराल के वितान में दो विशाल स्तम्भ सहारा देते हुए लगाए गए हैं। इस मन्दिर का गर्भगृह वर्गाकार है, जिसकी दीवारें अनलंकृत हैं। इसका वितान भी समतल है। यह मन्दिर प्रतिहार काल की वास्तुकला का सुन्दर उदाहरण है। इस क्षेत्र में गुफाओं, कन्दराओं और शैलाश्रयों की विस्तृत शृंखला तथा प्रस्तर-युग के हथियारों, उपकरणों की उपलब्धता सिद्ध करती है कि यह क्षेत्र प्राचीन काल में आदिमानव की निवास-स्थली रहा है। भगदेई से जामगढ़ तक लगभग 1 किमी० के क्षेत्र में अनेक प्राचीन मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं।

यहाँ की जनश्रुति के अनुसार यह स्थान रामायणकाल के जामवन्त से संबंधित है और यहाँ पर महाभारतकाल में स्यमन्तक मणि की चोरी के कारण श्रीकृष्ण और जामवन्त के बीच 27 दिनों तक युद्ध हुआ था और उस युद्ध में हार के पश्चात् जामवन्त ने अपनी पुत्री जामवन्ती का विवाह श्रीकृष्ण से कर दिया था। वर्तमान में जामवन्त की गुफा समय के साथ जमाव के कारण सँकरी हो चुकी है।

आधार-ग्रन्थ :

1. राय देवेन्द्र सिंह, *रायसेन : इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व*, आर०के० पब्लिशर्स, 1997
2. जिला गजेटियर रायसेन, हिंदी-संस्करण, 1991
3. राजीव चौबे, *युगयुगीन रायसेन*, भारतीय इतिहास संकलन योजना, मध्यभारत, भोपाल, 2012





26.

शिव मन्दिर (रायसेन दुर्ग)

निर्मला चौबे

शोधार्थी, इतिहास विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय,
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल

भो

पाल-सागर सड़क मार्ग पर भोपाल से 45 किमी० की दूरी पर स्थित रायसेन दुर्ग विंध्याचल पर्वत शृंखला से सटे हुए एक दुर्गम पर्वत शृंग की उच्चतम भुजा पर समुद्रतल से 594 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हैं। यह बेतवा नदी के ऊपर की और पूर्वी तट पर 7.5 मील तक फैला हुआ है। उत्तर-दक्षिण में दो पर्वत शृंखलाएँ इस पर्वत शृंग को निकटस्थ पहाड़ियों से पृथक् करती हैं, जिससे दुर्ग की दुर्गमता बढ़ जाती है। दुर्ग में प्रवेश हेतु नौ द्वार हैं। नवाँ द्वार गुप्त मार्ग है जो शिव मन्दिर के पश्चिम से प्रारम्भ होता है। नकवी साहब ने जिस इमारत को शेरशाही मस्जिद कहा है, वह पहले मन्दिर था जिसे शेरशाह के दुर्ग-विजय के पश्चात् मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया था। 1974 में हुए जनांदोलन के बाद यहाँ शिवलिंग की प्राण प्रतिष्ठाकर इसे पुनः शिवमन्दिर का स्वरूप प्रदान कर दिया गया।

शिवमन्दिर (पामेया मन्दिर) एक ऊँचे चबूतरे पर निर्मित है। मन्दिर-प्रांगण का परकोटा 80 फीट चौड़ा व सौ फीट लम्बा है एवं बरामदे की लम्बाई 35 फीट एवं चौड़ाई 80 फीट, जो 32 वर्गाकार स्तम्भों पर निर्मित है। इसमें 4 कोने पर चार दीपक रखने के लिए दीपदान निर्मित है। मुख्य द्वार पर बेलबूटेदार आकृति व माला-जैसी संरचना निर्मित है। मन्दिर के मुख्य द्वार के ऊपर गणेश जी की प्रतिमा है जो इस बात की परिचायक है कि अन्दर

शिव-मन्दिर है।

अन्दर मुख्य द्वार के ऊपर, मध्य में भगवान् श्रीगणेश की प्रतिमा उकेरी गई है। मन्दिर का गर्भग्रह आयताकार कक्ष है, जिसके अन्दर की दीवारें समतल हैं। पञ्चरथ योजना से निर्मित इस मन्दिर में बाह्य प्रदक्षिणा-पथ है। मन्दिर के द्वार बाहरी किनारों को फूलों एवं सुन्दर लताओं से अलंकृत किया गया है। द्वार शाखा के स्तंभों पर भग्न प्रतिमाएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। मन्दिर का मण्डप आयताकार है। मण्डप के सामने एक विशाल दालान के नीचे तलघर है, जिसके प्रवेश-द्वार को बंद कर दिया गया है। दालान में बनी सीढ़ियों के अवशेष देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः इस दालान के ऊपर कभी छत रही होगी।

मन्दिर के बाहर दायीं ओर की दीवार पर 30 सेमी० लम्बा और 32 सेमी० चौड़ा शिलालेख लगा है। इस शिलालेख की लिपि देवनागरी एवं भाषा संस्कृत है। यह अभिलेख 11 पंक्तियों का है। यह अभिलेख लगातार पानी, हवा के थपेड़ों से अस्पष्ट हो गया है, फिर भी कुछ शब्द पढ़े जा सकते हैं। यह निम्नानुसार है :

1. गीर्ण पिकृप्रता पिवर्ववीतम्.....
2. मिक्कण ल वि का पर्वाजिह विता.....प्राता
3.
4. मानम गु लु वा श ल ती नि वे तू झ त पु
5. श्र ता ने श्रमी त वा वनां मः वा ग राव 1 !! 4.....
6. निं साके 1412 प्रवर्त माने विक्रमार्दितः पि ठा ल मा
7. त म ग माघ सुदिते रे मिः रवि दाने पुज नक्षीत्रे
8. ग दुर्ग पनः धौलमीहः व हर्जिय
9.
10. पूर्वा विहनोः
11. संग्रामे सिंहदस्थः भवनी धामः सर्वदमंगलम् ।

मन्दिर के ऊपर शिखर भी निर्मित था, जिसे नवाब हमीदुल्ला ने नष्ट करवा दिया था। मन्दिर के बाहर दायीं ओर मोतीकुण्ड है जिसमें राजपरिवार के लोग स्नानकर दर्शन करने मन्दिर जाते थे एवं बायीं ओर मदागन ताल है जिसमें सामान्यजन स्नान के पश्चात् दर्शन करने मन्दिर जाते थे। दुर्ग स्थित शिव मन्दिर सहित अनेक मन्दिर सम्भवतः मुस्लिम काल में हुए आक्रमणों के समय नष्ट कर दिए गए। स्वाधीनता के बाद भी दुर्ग-स्थित शिव मन्दिर के द्वार के ऊपर गणेश-प्रतिमा एवं दरवाजों के दोनों भग्न प्रतिमाएँ स्पष्ट दिखाई देती थीं और मन्दिर का शिवलिंग भी बाहर लावारिस अवस्था में पड़ा हुआ था। मन्दिर के गर्भगृह पर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण का ताला लगा हुआ था।

मन्दिर की चहारदीवारी पर संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण एक शिलालेख भी लगा हुआ

था। मन्दिर-प्रांगण में कभी कभार कुछ मुस्लिम नमाज अदा करते थे। मन्दिर को पुनः प्राप्त करने हेतु हिंदुओं ने एक शान्तिपूर्ण आंदोलन की रूपरेखा बनाई और सन् 1974 में श्री कृष्णगोपाल माहेश्वरी की अध्यक्षता में 'रायसेन दुर्ग मन्दिर खोलो संघर्ष समिति' का गठन हुआ। इसमें सर्वश्री डॉ० केशवदयाल 'कमल' रमाशंकर मिश्र, पं० राधेश्याम वसिष्ठ, सुभाषबाबू कुशियारी, रघुनन्दन अग्रवाल, ईश्वरदास गुरनाणी, बोधराज खन्ना, गोवर्धन सिंह कुशवाहा, पं० शिवनारायण तिवारी, रमेश भार्गव (दिल्लोदवाले), लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी, मदनलाल चौबे, पं० रामनारायण चतुर्वेदी, दीपचन्द जैन आदि सभी राजनैतिक दलों के सदस्य मतभेद भुलाकर एक मंच पर एकत्रित हुए और इस आन्दोलन को गति प्रदान की।

इन दिनों मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचन्द सेठी जी पर प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का विशेष अनुग्रह था। 'रायसेन दुर्ग मन्दिर संघर्ष समिति' का प्रतिनिधिमण्डल रायसेन के जिलाधीश श्री ए०के० अग्रवाल से मिला और उनसे यहाँ की जनभावना को शासन तक पहुँचाने का निवेदन करते हुए ज्ञापन प्रस्तुत किया। संवेदनशील जिलाधीश ने शीघ्र ही जनाक्रोश को समझ लिया और ज्ञापन को अपनी अनुशंसा और इस टिप्पणी के साथ कि इस आन्दोलन के पीछे जन-समर्थन बहुत व्यापक है, सूचना शासन की ओर प्रेषित कर दी।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के तत्कालीन अधीक्षक श्री के०के० चक्रवर्ती ने अपनी रिपोर्ट में माँग को जायज बताया, परन्तु गुप्तचर विभाग की ख़बरे आन्दोलन के पक्ष में नहीं थीं। वे साम्प्रदायिक संघर्ष की सम्भावना व्यक्त कर रही थीं। जिलाधीश महोदय ने स्पष्ट किया कि रायसेन नगर में हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य नहीं है। परन्तु भारतीय सर्वेक्षण विभाग की कार्यप्रणाली मन्दिर खोले जाने की राह में बाधक बन रही थी। अतः रायसेन से आन्दोलनकारियों के प्रतिनिधिमण्डल भोपाल भेजे गये। उन्होंने विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं और अधिकारियों से इस संबंध में खुलकर बातें की। रायसेन में दृश्य यह था कि एक ओर रायसेन की सड़कों पर गगनभेदी नारे 'किले के मन्दिर को लेकर रहेंगे', 'सरकार सोमेश्वर भगवान की प्राण प्रतिष्ठा करो' गूँज रहे थे, दूसरी ओर रायसेन की सड़कों से लेकर दुर्ग स्थित मन्दिर तक पुलिस की भारी निगरानी थी।

यह एक ऐसी घटना थी जिससे रायसेन सम्पूर्ण मध्यप्रदेश एवं भारत में चर्चित हुआ। अंततः सरकार ने जनता की बात को मान लिया और स्वयं मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचंद्र सेठी जी यहाँ पधारे और विशाल मेले की शुरुआत के साथ शिवरात्रि के दिन मन्दिर के ताले खोलकर शिवलिंग की पुनर्स्थापना करवायी। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण ने शिवरात्रि को दरवाजा खोलकर व शेष दिनों वर्षभर दरवाजे के बाहर से श्रद्धालुओं को पूजा की अनुमति दे दी। तभी से यहाँ पर शिवरात्रि के दिन भव्य मेला आयोजित होने लगा।





27.

ग्वालियर में दिगम्बर जैन तेरापंथी पञ्चायती पुरानी सहेली बड़ा मन्दिर : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० सुशील कुमार

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय,
ग्वालियर

प्रा चीन काल से ही ग्वालियर कला एवं संस्कृति का केन्द्र रहा है। ग्वालियर नगर एवं गोपाचल दुर्ग के चारों ओर स्थित इस कला धरोहर को देखकर इसके निर्माणकर्ताओं एवं शिल्पियों के प्रति श्रद्धा से मस्तक झुका जाता है। गोपाचल के आस-पास जैन-प्रतिमाओं को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ग्वालियर की पवित्र भूमि जैन मत का महत्वपूर्ण केन्द्र रही है। जैन-मन्दिर एवं उनकी चित्रकला समृद्धशाली है। वास्तव में जैन-मन्दिरों की चित्रकला में मुगल, राजस्थानी तथा मराठा-शैली का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। जैन मत के सिद्धान्त एवं उनकी कला को जन-जन तक पहुँचाने हेतु मन्दिरों का निर्माण कराया गया।

सन् 1768 ई० में दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर पुरानी सहेली डीडवाना ओली का निर्माण महादजी सिंधिया के काल में पूर्ण हुआ। प्रस्तुत निबन्ध में इसी मन्दिर का अध्ययन किया गया है। नगर में सबसे बड़े इस पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण समाज के कार्यकर्ताओं द्वारा किया गया। यहाँ धातु तथा पाषाण की 117 प्रतिमाएँ स्थापित हैं। मन्दिर में सीढ़ियों के बाद प्रवेश-द्वार पर पत्थर की खुदाई के कलात्मक चित्र बने हैं। आँगन के तीनों ओर स्तम्भों के बीच तोरण का आकार दिया गया है। इन अलंकरणों पर राजस्थानी शैली का प्रभाव दिखाई देता है। दीवारों पर कथाओं का चित्रण किया गया है।

इस मन्दिर के बीच के द्वार धातु के बने हैं और इन पर सुंदर मीनाकारी की गई है। द्वारों पर तोरण के आकार, कलश और अर्द्धवृत्त भारतीय शैली के बने हैं। इसके स्तम्भों की बनावट में भारतीय प्रभाव दिखाई देता है। मुख्य पूजा के स्थान पर चार दर्शन स्थलों के बीच स्तम्भों द्वारा विभाजन किया गया है। मुख्य दर्शन स्थल पर तीन मंजिल का आकार बना है, जो ऊपर छोटा होता गया है। यहीं पर कमल पुष्प के ऊपर काले संगमरमर की भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजमान है। मूर्ति के स्थान पर छोटे मन्दिर के आकार में ऊपरी शिखर भारतीय शैली का बना है, जिसे सजाया गया है। दीवार, द्वार तथा छत पर स्वर्ण रंग के बेलबूटे बनाए गए हैं। मन्दिर का यह कक्ष काफी भव्य दिखाई देता है। कक्ष के अन्य दर्शन स्थलों पर विभिन्न तीर्थकरों की प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

प्रांगण के दाहिनी ओर स्वाध्याय कक्ष की छत, दीवारें, आले तथा स्तम्भ बने हैं, जहाँ सुंदर चित्रकारी की गई है। यहां पर स्वर्ण रंगों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है, जो राजस्थानी शैली के प्रभाव को दर्शाता है। दीवारों पर यक्ष व चारणों का चित्रण थोड़ी-थोड़ी दूर पर किया गया है, इनकी वेशभूषा में अंगरखा पहने दिखाया गया है। यहाँ दीवारों पर धार्मिक कथाओं का चित्रण अधिक है।

मन्दिर के अन्य दर्शनीय स्थलों में काँच का जड़ाऊ काम किया गया है और उनके बीच कुंदन का काम भी दिखाई देता है। इस मन्दिर में चित्र बनानेवालों के नाम नहीं दिए गए हैं।

मन्दिर में अनेक भित्तिचित्र दर्शाये गये हैं, जिनमें णमोकार मंत्र, युगल मुनि का आहार दान, द्रोणगिरी, पावापुरी, सोनागिरि, सम्मेद-शिखर, सुकुमाल मुनि, शत्रुञ्जय गिरि, कम्पिला, मुक्तागिरी, राजगृह, सीता की अग्निपरीक्षा, पञ्चकल्याण, सिद्धचक्र के पाठ की महिमा आदि का विवरण है।

भित्तिचित्रों का विवरण

इस मन्दिर की दीवारों पर सबसे पहले जैन मत के महामंत्र, जिसे णमोकार मंत्र कहा जाता है, का चित्रण किया गया है। इसमें लाल, पीला, नीला तथा काले रंगों का प्रयोग किया गया है। यह चित्र 8' 12 आकार का है।

इस मन्दिर में आगे युगील मुनि का आहार दान प्रस्तुत किया गया है, जिसमें दिगम्बर मुनि का राम-सीता लक्ष्मण द्वारा आहार देने का चित्र बनाया गया है। इसमें भगवान् राम मुनियों को आहार दे रहे हैं और सीता व लक्ष्मण हाथ में भोजन-पात्र लिये हैं। राम-सीता व लक्ष्मण सुंदर आभूषण पहने हुए हैं और पास ही वृक्ष पर जटायु पक्षी बैठा दिखाई देता है। यहाँ पर इन्द्र पुष्पवर्षा करते दिखाई देते हैं। चित्र का आकार 7' 8 फुट का है। इस चित्र पर पूर्ण रूप से राजस्थानी शैली की झलक दृष्टिगोचर होती है।

तीसरे चित्र में तीनों लोकों का चित्रण है, जो तीन भागों— अधोलोक, मध्यलोक तथा

ऊर्ध्वलोक में विभाजित है। अधोलोक में सात नरक— अंजना, मेघा, मधवी, माधवी, अरिष्ठा, धम्मा व वंशा आदि दर्शाए गए हैं। सात, अलग-अलग खानों में कर्म व कर्मफल प्रदर्शित किए गए हैं। मध्यलोक में असंख्य द्वीप व समुद्र हैं, जिनके बीच में जम्बूद्वीप है और इसके बीच सुमेरु पर्वत है। ऊर्ध्वलोक में सोलह स्वर्ण में कल्पवासी विमान हैं, जिनमें ब्रह्मा, सनत्कुमार, लांतव, सौधर्म, ब्रह्मोत्तर, माहेन्द्र, ईशान, कपिस्ट, नवग्रेवयिक, पाँचपच्चोत्तर व सिद्धशिला हैं। यह 8' 12' का चित्र अत्यन्त मनोहारी है।

चौथा भित्तिचित्र 1. द्रोणागिरितीर्थ, 2. पर्यावरण के हैं, जिसमें गुरुदत्ता महाराज की निर्वाणभूमि द्रोणागिरि तीर्थ का चित्रण किया गया है। यह स्थान मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में द्रोणागिरि गाँव के पास एक छोटे पहाड़ पर स्थित है। इस पहाड़ पर 27 मन्दिर बने हैं और यहाँ भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित है। जैनियों में मान्यता है कि इसी स्थान से हनुमान् लक्ष्मण जी के प्राणरक्षार्थ संजीवनी बूटी ले गए थे। इस चित्र में गोलाकार पहाड़ों को छोटे-छोटे भागों में विभक्त किया गया है। पहाड़ पर तालाब, भवन, धर्मशालाएँ, वृक्ष, जानवर व यात्री आदि चित्रित किए गए हैं। यहाँ के प्रकृति-चित्रण में राजस्थान की किशनगढ़ शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

पाँचवें चित्र में महावीर स्वामी का निर्वाणभूमि पावापुरी तीर्थ का चित्रण किया गया है। यहाँ तालाब के बीच विशाल मन्दिर बना है, जिसमें कमल के फूल खिले हैं। मन्दिर के बाहरी गोल घेरे के बीच द्वार बने हैं। नीचे की ओर विशाल भवन, तीर्थ व तीर्थयात्री दर्शाए गए हैं। पृष्ठभूमि में हरियाली प्रदर्शित है। इसका आकार 3'..... हैं। यहाँ भारतीय शैली का प्रभाव दिखाई देता है। तीर्थकर महावीर ने पावापुरी के पद्मसरोवर में 527 ई०पू० में कार्तिक अमावस्या को उषाकाल में निर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ पर संगमरमर का जल मन्दिर बनाया गया है और उस तक पहुँचने के लिये 600 फुट लंबा पत्थर का पुल है। इस मन्दिर की भव्यता व शिल्पकारी विलक्षण है।

छठे चित्र में सोनागिरी का क्षेत्र का चित्रण किया गया है, जहाँ पहाड़ों पर मन्दिर तथा छत्रियाँ दृष्टिगोचर होती हैं और पहाड़ पर आते-आते तीर्थयात्री व वृक्ष दिखते हैं। नीचे की ओर मन्दिर, धर्मशालाएँ, यात्री व जानवर दिखते हैं। आकाश में इन्द्र सहित चार विमान बने हैं। पृष्ठभूमि में हरियाली प्रदर्शित है। इस तीर्थ का प्राचीन नाम प्रवणगिरि था। जैन-ग्रन्थों के अनुसार यहाँ नंग-अनंग आदि अनेक मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया था। यह भी उल्लेख मिलता है कि आठवें तीर्थकर चन्द्रप्रभु का समवरण यहीं रचा गया। वर्तमान में यह स्थान ग्वालियर से दतिया जाते समय रेल तथा सड़क मार्ग पर अनेक मन्दिरों के साथ पहाड़ी पर स्थित है।

सातवाँ चित्र तीर्थकरों की निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर का है, जो विशाल पहाड़ को छोटे-छोटे खण्डों में काटकर बनाया गया है। यह 5' गुने 6' आकार का है। ऊपर की ओर पंक्ति में छोटी-छोटी बीस छत्रियाँ बनी हैं, जो शिखर के आकार में हैं। पहाड़ के मार्ग में आते-जाते तीर्थयात्री, मन्दिर, वृक्ष, धर्मशाला व जानवर प्रदर्शित हैं। घुमावदार बादलों के साथ आकाश में

इन्द्र सहित चार विमान दर्शाए गए हैं। पृष्ठभूमि में हरियाली का वातावरण है। वर्तमान में यह स्थान बिहार के गिरिडीह जिले में मधुवन गाँव के पास एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है।

आठवाँ चित्र तोरण आकार में 5' गुने 6' का है, जिसमें सुकुमल मुनि के जीवन की घटनाओं का चित्रण किया गया है। यहाँ महल के प्रांगण से मुनि दिगम्बर वेश धारणकर वन की ओर जा रहे हैं। वन में मुनि को तपस्या करते व केशलोचन करते हुए अलग-अलग दर्शाया गया है। पृष्ठभूमि में एक ओर यात्रा-महोत्सव का चित्रण भी देखने को मिलता है। दुमंजिले रथ पर भगवान् की मूर्ति स्थापित है, जिसके पीछे स्त्री-पुरुष चलते दिखाए गए हैं। बीच में घेरा बनाकर लोग गाते-बजाते दिखाए गए हैं। इनकी वेशभूषा पर राजस्थानी शैली का प्रभाव है।

नवें चित्र में शत्रुञ्जय गिरि का विवरण दिया गया है, जो गुजरात में पुण्डरीक स्वामी की निर्वाण भूमि है। मुख्य मार्ग के प्रवेश-द्वार पर गज चित्रित है और विशाल पहाड़ पर परकोटे से घिरे मन्दिरों का समूह बना है। नीचे की ओर यात्रीगण आते-जाते दिखाए गए हैं और भवन, वृक्ष तथा जानवरों के चित्र हैं। आकाश में बादलों के बीच दो विमान इन्द्रसहित चित्रित हैं। यहाँ आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा स्थापित है। यह चित्र 3' गुने 1' आकार का है।

दसवें चित्र में कम्पिला जी का चित्रण किया गया है, जो तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ का तीर्थक्षेत्र माना गया है। मन्दिर के मार्ग में रथयात्रा-महोत्सव का विवरण मिलता है, जिसमें आभूषणों से सुसज्जित स्त्री, पुरुष, सैनिक, रथ व घोड़े दिखाई देते हैं। नीचे की ओर भवन व धर्मशालाएँ निर्मित हैं। इसकी पृष्ठभूमि में हरियाली का वातावरण है व आकाश में त्रिभुज के आकार के बादल अंकित हैं। इस चित्र का आकार 3' 1' है। यह स्थल वर्तमान उत्तरप्रदेश में फर्रुखाबाद-कायमगंज से 18 किमी० दूर गंगा तट पर स्थित है। यहाँ तेरहवें तीर्थंकर विमलस्वामी को चार कल्याण गर्भ, जन्म, तप व ज्ञान प्राप्त हुए थे। अभय प्रकाश ने अपने लेख 'भूला-बिसरा' में लिखा है कि महासती द्रोपदी का जन्म तथा स्वयंवर यहीं हुआ था, जिनकी स्मृति में द्रोपदीकुण्ड आज भी विद्यमान है। यहाँ दो प्राचीन जैन-मन्दिर भी भग्नावस्था में मिलते हैं।

ग्यारहवाँ चित्र 3 गुने 0.5 आकार का है, जिसमें तालाब के बीच भव्य मन्दिर निर्मित है, जिसमें कमल के फूल खिले हैं। मन्दिर के पीछे पहाड़ पर तीर्थयात्री आते-जाते दिखाए गए हैं। पृष्ठभूमि में हरियाली दिखाई गई है। वर्तमान में यह स्थान बिहार के नवादा जिले में स्थित है। यहाँ महावीर स्वामी कई बार आये थे व उनका समवरण यहीं रचा गया था। यहाँ उनके प्रथम शिष्य गौतम स्वामी को ज्ञान प्राप्त हुआ था।

बारहवाँ चित्र 3 गुने 0.25 आकार का है, जिसमें मुनियों की निर्वाण भूमि मुक्तागिरि तीर्थ का चित्रण किया गया है। यहाँ विशाल पहाड़ के दोनों ओर मन्दिर तथा बीच में छोटी-छोटी छत्रियाँ बनी हैं। पहाड़ी-मार्ग पर मन्दिर, धर्मशालाएँ, वृक्ष, यात्रीगण व जानवरों के चित्र अंकित किए गए हैं। आकाश में बादलों के बीच दो विमान इन्द्रसहित बने हैं। वृक्षों पर

पुष्प दर्शाए गए हैं। यह पावन सिद्ध क्षेत्र माना गया है, जहाँ सैकड़ों मुनियों ने मुक्ति प्राप्त की। यह स्थान बैतूल जिले से 100 किमी० की दूरी पर स्थित है। इसे 'मेण्डागिरि' भी कहते हैं—

**‘अचलपुर के दिशा ईशान, तहां मेढागिरि नाम प्रधान ।
साढे तीन कोटि मुनिराप, तिनके चरण नमो चितलाप ॥’**

यहाँ दसवें तीर्थकर शीतलनाथ का समवरण रचा गया।

तेरहवें चित्र में एक मनुष्य को पेड़ से लटके हुए दिखाया गया है, जो वृक्ष से टपकते मधुरस का पान कर रहा है। वृक्ष की शाखा को काले तथा सफेद चूहे कुतर रहे हैं। एक हाथी वृक्ष को उखाड़ने का प्रयास कर रहा है। पृष्ठभूमि में हरियाली का दृश्य है। यह चित्र 4' गुने 6'' आकार का है।

चौदहवाँ चित्र जम्बू वृक्ष का है, जिसके फलों को छः मनुष्य अलग-अलग ढंग से पान की चेष्टा कर रहे हैं। यह षटलैस्या पर आधारित है, जिसमें एक मानव कुल्हाड़ी से वृक्ष के तने को काट रहा है, दूसरा वृक्ष के ऊपर कुल्हाड़ी से शाखा काट रहा है, तीसरा वृक्ष पर बैठा डण्डे से फल नीचे गिरा रहा है, चौथा व पाँचवाँ हाथ से फल तोड़ा रहा है, छठवाँ ज़मीन पर गिरे फल बटोर रहा है। प्रत्येक मानव के शरीर का रंग अलग-अलग है।

पन्द्रहवें चित्र में बीसवें तीर्थकर मुनि सुव्रतस्वामी के तीर्थक्षेत्र राजगृह का चित्रण किया गया है, जिसमें पाँच पहाड़— स्वर्णगिरि, रत्नागिरि, विपुलाचल, वैमानगिरि व उदयगिरि पर्वत हैं, जिन पर मन्दिर व छत्रियाँ बनी हैं। आकाश में त्रिभुजाकार बादल दर्शाये गये हैं व पृष्ठभूमि में हरा-भरा वातावरण है। यह चित्र 4' गुने 1'' आकार का है। वर्तमान में यह स्थान बिहार के नालन्दा जिले में सिद्धभूमि राजगीर से थोड़ी दूरी पर स्थित है। यहाँ विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर का प्रथम समवरण रचा गया था। उन्नीसवें तीर्थवर मुनि सुव्रतस्वामी के चार कल्याण इसी सिद्ध क्षेत्र में हुए।

सोलहवें चित्र में 'मांगी-तुंगी' सिद्ध क्षेत्र का चित्रण है, जहाँ छोटे-छोटे खण्डरूपी आकार में पहाड़ हैं, जिन पर मन्दिर व छत्रियाँ निर्मित हैं। इसके मध्य में मन्दिर, वृक्ष, यात्री व जानवर चित्रित हैं। पृष्ठभूमि में अन्य चित्रों की तरह हरियाली का वातावरण है व आकाश में दो विमान इन्द्रसहित अंकित हैं। इसका आकार भी पूर्व चित्र की भाँति है। यहाँ के बारे में किंवदन्ती है कि यहाँ पर भगवान् राम, हनुमान्, सुग्रीव व अनेक मुनिगण मोक्ष गये थे। इस पहाड़ पर दो शिखर हैं, उन्हें ही 'मांगी-तुंगी' कहा गया है। वर्तमान में यह स्थान महाराष्ट्र के नासिक जिले में ताहराबाद के पास है।

सत्रहवें चित्र के अगले भाग में 24 तीर्थकारों के माताओं को दिखे स्वप्नों का चित्रण है, जिन्हें पृथक्-पृथक् ढंग से दर्शाया गया है। इस चित्र के दोनों किनारों पर वृक्ष अंकित हैं। उसमें ऐरावत हाथी, सिंह, लक्ष्मी की प्रतिमा, देवी लक्ष्मी की प्रतिमा, सूर्य चन्द्रमा, दो स्वर्णकलश, सिंहासन और इन्द्र दर्शादि गद हैं। इसकी पृष्ठभूमि में एक उद्यान भी दर्शाया गया

हैं। इन सभी चित्रों का आकार 5' गुने 2 1/2'' है।

अठारहवें चित्र में देवी सीता की अग्निपरीक्षा का चित्रण किया गया है, जिन्हें कमल के फूल के बीच बैठा दर्शाया गया है और वे आभूषणों से सुसज्जित हैं। इनकी बायीं ओर नगरवासियों के साथ भगवान् राम व लक्ष्मण देखते हुए दर्शाए गए हैं। पृष्ठभूमि में वृक्षों का अंकन किया गया है और सीता की अग्निपरीक्षा को स्त्रियाँ देख रही हैं।

उन्नीसवें चित्र में 24 तीर्थकरों के पञ्चकल्याण— जन्म, दीक्षा, गर्भ, कैवल्य ज्ञान व निर्वाण को धूमधाम से मानते हुए दर्शाया गया है। इस चित्र के आसपास अनेक देवी-देवता और मनुष्य जन्मोत्सव मनाते हुए दिखाए गए हैं। इस दृश्य में सभी आभूषणों से सुसज्जित हैं। समय के साथ यह चित्र धुंधला हो गया है।

बीसवें चित्र में प्रथम तीर्थकर आदिनाथ को तपस्या करते हुए और उसके पश्चात् राजा श्रेयांश द्वारा आहार देते हुए दिखाया गया है। राजा, रानी और उसके भाई आहार पात्र लिए खड़े हैं। इसके दाहिनी ओर राजा का भव्य महल चित्रित किया गया है। इसके दूसरी ओर मुनि वन में तपस्या करते हुए और विहार करते हुए दर्शाए गए हैं। पृष्ठभूमि में महल का प्रांगण और चारों ओर हरियाली दर्शाई गई है। आकाश में बादलों के बीच तीन विमान इन्द्रसहित दिखाए गए हैं। इस चित्र का आकार 5' गुने 6'' है और इसकी चित्रण शैली में राजस्थानी प्रभाव दिखाई देता है।

इक्कीसवें चित्र में सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वारा देखे गए 16 स्वप्नों का चित्रण किया गया है, जिसमें पहली पंक्ति में राजा सोते हुए दिखाए गए हैं और उनके सेवक चँवर झुला रहे हैं। इसमें राजा आचार्य भद्रबाहु से स्वप्नों का फल पूछते हुए दिखाए गए हैं और इसके दोनों किनारों पर वृक्ष अंकित किए गए हैं। इस चित्र में ही कल्पवृक्ष की टूटी शाखाएँ, 12 फनवाला सर्प, सूखा सरोवर, सिंहासन पर बैठे पशुओं का समूह आदि अशुभ चित्र दिखाए गए हैं।

बाइसवें चित्र में मैना रानी द्वारा सिद्ध चक्र के पाठ की महिमा दर्शाई गई है। रानी के हाथ में पूजा का थाल दिखाया गया है और पास ही अनेक सेवी दूर कराने के लिए प्रतीक्षा में बैठे दिखाए गए हैं। इस चित्र को आधुनिक शैली में लकड़ी के बोर्ड पर बनाया गया है जो 4 गुने 6 का है।

तेइसवें चित्र में तीर्थकर आदिनाथ के पुत्र बाहुबलि को तपस्या करते हुए दिखाया गया है, जिनके शरीर पर हरे पत्तों की बेल चढ़ी हुई है। दोनों ओर पक्ष, चँवर हिलाते दिखाए गए हैं और आकाश में दो विमान इन्द्रसहित चित्रित हैं। इस चित्र का आकार 5 गुने 7 है।

चौबीसवें चित्र में तीर्थकरों के जन्मोत्सव का चित्रण किया गया है। बालक के जन्म के पश्चात् उसे सफेद ऐरावत हाथी पर मेरु पर्वत की ओर जाते दिखाया गया है। इसमें बहुत सारे मनुष्य एक झरने से इन्द्र कलश भरकर बालक का अभिषेक कर रहे हैं।

पच्चीसवें चित्र में तीर्थकर नेमीनाथ की निर्वाण-भूमि गिरिनार तीर्थ का चित्रण प्रस्तुत

किया गया है। इसमें पहाड़ी मार्गों पर मन्दिर और छत्रियाँ, तीर्थयात्री, वृक्ष तथा जानवर दर्शाए गए हैं। आकाश में बादलों की यात्रा का भी विवरण है जिसकी पृष्ठभूमि में हरे रंग बने हुए हैं। इस चित्र शैली पर राजस्थानी प्रभाव दिखाई देता है और इसका आकार 5 गुने 6 है। बाइसवें तीर्थकर नेमीनाथ ने यहीं पर दीक्षा प्राप्त की थी और वे तपस्या करते हुए मोक्ष की ओर गए थे। वर्तमान में यह स्थान गुजरात में जूनागढ़ के पास एक ऊँचे पहाड़ पर स्थित है।

इनके अतिरिक्त इस मन्दिर में जैन मत की 12 भावनाओं को चित्रों द्वारा और श्लोक लिखकर लकड़ी के बोर्डों के आकार पर चित्रित किया गया है। इसमें प्रत्येक भावना को अलग-अलग चित्रों द्वारा दर्शाया गया है। उदाहरणार्थ— धर्म भावना के लिए निम्न श्लोक है—

‘धन कन कंचन राज सुख, सवहि सुलभकर जानि ।

दुर्लभ है संसार में, एक जयारथ ज्ञान ॥’

इसी तरह 1768 ई० में बने इस मन्दिर ने रामायणकालीन, महाभारतकालीन एवं जैन मत की सम्पूर्ण परम्पराओं का समावेश एक ही स्थान पर दिखाने का प्रयास किया गया है। जैन मत के सिद्धान्त एवं उनकी कला, नैतिकता, वैचारिक तथा आत्मसंयम का अनोखा संगम यहाँ दिखाई पड़ता है। इस प्रकार दिगम्बर जैन तेरापंथी पञ्चायती मन्दिर जो गश्त का ताजिया, लश्कर में स्थित होकर नगर एवं देश का भव्य एवं प्राचीनतम मन्दिर है।

सन्दर्भ :

1. सुरेश चन्द्र जैन, *ग्वालियर जैन निर्देशिका*, पृ० 45
2. वही, पृ० 46
3. वही, पृ० 47
4. वही, पृ० 49
5. वही, पृ० 52
6. वही, पृ० 54
7. मुनि कान्ति सागर, *जैन द्वारा पल्लवित चित्रकला*, 1947, पृ० 67
8. वही, पृ० 70
9. वही, पृ० 72
10. वही, पृ० 73
11. वही, पृ० 77
12. वही, पृ० 80
13. वही, पृ० 81
14. वही, पृ० 90
15. वही, पृ० 92
16. डॉ० भागचन्द्र, *जैन-तीर्थ दर्शन*, भाग 1, पृ० 52
17. वही, पृ० 55
18. वही, पृ० 57

19. वही, पृ० 58
20. वही, पृ० 60
21. वही, पृ० 107
22. वही, पृ० 109
23. वही, पृ० 112
24. वही, पृ० 114
25. वही, पृ० 117
26. वही, पृ० 118
27. वही, पृ० 120
28. वही, पृ० 124
29. वही, पृ० 131
30. वही, पृ० 132





28.

गजनीखेड़ी का चामुण्डा मन्दिर

आशीष कुमार बिठोरे

डॉ० विष्णु श्रीधर वाकणकर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व
अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

मध्यप्रदेश के उज्जैन जिले की बड़नगर तहसील में लगभग 17 किमी० उत्तर-पश्चिम के गाँव से 1.2 किमी० की दूरी पर एक प्राचीन मन्दिर स्थित है जिसे 'रूनिजा' (गजनीखेड़ी) के नाम से जाना जाता है। सामान्यतः इसे चामुण्डा माता मन्दिर के नाम से भी पहचाना जाता है।

सम्पूर्ण मन्दिर बलुआ प्रस्तर से निर्मित है। इसका भवन अपनी प्राचीन अवस्था का बोध करा रहा है। मन्दिर के प्रांगण एवं अंदर रखी प्रतिमाओं से यह आभासित होता है कि समय-समय पर इसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन होते रहे हैं। गर्भगृह में रखी तीन शाक्त एवं एक द्विभुजी गणेश की प्रतिमा तथा ब्राह्म परिक्षेत्र में वृक्ष के नीचे दो ललितासना स्कन्दमाता तथा एक विष्णु-प्रतिमा अंलकरण व कला-विन्यास की दृष्टि से गुप्तकाल (छठी-7वीं शती) की है। ये सभी प्रतिमाएँ सिन्दूर से लेपयुक्त हैं। इन प्रतिमाओं के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मूलतः यह मन्दिर गुप्तकाल में निर्मित हुआ होगा, लेकिन सम्भवतः प्राकृतिक प्रकोप के कारण समूचा पवित्र स्थल गर्त में समा गया होगा।

गुप्तकाल के पश्चात 700 से 1300 ई० के बीच मध्ययुगीन भारतीय इतिहास में अनेक राजनैतिक परिवर्तन हुए। सम्भवतः इसी बीच वास्तु एवं मूर्तिकला का भी बहुमुखी विकास एवं विस्तार हुआ। कलाप्रेमियों ने जहाँ एक ओर नये मन्दिरों का निर्माण कराया, वहीं

दूसरी ओर उन जीर्ण-शीर्ण मन्दिरों का पुनरुद्धार भी किया जो प्राकृतिक एवं मानवीय विपदाओं से धूमित हो चुके थे। इस मन्दिर की स्थली पर परमार नरेशों द्वारा निर्माण किया गया। भूमिज शैली पर आधारित यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है जिसके गर्भगृह, अंतराल तथा मण्डप उल्लेखनीय हैं। गर्भगृह आयताकार है जो 3.88 मीटर लम्बा व 2.70 मीटर चौड़ा है। ललाटबिम्ब के मध्य में माहेश्वरी आसीन हैं। अलंकरणयुक्त द्वार पर नीचे बायीं ओर कच्छपारूढ़ा यमुना तथा दाहिनी ओर द्विभुजा मकरारूढ़ा गंगा विद्यमान हैं। मातृकाओं के दायें-बायें अन्य मातृकाएँ चतुर्भुजा और ललितासन में पूर्ण अलंकरणों सहित उत्कीर्ण हैं। मातृकाओं के दायें एवं बायें इंद्राणी व चामुण्डा उत्कीर्ण हैं। वर्तमान में चूने से पुती होने के कारण अन्य मातृकाओं की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। गर्भगृह के मध्य में परिधान एवं आवरणों से भूषित पाषाण-निर्मित सिन्दूर लेपयुक्त चामुण्डा की मुख्य प्रतिमा पूजनाधीन है।

वर्तमान में सीमेन्टयुक्त दीवारें खड़ी की गई हैं एवं फर्श पक्का बनाया गया है। चामुण्डा की प्रतिमा के अतिरिक्त यहाँ अन्य चार प्रतिमाएँ स्थापित हैं जिसमें स्कन्दमाता व एक गणेश की हैं। मन्दिर के अंतराल में दो पूर्ण विकसित कमलपुष्प हैं। मन्दिर का मण्डप सोलह अलंकरणयुक्त स्तम्भों पर आधारित है। वर्तमान में ये सभी सिन्दूरलेपित हैं। इस वजह से इनकी स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी। आँगन के ही दक्षिण-पूर्व में एक पाषाण-निर्मित बावड़ी है। मन्दिर जँघा तक मूल स्थिति में है जिसकी दक्षिण बाह्य भित्ति पर महेश्वरी दसभुजी दुर्गा एवं चामुण्डा की प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। उत्तरी आले में अर्द्धनारीश्वर स्थानक है। मन्दिर की बाह्य भित्ति पर मण्डप द्वार की दाहिनी ओर 11वीं शताब्दी का एक पाँच पंक्तियुक्त नागरी लेख उत्कीर्ण है जो सम्भवतः मन्दिर के पुनर्निर्माण के समय उत्कीर्ण कराया गया होगा। लेख के ऊपर एक अष्टभुजा नृत्य गणपति की प्रतिमा है जो इसी काल की है। मन्दिर के पीछे तथा आसपास बड़े-बड़े प्रस्तर स्थापत्य खण्ड बिखरे पड़े हैं जिनमें एक महिषासुरमर्दिनी की भग्न प्रतिमा भी है।

वस्तुतः ये सभी मूक प्रस्तर स्थापत्य खण्ड एवं प्रतिमा परमार युग की कला का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह विशाल मन्दिर एक ऐतिहासिक कहानी का परिचायक है जो हमारे गौरवशाली इतिहास के पिछले स्वर्णिम पृष्ठों की ओर ध्यान आकृष्ट कराती है।





29.

नर्मदातटीय शैव सम्प्रदाय का अध्ययन (होशंगाबाद के सन्दर्भ में)

डॉ० असुन्ता कुजूर

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय नर्मदा महाविद्यालय, होशंगाबाद

नदियों का इतिहास सम्पूर्ण मानव संस्कृति के विकास-क्रम का इतिहास है। प्राचीन भूगोल, पुरातात्विक धरोहर, मानव के वर्तमान और भविष्य के विषय में समय-समय पर बदलती सीमाएँ, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास— सब कुछ बताती है। ऐसी नदियों में नर्मदा का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

नर्मदा नदी एवं शैव सम्प्रदाय— नर्मदा नदी शहडोल जिले के अमरकंटक (22.40 उ० 80.45 पू०) से 1051 मी० की ऊँचाई से निकलकर भड़ौच के निकट खम्भात की खाड़ी में गिरती है। यह नदी जबलपुर, नृसिंहपुर, होशंगाबाद, खण्डवा, खरगोन जिले से होकर बहती है। प्राचीन नर्मदा का इतिहास शैव सम्प्रदाय की प्राचीनता को अपने आंचल में समेटे में हुए है। कहा जाता है कि नर्मदा की कल-कल धाराओं में बहनेवाले हर कंकर, शंकर (शिवलिंग) है, तथा नर्मदा की उत्पत्ति शिव से हुई है, इसलिए नर्मदा को 'शंकरी' नाम से पुकारा जाता है। नर्मदा किनारे बसा होशंगाबाद जिला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पाषाणकालीन उपकरणों के अतिरिक्त पुरातात्विक सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि यहाँ शैव सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है एवं कलचुरी, परमार और गोण्ड-राजाओं के समय निर्मित मन्दिर-मूर्तियाँ भी विद्यमान हैं। ईसा की प्रथम-द्वितीय शताब्दी के कनिष्ककालीन सिक्कों पर द्विभुजीय व चतुर्भुजीय शिव का उल्लेख है। इन सिक्कों पर शशांक शेखर दिखाई देता है। कुषाणों के शासनकाल से प्राप्त स्रोतों के आधार

पर शैव सम्प्रदाय पहली एवं दूसरी शताब्दी ई०पू० के प्रमाणित होते हैं तथा सोहागपुर से प्राप्त 7वीं एवं 8वीं शताब्दी की उमामहेश्वर प्रतिमाएँ इस क्षेत्र में शैव सम्प्रदाय की पुष्टि करता है। परमार शासक उदयवर्मा के अभिलेख में 'होशंगाबाद' का नाम 'नर्मदापुरम्' होने की पुष्टि होती है। परमार शासकों के अभिलेखों में भी शिवस्तुति के सन्दर्भ मिलते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि होशंगाबाद में शैव सम्प्रदाय लोकप्रिय था एवं मन्दिर तथा चबूतरों पर लिंग एवं मूर्तियों के रूप में पूजित था।

होशंगाबाद में शिव-प्रतिमाएँ

- (1) **शिव**— लगभग 12वीं शताब्दी की लाल पाषाण निर्मित होशंगाबाद से प्राप्त शिव-प्रतिमा का आकार 79 गुने 29 गुने 23 सेमी० है। यह प्रतिमा किसी पाषाण स्तम्भ का अवशेष है। प्रतिमा में बायां हाथ व दाहिना पैर भग्न है। आयुधों में त्रिशूल, नृत्यमुद्रा व गजमुद्रा व खड्ग परिलक्षित है। दो स्तम्भों के मध्य प्रतिमा है। जटामुकुट, कुण्डल, भुजबंध एवं कंगनादि आभूषणों से सुसज्जित है। प्रतिमा द्विभुजी है। प्रतिमा दो अलंकृत स्तम्भ के मध्य में है।
- (2) **शिव स्तम्भ**— लगभग 13वीं शताब्दी की लाल पत्थर निर्मित होशंगाबाद से प्राप्त शिव-स्तम्भ का आकार 104 गुने 34 गुने 20 सेमी० है। त्रिभंग मुद्रा में चतुर्भुज शिव हैं। प्रतिमा क्षरित व खण्डित है तथा जटामुकुट, हार, कुण्डल धारण किये हुए है। हाथों में सर्प व त्रिशूल है। शेष अस्पष्ट है। एक ओर स्त्री-प्रतिमा व दूसरी ओर पुरुष-प्रतिमा बनी है।
- (3) **शिव**— लगभग 13वीं शताब्दी की बलुआ निर्मित होशंगाबाद से प्राप्त शिव प्रतिमा जिसका आकार 52 गुने 46 गुने 22 सेमी० है। चतुर्भुजी शिव द्विभंग में खड़े है। दायें हाथ में ऊपर त्रिशूल नीचे का वरद, बायीं ओर ऊपर सर्प व नीचे मण्डल है। किन्तु कुछ भग्न है। नीचे वृषभ भी खण्डित है। आभूषणों में जटामुकुट, गोल, गुंबद, हार व यज्ञोपवीत है। प्रतिमा आकर्षक है।
- (4) **उमामहेश्वर**— लगभग 11वीं शताब्दी की सफेद बलुआ पत्थर निर्मित प्रतिमा होशंगाबाद से प्राप्त हुई है। इसका आकार 35 गुने 21 गुने 14 सेमी० है। प्रतिमा मे मात्र उमा का धड़ दृष्टिगम्य है। सुंदर जोड़ा एकावली कण्ठहार स्तनसूत्रधारित उमा दृष्टिगत हैं। बाएँ परिकर में भग्न देवाकृति अंकित है।
- (5) **कार्तिकेय**— लगभग 11वीं शताब्दी की लाल पाषाण निर्मित होशंगाबाद से प्राप्त कार्तिकेय की प्रतिमा का आकार 52 गुने 52 गुने 32 सेमी० है। प्रतिमा अच्छी स्थिति में है। दो अलंकृत स्तम्भ के मध्य में द्विभंग में प्रतिमा का अंकन है। दक्षिणार्द्ध क्रम से फल, कलश, दण्ड व पोथी, वाहन मयूर खण्डित है। मयूर फल को चोंच से खाने का

प्रयास कर रहा है। नीचे दोनों ओर मकर, व्याल, हस्ति व नीचे दोनों ओर सिंह दोनों हाथ ऊपर उठाए प्रदर्शित किए गए हैं।

- 6) **गणेश**— लगभग 12वीं शताब्दी की लाल पाषाण निर्मित होशंगाबाद से प्राप्त गणेश प्रतिमा का आकार 70 गुने 57 गुने 22 सेमी० है। यह प्रतिमा चतुर्भुजी गणेश नृत्यरत प्रदर्शित है। मस्तक पर मुकुट व मोतियों की द्विलडियों का अलंकरण है। दक्षिणार्द्ध से लड्डू अस्पष्ट है। फरसा खण्डित है। दाँत व सूँड भग्न है। दायाँ पैर के पास से खण्डित है। पादवलय धारण किये हैं।
- 7) **शिव स्तम्भ**— लगभग 13वीं शताब्दी की लाल पत्थर निर्मित होशंगाबाद से प्राप्त शिव स्तम्भ का आकार 104 गुने 34 गुने 20 सेमी० है। त्रिभंग मुद्रा में चतुर्भुजी शिव हैं। प्रतिमा क्षरित जटामुकुट, हार, कुण्डल धारण किए हैं। हाथों में सर्प व त्रिशूल है। शेष अस्पष्ट है। एक ओर स्त्री-प्रतिमा व दूसरी ओर पुरुष-प्रतिमा बनी है।
- 8) **शिव**— सोहागपुर से प्राप्त 12वीं शताब्दी की काले पत्थर से निर्मित शिव-प्रतिमा का आकार 35 गुने 35 गुने 14 सेमी० है। प्रतिमा आकर्षक है। स्थानक द्विभंग में शिव खड़े प्रदर्शित हैं। मस्तक पर जटामुकुट है। एक कान खण्डित है। गले में हार, हाथों में बाजूबंद है। कमरबंद, करधनी, धोती, उत्तरीय व पादवलय धारण किए हैं। परिवार में ऊपर गन्धर्व का अंकन है।
- 9) **शिव**— लगभग 13वीं-14वीं शताब्दी का बलुआ पत्थर निर्मित सोहागपुर से प्राप्त प्रतिमा का आकार छोटा है। यह एक शिलाखण्ड पर बनी आकृति है जो पूर्ण है तथा परिकर में ललितासन में चतुर्भुजी शिव-प्रतिमा है।
- 10) **उमामहेश्वर**— 12वीं-13वीं शताब्दी की सोहागपुर से प्राप्त उमामहेश्वर की प्रतिमा का आकार 43 गुने 21 गुने 15 सेमी० है। खण्डित प्रतिमा में उमा का आधा धड़ शेष है। ऊपर राधिका में ब्रह्म आसीन है। नीचे गणेश की लघु प्रतिमा है, जिसमें मालाधारी का अंकन है। उमा के हाथ में बीच पूरक है।
- 11) **उमामहेश्वर**— लगभग 11वीं-12वीं शताब्दी की बलुआ पत्थर निर्मित प्रतिमा सोहागपुर से प्राप्त हुई है जिसका आकार 31 गुने 39 गुने 20 सेमी० है। शिव के हाथ में त्रिशूल तथा पार्वती का मुख खण्डित है।
- 12) **उमामहेश्वर**— 11वीं-12वीं शताब्दी की सोहागपुर से प्राप्त उमा-महेश्वर की प्रतिमा बलुआ पत्थर निर्मित है जिसका आकार 62 गुने 32 गुने 23 सेमी० है। उमा महेश्वर के ललितासन में बैठी हैं। प्रतिमा का मुख व पैर खण्डित है। आसन के नीचे नन्दी है। गणेश व कार्तिकेय का दोनों ओर अंकन है। ऊपर गन्धर्व तथा अप्सरा का अंकन है। ऊपर चँवर, लिपी, स्त्री-प्रतिमा तथा मस्तक के पीछे ब्रह्मा व विष्णु का अंकन है।

- 13) **गणेश**— 11वीं-12वीं शताब्दी की बलुआ पत्थर निर्मित सोहागपुर से प्राप्त गणेश-प्रतिमा का आकार 62 गुने 44 गुने 25 सेमी० है। नृत्य-मुद्रा में एकदन्त गणेश-प्रतिमा की चार भुजाएँ हैं, जिसमें दाहिनी ऊपरी भुजा में त्रिशूल, नीचे के हाथ में मोदक है। पैरों के समीप मूषक है। सुंड वामावर्ती है।
- 14) **शिव**— लगभग 11वीं-12वीं शताब्दी की लाल प्रस्तर-निर्मित सिवानी मालवा से प्राप्त शिव-प्रतिमा का आकार 55 गुने 12 गुने 13 सेमी० है। भुजाएँ एवं पैर खण्डित हैं। जटामुकुट, हार, करधनी धारण किए हैं। मुद्रा द्विभंग है। नन्दी का अंकन है, जो खण्डित है। त्रिशूल एवं कमण्डल भी भग्न स्थिति में हैं।
- 15) **उमामहेश्वर**— लगभग 12वीं-13वीं शताब्दी की सफेद पत्थर निर्मित प्रतिमा सिवनी मालवा से प्राप्त हुई है। इसका आकार 56 गुने 39 गुने 20 सेमी० है। शिव के हाथों हाथ में त्रिशूल, पार्वती का मुख खण्डित है। उमा की प्रतिमा भग्न है।
- 16) **उमामहेश्वर**— 11वीं-12वीं शताब्दी की सिवनी मालवी से प्राप्त बेसाल्ट-निर्मित उमामहेश्वर प्रतिमा का आकार 46 गुने 32 गुने 16 सेमी० है। प्रतिमा पूर्ण खण्डित है। मात्र पादपीठ पर शृंगी ऋषि एवं नन्दी का अंकन है।
- 17) **उमामहेश्वर**— लगभग 12वीं शताब्दी की बलुआ पत्थर निर्मित उमामहेश्वर प्रतिमा सिवनी मालवा से प्राप्त हुई है। इसका आकार 37 गुने 43 गुने 16 सेमी० है। प्रतिमा में देवी व शिव का भाग भग्न है। आसन के नीचे मध्य में शृंगी ऋषि, वाहन एवं सिंह—तीनों ही भग्न स्थिति में हैं। दायीं ओर कार्तिकेय एवं बायीं ओर गणेश विद्यमान हैं।
- 18) **भैरव**— लगभग 11वीं-12वीं शताब्दी की सिवनी मालवा से प्राप्त भैरव-प्रतिमा बलुआ पत्थर निर्मित है, जिसका आकार 29 गुने 25 गुने 34 सेमी० है। चतुर्भुजी रुद्रभैरव की प्रतिमा है। मस्तक पर जटामुकुट है। दो भुजाएँ शेष हैं जिसमें दायें में डमरू एवं बायें में खड्ग है। कानों में चक्र, कुण्डल, गले में हार है, जंघा के नीचे का भाग खण्डित है। दोनों ओर देवी आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं जिनके मस्तक ही शेष है।
- 19) **शिव**— लगभग 11वीं-12वीं शताब्दी की बलुआ पत्थर निर्मित टिमरनी से प्राप्त शिव-प्रतिमा का आकार 20 गुने 10 गुने 14 सेमी० है। यह प्रतिमा का एक चौथाई हिस्सा है, जिसमें शिव का जटामुकुट एवं त्रिशूल स्पष्ट है। गले में हार एवं कानों में कुण्डल धारण किये हैं। त्रिशूल के ऊपर प्रतिमा के पिछले हिस्से में गणेश-प्रतिमा है। इसका मस्तक नहीं है। शिव के पीछे प्रभामण्डल है।
- 20) **शिव**— लगभग 12वीं-13वीं शताब्दी की बेसाल्ट निर्मित टिमरनी से प्राप्त शिव-प्रतिमा का आकार 30 गुने 18 गुने 11 सेमी० है। मुख के अतिरिक्त पूर्ण खण्डित है। मस्तक पर जटामुकुट है। वितान व ललितासन से देवी प्रतिमा तथा पार्श्व में दोनों ओर

मालाधारी युगल अंकित है।

- 21) **शिव**— लगभग 12वीं-13वीं शताब्दी की काला पत्थर पर जटानिर्मित टिमरनी से प्राप्त शिव-प्रतिमा का आकार 36 गुने 33 गुने 14 सेमी० है। शिव मस्तक पर जटामुकुट स्पष्ट है। शेष भाग नहीं है।
- 22) **उमामहेश्वर**— 12वीं-13वीं शताब्दी की कला प्रस्तर निर्मित प्रतिमा का आकार 42 गुने 33 गुने 7 सेमी० है। टिमरनी से प्राप्त उमामहेश्वर प्रतिमा अर्द्धपर्यकासन मुद्रा में है। प्रतिमा में शिव की दायीं ओर का भाग खण्डित है। जटामुकुट, गले का हार, उत्तरीय व अधोवस्त्र दृष्टव्य है। उमा का मुख, पैर— सभी भग्न हैं। शिव के ऊपर एक ओर कार्तिकेय व दूसरी ओर गणेश हैं जो खण्डित हैं।
- 23) **उमामहेश्वर**— 12वीं-13वीं शताब्दी की सफेद प्रस्तर-निर्मित प्रतिमा का आकार 33 गुने 38 गुने 16 सेमी० है। यह टिमरनी से प्राप्त है। इस प्रतिमा का मात्र पैर शेष है। वृषभारूढ़ प्रतिमा में उमामहेश्वर का आमनस्थ भाग ही दृष्टिगत है। पादपीठ पर बायीं और शृंगी ऋषि का अंकन है। तीन पंक्तियों में देवनागरी लिपि में लेख है।
- 24) **उमामहेश्वर**— 12वीं-13वीं शताब्दी के बेसाल्ट-निर्मित उमामहेश्वर प्रतिमा टिमरनी से प्राप्त हुई है जिसका आकार 44 गुने 34 गुने 11 सेमी० है। धड़ का हिस्सा शेष है। अर्द्धपर्यकासन में बैठी प्रतिमा है। वक्ष के ऊपर भाग व आयुध खण्डित है। उमा के हाथ में दर्पण है। नीचे वाहन नन्दी व सिंह तथा ऋषि का अंकन है।

प्राप्त पुरातात्विक स्रोतों से शैव सम्प्रदाय का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि होशंगाबाद में शैव सम्प्रदाय अत्यन्त प्राचीन है। भारत ही नहीं वरन भारतेतर देशों में शिव के माहात्म्य को जनमानस ने भली-भाँति जाना है।

आधार-ग्रन्थ :

1. धर्मेन्द्र प्रसाद, *नर्मदा की कहानी*
2. *स्कन्दपुराण*
3. *मत्स्यपुराण*
4. उपाध्याय वासुदेव, *भारतीय मुद्राएँ*
5. होशंगाबाद डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, 1994
6. शर्मा, राजकुमार, *मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रंथ*
7. समस्त मूर्तियों का जिला संग्रहालय, होशंगाबाद का सर्वेक्षण एवं अध्ययन





30.

निमाड़ क्षेत्र, बड़वानी के नर्मदातटीय शिव-मन्दिरों का ऐतिहासिक अध्ययन

प्रवीण मालवीय

शोधार्थी, इतिहास, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बड़वानी

वैदिककाल में रुद्र के रूप में शिव की परिकल्पना की गई है। शिव के अनेक नाम वेदों में मिलते हैं। परवर्ती महाकाव्यों और पुराणों में शिव के विभिन्न रूपों को आख्यानो के माध्यम से विस्तार मिला है। शिव के दार्शनिक रूपों की भी चर्चा की गई है। पुराणों में शिव और पार्वती की उपासना है। *स्कन्दपुराण* में शिवपूजन की महिमा बताई गई है। सम्राट् हर्ष के कार्यकाल में पाशुपत सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है। नवम शताब्दी में शंकराचार्य ने भी शिव का महत्त्व प्रतिपादित किया है।

निमाड़ में प्रद्योत मौर्यकाल से 12वीं-13वीं शताब्दी के परमार शासकों तक ने शैव सम्प्रदाय के प्रचार में पर्याप्त योगदान दिया। चूंकि नर्मदा, निमाड़ की जीवनदायिनी नदी कहलाती है, जिसका पुराण में शिवपुत्री के रूप में उल्लेख मिलता है। इस कारण निमाड़ परिक्षेत्र में नर्मदा किनारे अनेक प्राचीन शिव-मन्दिर मिलते हैं। बड़वानी जिला क्षेत्र में नर्मदा के किनारे ब्राह्मण गाँव से शिव-मन्दिरों की श्रृंखला प्राप्त होती है।

सुखेश्वर महादेव मन्दिर— बड़वानी जिला मुख्यालय से 40 किमी० की दूरी पर ब्राह्मणगाँव बसा है। यहाँ नर्मदा के किनारे एक ऊँची टेकड़ी पर प्रसिद्ध सुखेश्वर महादेव मन्दिर है। इसके भीतरी भाग में शिवलिंग स्थापित है। पाषाण-निर्मित इस शिवलिंग का जलाधार पीतल धातु से बना है। मन्दिर के गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ भी है। इसके बाहर 12

स्तंभों पर आधारित एक आकर्षक मण्डप निर्मित है। यह मन्दिर आर्य शैली में बना है। इसका शिखर गुंबदाकार है जिसका सौन्दर्य देखते ही बनता है। यह स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

सुकलेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर भी बड़वानी जिला परिक्षेत्र के ब्राह्मणगाँव में स्थित है। गर्भगृह, मण्डप, अर्द्धमण्डप व शिखर इस मन्दिर के प्रमुख भाग हैं। इसका शिवलिंग अति प्राचीन माना जाता है। जनश्रुति के अनुसार इसकी स्थापना महाभारतकाल में हुई एवं निर्माण कार्य बाद में हुआ। इसके गर्भगृह में शिवलिंग प्रतिष्ठित है। यह शिवलिंग पाषाण से एवं जलाधार ताम्रधातु से निर्मित है। यह मन्दिर पूर्वाभिमुखी है तथा इसके शिखर के पास शृंग व उरुशृंग बने हैं जो अत्यन्त भव्य हैं।

कपिलेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर लोहारा ग्राम में है और बड़वानी जिला मुख्यालय से 35 किमी० की दूरी पर स्थित है। यह मन्दिर आकार की दृष्टि से अत्यन्त छोटा है। गर्भगृह, प्रदक्षिणा-पथ और मञ्जिका शिव-मन्दिर के प्रमुख भाग हैं। इसका शिवलिंग अति प्राचीन है जिसे प्रसिद्ध तपस्वी कपिल ऋषि के द्वारा स्थापित माना जाता है। इस मन्दिर में प्रवेश हेतु सीढ़ियों का निर्माण किया गया है। यह मन्दिर उत्तराभिमुख बना है। स्थापत्य की दृष्टि से यह मन्दिर अत्यन्त साधारण है, किन्तु अति प्राचीन होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है।

सिद्धेश्वर महादेव मन्दिर— यह प्रसिद्ध मन्दिर भी लोहारा ग्राम में स्थित है। इस मन्दिर का निर्माण एक ऊँची पहाड़ी पर किया गया है। स्थापत्य की दृष्टि से यह अत्यन्त मोहक है। इस मन्दिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है तथा मन्दिर के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर दीवार पर पाली भाषा में एक पुराभिलेख उत्कीर्ण है। इस मन्दिर के शिवलिंग की स्थापना पाण्डवकाल में हुई, किन्तु मन्दिर का निर्माण मौर्यकाल में हुआ। इस मन्दिर का विमान अत्यन्त सुन्दर है। मुख्य मन्दिर के ईर्द-गिर्द अन्य 6 शिवालय भी बने हैं।

कपालेश्वर महादेव मन्दिर— ग्राम दन्तवाड़ा में नर्मदा किनारे कपालेश्वर महादेव मन्दिर स्थापित है। यह बड़वानी जिला मुख्यालय से 23 किमी० की दूरी पर बसा है। यह अत्यन्त प्राचीन मन्दिर है। इसमें गर्भगृह के अन्दर स्थित शिवलिंग अत्यन्त सुंदर है। इस शिवलिंग के चारों ओर कुण्डलित अवस्था में नाग लिपटा है। मन्दिर का शिखर गोलाकार है। इसके शीर्षस्थ पर कलश के समान रचना बनी हुई है। यह मन्दिर पश्चिमाभिमुखी है। इस मन्दिर का निर्माणकाल 1200-1300 वर्ष पूर्व माना जाता है।

सिद्धेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर भी दंतवाड़ा ग्राममें स्थित है। स्थापत्य की दृष्टि से यह विशेष आकर्षक एवं महत्त्वपूर्ण है। यह पूरा मन्दिर काले-भूरे पाषाण से बना है। इस मन्दिर की दीवारों पर विभिन्न चित्र उत्कीर्ण हैं जो दो पंक्तियों में हैं। लगभग 150 वर्ष पुराना यह मन्दिर उत्तराभिमुखी है। इसका निर्माण सम्भवतः बड़वानी के सिसोदिया रियासत काल में

हुआ।

बृहस्पतेश्वर महादेव मन्दिर— यह ग्राम छोटा बड़दा में स्थित है जो बड़वानी से 22 किमी० की दूरी पर है। यह मन्दिर भी अति प्राचीन है तथा इसकी बनावट पाण्डवकालीन मन्दिरों के समान है। गर्भगृह में शिवलिंग की स्थापना है। यह शिवलिंग चिकने काले पाषाण का बना है। गर्भगृह में देवकुलियाँ भी निर्मित हैं। इसकी आंतरिक बनावट श्रीयंत्र के समान प्रतीत होती है। पूर्णतः पाषाण-निर्मित मन्दिर के मुख्य द्वार के ऊपर गणेश जी की प्रतिमा है। यह प्रतिमा नृत्यांगना मुद्रा में है। आर्य शैली में बना यह मन्दिर पूर्वाभिमुखी है।

आग्नेयेश्वर महादेव मन्दिर— यह अति भव्य मन्दिर भी ग्राम बड़दा में अवस्थित है। इस मन्दिर के आंतरिक भाग में जलाधारी शिवलिंग है। इस शिवलिंग के सामने काले पाषाण पर श्वेत नन्दी की प्रतिमा है। यह मन्दिर द्रविड़ शैली में निर्मित है। मन्दिर के शिवलिंग का काल-निर्धारण पाण्डवकालीन माना गया है। इस मन्दिर की पहाड़ी पर पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा खुदाई के दौरान राख और कोयले से भरी रांझने मिली हैं।

मोनेश्वर महादेव मन्दिर— यह मन्दिर बड़वानी से मात्र 4 किमी० की दूरी पर छोटी कसरावद ग्राम में स्थित है। यह अति प्राचीन एवं ऐतिहासिक मन्दिर है। स्थापत्य की दृष्टि से इसका गर्भगृह अत्यन्त मनोहर है। बड़वानी क्षेत्र में अब तक वर्णित समस्त मन्दिरों में से इसमें सर्वाधिक आकर्षक स्थापत्य है। मन्दिरों की दीवारों पर सुन्दर कलाकृतियाँ हैं। यह आर्य शैली में बना है जो पूर्वाभिमुखी है। नर्मदा किनारे अवस्थित यह मन्दिर डूब क्षेत्र प्रभावित होने के कारण यहाँ से एकलरा विस्थापित कर दिया गया है।

सिद्धनाथ मन्दिर— बड़वानी जिले में एक 9वीं और 10वीं शताब्दी का प्राचीन सिद्धनाथ मन्दिर है। सम्भवतः इसी मन्दिर के नामकरण पर इस नगर का प्राचीन नाम 'सिद्धनगर' पड़ा। मन्दिर का स्थापत्य परमारकालीन है। आकार में यह छोटा मन्दिर पाषाण-निर्मित है। अन्य शिव-मन्दिरों की तरह इसकी भी आकर्षक रचना है।

निष्कर्ष :

बड़वानी जिले के नर्मदातटीय क्षेत्र नावड़ाटोड़ी के उत्खनन में डॉ० एच०डी० सांकलिया को पूर्व-पाषाणकालीन मानव अस्तित्व के प्रमाण मिले हैं।

नर्मदा घाटी विश्व की प्राचीनतम घाटी है। पुराणों में नर्मदा नदी के उल्लेख प्राप्त होते हैं। मौर्यकाल से ही इस क्षेत्र में शैव सम्प्रदाय के प्रमाण उपलब्ध होते हैं। नर्मदातटीय शिव-मन्दिर इसके प्रमाण हैं। यद्यपि इन मन्दिरों के प्राचीनत्व का कार्बन-14 द्वारा परीक्षण नहीं हुआ है। अतः इन प्राचीन मन्दिरों के निर्माणकाल के बारे में निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

ब्राह्मणगाँव से लेकर हरणफाल तक पुख्ता व प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं

हैं, जितने कि महेश्वर के सन्दर्भ में मिलते हैं। इसलिए इनकी ऐतिहासिक के सन्दर्भ में प्रायः जनश्रुतियों को ही अधिक अधिग्रहीत किया गया है।

आधार-ग्रन्थ :

1. कु० उषा देवड़ा, नर्मदातटीय मन्दिरों और घाटों का ऐतिहासिक विश्लेषण
2. डॉ० एच०डी० सांकलिया, द एक्सकेवेशन एट महेश्वर एण्ड नावड़ाटोड़ी, पूना-बड़ौदा, 1959





31.

मालवा व निमाड़ में मन्दिरों का उद्भव एवं विकास

डॉ० रमेशचन्द्र यादव

रानी दुर्गावती संग्रहालय, जबलपुर

मध्यप्रदेश का पश्चिमी अञ्चल भौगोलिक एवं सांस्कृतिक रूप से मालवा व निमाड़ के नाम से जाना जाता है। यही परिक्षेत्र प्राचीन काल में अवन्ति के रूप में विख्यात रहा है।

इस परिक्षेत्र में मन्दिर के प्राचीनतम अवशेष बेसनगर (विदिशा) एवं दंगवाड़ा (उज्जैन) के उत्खनन में प्रकाश में आये। दोनों ही मन्दिर के अवशेष मौर्यकाल के स्तरों से प्रकाश में आये। मन्दिर स्थापत्य का सीधा संबंध पूजा-परम्परा से है। शुंगकाल में वैदिक धर्म का पुनरुद्धार हुआ और मन्दिर-स्थापत्य की गतिविधियाँ प्रारम्भ हुई। शुंगकाल में विदेशी वैष्णव सम्प्रदाय स्वीकारकर मन्दिर के समक्ष स्तम्भ स्थापित कर अपनी आस्था प्रकट कर रहे थे। बेसनगर का हेलियोडोरस स्तम्भ इसका प्रमुख साक्ष्य है। गुप्तकाल में संरचनात्मक मन्दिर का स्वरूप निश्चित हुआ, जो शैलीत्कीर्ण गुफाओं के आकार प्रकार से भिन्न था। साँची का मन्दिर-क्र० 17 इसका प्राचीनतम उदाहरण है। उदयगिरी की शैलीत्कीर्ण गुफाओं एवं पहाड़ी के ऊपर के मन्दिर-अवशेष भी गुप्तकालीन स्थापत्य-कला के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। मालवा व निमाड़ क्षेत्र पर गुप्त-शासकों का प्रत्यक्ष नियन्त्रण नहीं था। मालवा में औलिकर शासक एवं निमाड़ में बलख शासकों का अधिपत्य था। इस समय मालवा का मुख्यालय मन्दसौर व उज्जैन था, वहीं निमाड़ का मुख्यालय धार जिले का आधुनिक बाघ, बलख के नाम से राजधानी के रूप

में स्थापित था।

औलिकर शासकों के समय मंदसौर नगर एवं आस-पास के क्षेत्रों में कई मन्दिरों का निर्माण हुआ। दुर्भाग्य से इन मन्दिरों का स्वरूप साक्ष्य के रूप में अवशिष्ट नहीं है। औलिकर-शासकों के अभिलेखों में इन देवालयों को 'गगनचुम्बी' शब्द से सम्बोधित किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि 5वीं-6ठी शती में शिखर का पूर्णतः विकास हो चुका था। 5वीं शती में निर्मित सूर्य-मन्दिर की मूल प्रतिमा मंदसौर संग्रहालय में प्रदर्शित है। इसका कुमारगुप्त बंधुवर्मन के अभिलेख में विशद विवरण मिलता है। इसके बाद महाराज गौरी, सम्राट् प्रकाशधर्मन, सम्राट् यशोधर्मन के अभिलेखों में शिव मन्दिर, ब्रह्मा मन्दिर बनाए जाने का विवरण मिलता है। इस काल की कई दुर्लभ कलाकृतियाँ मंदसौर व भोपाल संग्रहालय में प्रदर्शित हैं।

गुप्तकाल का दूसरा महत्वपूर्ण नगर या स्थल धार जिले का आधुनिक भाग था, जिसे बलक से समीकृत किया गया है। यहाँ महाराज भुलुण्ड, महाराज विशाखदत्त, महाराज भट्टाकर, महाराज स्वामीदास के 28 ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं, जो इन्दौर संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इन सभी ताम्रपत्रों में ब्राह्मणों, पाशुपताचार्यों व अग्रहारों को भूदान देने का विवरण है।

इन लेखों में कुमार कार्तिकेय, विष्णु, देवी तथा 'वप्पपिशाच' देव मन्दिर बनाए जाने का विवरण मिलता है। दुर्भाग्य से इस क्षेत्र के मन्दिर भी आज अवशिष्ट नहीं हैं, और न ही कोई प्रतिमा इस काल की प्रकाश में आई है। वप्पपिशाच देव की पूजा पाशुपताचार्य करते थे, सम्भवतः 'वप्पापिशाच', देव लकुलीश का तत्कालीन नाम है। पाशुपत सम्प्रदाय के मन्दिरों का विवरण निमाड़ के लेखों में मिलता है, किन्तु सर्वाधिक प्रतिमाएँ मंदसौर से मिली हैं। यह तथ्य भी विचारणीय है।

गुप्तोत्तर काल मन्दिर-स्थापत्य के विकास का काल था, इस समय राजनैतिक शक्तियों, धार्मिक संगठनों द्वारा मन्दिर-निर्माण परम्परा विकसित की गयी। इन्हीं वास्तुशास्त्रीय परम्पराओं का वास्तुविदों व स्थापतियों द्वारा विकास किया गया। मन्दिरों के निर्माण में इन्हीं निर्दिष्ट सिद्धान्तों का पालन किया जाता था। क्षेत्रीय आधार पर सिद्धान्तों में विविधता थी, जो इनके नामकरण व परिचय का आधार बना। 8वीं से 10वीं शती तक उत्तर भारत में प्रतिहार, राष्ट्रकूट व पालों का त्रिराज्य संघर्ष चलता रहा, जिसके कारण वास्तुगत गतिविधियाँ प्रभावित हुईं। मालवा व निमाड़ क्षेत्र संघर्षस्थली था, यहाँ पर कभी प्रतिहार कभी राष्ट्रकूटों का आधिपत्य रहा। किन्तु प्रतिहारों के अधीन 8वीं शताब्दी में ग्वालियर परिक्षेत्र में बटेश्वर एक कलाकेन्द्र के रूप में स्थापित हुआ जो गुप्तोत्तर काल में भी अस्तित्व में था। यहाँ 7वीं से 9वीं शती तक लगभग 25 मन्दिरों का एक ही परिसर में निर्माण हुआ, जिसमें प्रतिहार के मन्दिर-स्थापत्य में हुए क्रमशः विकास को देख जा सकता है। इसका अनुकरण कालान्तर में चम्बलघाटी व बुन्देलखण्ड में किया गया।

मन्दिर-स्थापत्य के विकास में राष्ट्रीय स्तर पर दो विभाजन थे, जिसमें उत्तर भारत की नागर शैली व दक्षिण भारत की द्रविड़ शैली थी, कल्याणी के चालुक्यों के अधीन उक्त दोनों शैलियों के मिश्रण से 7वीं-8वीं शताब्दी में बेसर शैली विकसित हुई। उत्तर भारत में नागर शैली का भी क्षेत्रीय विभाजन हुआ। इनमें प्रतिहार काल की गोपद्रि शैली एवं उसके अवशेषों पर विकसित कच्छापघात शैली, ग्वालियर परिक्षेत्र यथा, श्योपुर, मुरैना, भिण्ड शिवपुरी गुना में 10वीं शती के उत्तरार्द्ध से 12वीं शताब्दी तक अस्तित्व में रही। इसके लक्षण, आकार-प्रकार पूर्ववर्ती शैली से पृथक् है। बुन्देलखण्ड में चन्देल-शासकों के समय पूर्ववर्ती प्रतिहार शैली को ही परिवर्तितकर नवीन रूप में खजुराहो शैली के रूप में प्रस्तुत किया गया। मध्यप्रदेश के पूर्वाञ्चल महाकोसल क्षेत्र में कलचुरी-शासक 10वीं शताब्दी तक प्रतिहार शैली के प्रभाव में रहे, किन्तु 11वीं शताब्दी में कलचुरी शैली ने अपनी पहचान स्थापित की।

मालवा-निमाड़ क्षेत्र में 10वीं शताब्दी में परमारों ने स्वतंत्र सत्ता स्थापितकर बड़े पैमाने पर मन्दिरों का निर्माण किया। इससे पूर्व मंदसौर क्षेत्र में धर्मराजेश्वर, राष्ट्रकूट व प्रतिहार के समय शैलोत्कीर्ण मन्दिर बने, जिसमें प्रतिहार शैली का ही प्रयोग है। परमारों के समय मालवा व निमाड़ में विकसित शैली भूमिज शास्त्रीय स्थापत्य विधा है, जिसका 11वीं शती के भोजकृत *समरांगणसूत्रधार* एवं 12वीं शताब्दी के *अपराजितपृच्छा* में विवरण मिलता है।

भूमिज शैली की पहचान सर्वप्रथम स्टेला क्रेमरिश (1896-1993) ने विदिशा जिले के उदयपुर के मन्दिर के सन्दर्भ में की थी। प्रारम्भ में विद्वानों ने भूमिज शैली को मालवा की मातृशैली कहा था, किन्तु बाद में इसके विस्तार की जानकारी डॉ० एम०एम० ढाकी द्वारा महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात और राजस्थान के मन्दिरों में भी दी गयी। वास्तुशास्त्रीय विवरण के आधार पर मालवा एवं मालवा के बाहर मन्दिरों पर प्रकाश विद्वानों द्वारा डाला गया है। डॉ० कृष्णदेव ने भूमिज शैली का प्रचीनतम मन्दिर ओंकारमान्धाता का अमरेश्वर मन्दिर को बताया है, जिसका आधार मुख्य रथ पर बने चैत्य उद्गम को माना है। डॉ० कृष्णदेव ने इसकी तिथि 10वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध बताई है।

समरांगणसूत्रधार में भूमिज शैली के तीन प्रकार— 1. चतुरश्र, 2. वृत्तस्थानक एवं 3. अष्टभद्र तथा मन्दिरों के 16 प्रकार बताए गए हैं। *अपराजितपृच्छा* में इनकी संख्या बढ़कर 25 हो गई थी। डॉ० कृष्णदेव ने इस शैली के अष्टभद्र मन्दिर उत्तर भारत में नहीं पाए जाने का उल्लेख किया है, किन्तु मेरे द्वारा किए शोध-कार्य की वस्तुस्थिति इन मन्दिरों के सन्दर्भ में इस प्रकार अभिव्यक्त है।

1. मालवा में ओंकारमान्धाता, ऊन, नेमावर, उदयपुर के प्रमुख मन्दिर-समूह के मन्दिर भूमिज शैली के वृत्तायत प्रकार के हैं व इनके तलविन्यास तारांकित हैं।
2. चतुरस्र प्रकार का एक शिव मन्दिर धार जिले की जामली से प्रकाश में आया।
3. परवर्ती परमारकाल के मन्दिर यथा बदनावर, देवरा के मन्दिरों पर मारु गुर्जर शैली का

प्रभाव है।

4. गत वर्ष मेरे द्वारा किये गये भिण्ड जिले की अटेर तहसील के पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण में दो अष्टभद्र मन्दिर प्रकाश में आए हैं जो शैलीगत आधार 8वीं-9वीं शती के निर्मित हैं। ये मन्दिर मालवा के मन्दिरों के पूर्ववर्ती भूमिज शैली के कहे जा सकते हैं, किन्तु इसमें लैटिना शिखर था, भूमिज का विकास नहीं हुआ था।

मालवा व निमाड़ के प्रमुख मन्दिर

1. विदिशा जिले के उदयपुर का उदयेश्वर मन्दिर (11वीं शती)
2. देवास जिले के नेमावर का सिद्धेश्वर मन्दिर (11वीं शती)
3. ओंकारमाधाता के मन्दिर- अमरेश्वर मन्दिर 10वीं शती, गौरी सोमनाथ (11वीं शती), विष्णु मन्दिर (12वीं शती) एवं अन्य मन्दिर
4. ऊन के मन्दिर-चौवारा डेरा नं० 1 मन्दिर महाकालेश्वर मन्दिर, ओंकारेश्वर मन्दिर, हाटकेश्वर मन्दिर, चौवारा डेरा नं० 2 बल्लालेश्वर मन्दिर एवं ग्वालेश्वर मन्दिर
5. शिव मन्दिर जामली, जिला-धार

उक्त मन्दिरों के अतिरिक्त मालवा में धार जिले के बदनावर व देवरा का मन्दिर, विदिशा के मन्दिर एवं अन्य भूमिज शैली के प्रकाश में आए हैं। इन मन्दिरों में भूमिज शैली की मूल विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। जगतीविहीन मन्दिरों के वेदिबन्ध के खुर, कुम्भ, कलश, काणिका, अन्तपट्टिका आदि संघाट होते हैं, उसके ऊपर अलंकृत मण्डोवर भाग के रथों पर बने परिकर्म में प्रतिमाओं का शिल्पांकन होता है। जंघा भाग के ऊपर शिखर की संरचना ही शैली के नामकरण का आधार है। शिखर को एक लता के द्वारा चार भागों में बाँटा गया। प्रत्येक चतुष्टकोण में लघु शिखरानुकृतियों के कूट स्तम्भों को क्षैतिज व लम्बवत पंक्तियों की संरचना होती है। इन्हीं कूटस्तम्भों को भूमी भी कहा जाता है, जिसके आधार पर 'भूमिज' नाम पड़ा।

मालवा के उत्कृष्ट मन्दिरों में उदयपुर का उदयेश्वर मन्दिर सबसे सुन्दर है, जो सर्वांगसुन्दर प्रकार का सप्तार्थी सप्तांग शैली का है। नेमावर का मन्दिर सप्तरथी नवांग शैली का है, जिसका शिखर सबसे अधिक लम्बा है, अन्य मन्दिरों के शिखर मूल रूप में नहीं हैं। 12वीं-13वीं शती के मन्दिर यद्यपि तारांकित योजना पर ही निर्मित हुए, तथापि इनकी शिखर-संरचना व ऊँचे अधिष्ठान पर निर्माण हुआ। ओंकारमान्धाता का गौरीसोमनाथ मन्दिर मूलतः 11वीं शती का है। इसके द्वितीय चरण में आगे का अधिष्ठान ऊँचा किया गया।

इसी भव्य व उत्कृष्ट परम्परा का अनुकरण उत्तर-मध्यकाल के मन्दिरों में भी हुआ। मुख्य रूप से अहिल्याबाई के समय बने मन्दिरों में।





32.

निमाड़ क्षेत्र में मन्दिरों की परम्परा : ऊन के मन्दिर

डॉ० मणिशंकर डोंगरे

सहायक प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय महाविद्यालय, निमाड़

ऊन (जिला प० निमाड़) निश्चित ही भुवनेश्वर या खजुराहो की तरह मन्दिरों का नगर था। माहेश्वरी दयाल खरे के शब्दों में, 'यह मन्दिर स्थापत्य की कुशलता एवं मूर्तिकला की परिपक्वता का अद्भुत संगम दर्शाता है।' खजुराहो के समान ऊन के मन्दिर को भी दो भागों में विभक्त कर सकते हैं— 1. स्थापत्य के आधार पर एवं 2. शिल्प-संयोजन की दृष्टि से।

खजुराहो के चन्देल मन्दिरों के अतिरिक्त निमाड़ के ये मन्दिर विभिन्न शैली-विधियों के विकास-क्रम को लेकर आगे बढ़ते हैं। मन्दिर-निर्माण की गतिविधियाँ 10वीं शताब्दी तक अपने चर्मोत्कर्ष तक पहुँच गई थीं और निरन्तर 12वीं शताब्दी तक विकासोन्मुख रहीं। इसी अवधि में परम्परा नृतयियों के निमाड़ में मन्दिर की दिशा में एक नवोन्मेष देखा जाता है, जिसके अप्रतिम उदाहरणों में ऊन के मन्दिर उल्लेखनीय हैं।

ऊन के प्रमुख मन्दिर

1. चौबारा डेरा नं० 1— यह मन्दिर ऊन के सभी मन्दिरों में विशाल है। पत्थरों पर खुदाई की दृष्टि से यह मन्दिर सर्वोत्कृष्ट है। इस पूर्व-मध्यकालीन मन्दिर के मध्य में सभामण्डप और पूर्व, दक्षिण एवं उत्तर में अर्द्धमण्डप है। पूर्व द्वार के मण्डप में प्रवेश करते ही शिव और सप्तमातृकाएँ दिखाई पड़ती हैं। सभामण्डप में चार आधार स्तम्भ भी वास्तव में दर्शनीय हैं। चौबारा मन्दिर के

मण्डप और गर्भगृह के बीच सामने की दीवार पर विष्णु, शिव, ब्रह्मा और गणेश हैं। मण्डप और गर्भगृह के बीच उत्तरी दीवार पर व्याकरण-संबंधी दो छोटे-छोटे लेख और एक सर्पबंध खुदा हुआ है। इस नागबंध से सहज ही प्रतीत होता है कि देवदर्शन के अतिरिक्त इस मन्दिर का पाठशाला के रूप में उपयोग होता था। सर्पबंध के पास के छोटे लेखों में मालवा के परमारवंशीय राजा उदयादित्य का नाम उल्लिखित है। द्वार के ऊपरी भाग में सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य करते हुए भगवान् शंकर दृष्टिगोचर होते हैं। पहले ऊन में जब भूमि खोदी गई थी, उस समय विशाल जैन-प्रतिमाएँ प्राप्त हुई थीं। ये सभी प्रतिमाएँ मन्दिर की सुरक्षा-दृष्टि से रखी गई हैं। वास्तव में यह वैष्णव-मन्दिर है। इस मन्दिर की रचना को देखकर दर्शक मुग्ध हो जाते हैं और मन-ही-मन प्राचीन शिल्पकला की सराहना करते हैं।

यह मन्दिर खुदाई में ग्वालियर की पहाड़ी पर बने हुए सास-बहू के सुन्दर मन्दिर से मिलता-जुलता है। सभामण्डप के बढ़िया खुदाई वाले चार आधार स्तम्भ भी दर्शनीय हैं। मण्डप के शिखर की बनावट और उसके भीतर की खुदाई आबू पर दिलवाड़ा के सुप्रसिद्ध जैन-मन्दिरों की खुदाई से मिलती-जुलती है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं कि 'कुछ वर्षों पूर्व चौबारा डेरा के आसपास की थोड़ी-सी भूमि खोदी गई थी, जिसके फलस्वरूप कुछ विशालकाय जैन-प्रतिमाएँ निकलीं। वे अब भी वहाँ दिखाई पड़ती हैं। मैंने इस देवालय के द्वार के आसन को देखा था, जिस पर वि०सं० 1332 का दो पंक्ति का लेख खुदा हुआ है। यह इस समय इन्दौर संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें एक सिंह, दो हाथी और मध्य में धर्मचक्र दिख रहा है।'

शिलालेख से विदित होता है कि मुसलमानों के अधिकार के पूर्व यह मन्दिर विद्यालय के उपयोग आता था।

धार की तुलना में ऊन का सर्पबंध बहुत छोटा है। देवनागरी अक्षर (वर्णमाला) और संबंधवाचक पारिभाषिक शब्द एक सर्प के शरीर पर लिखे हुए हैं। साँप के शरीर में चतुर्थ रूप से मुख्य 25 वर्ण पाँच वर्गों में लिखे हुए हैं। सर्प के शरीर के भागों में अनुस्वार, तीन विसर्ग, उपधमनीय, जिह्माम्लीय और विसर्जनीय पाए जाते हैं। उसकी पूँछ पर संबंधवाचक शब्द, जिनमें कुछ विशेषतः वर्तमान काल में परस्मय पढ़ और आत्मभेदन शब्द अब भी दिखाई देते हैं। यह विचित्र शिलालेख, जो मन्दिर की दीवारों पर खुदा हुआ है, उन दिनों यह संस्कृत-अध्ययनकर्ताओं के लिए विद्यालय जैसा था।

2. चौबारा डेरा नं० (जैन मन्दिर)— यह जैन-मन्दिर सड़क के किनारे नहालों की बस्ती के निकट है, अत्यन्त सुंदर व आकर्षक है। इसका मण्डप और गोल शिखर महत्त्वपूर्ण है। इनमें संवत् 1242 से 1266 की और उत्खनन कार्य में उपलब्ध जैन-मूर्तियों के बाहुल्य से यह अनुमान लगाया जाना स्वाभाविक है कि इस क्षेत्र पर जैन मतावलम्बी राजाओं का शासन रहा होगा। ऐतिहासिक प्रमाणों के कथन से इसकी पुष्टि होती है। निमाड़ क्षेत्र में उपलब्ध मूर्तियाँ 11वीं-17वीं शताब्दी तक की हैं।

यह वास्तव में एक सुविशाल और सुंदर जैन मन्दिर है। अब इस मन्दिर का शिखर नहीं है। इसमें सभामण्डप है जिसके बीच में 8 स्तम्भों पर गोल शिखर है। मण्डप के चार द्वार हैं, जिसमें से एक पूर्व और पश्चिम के द्वारों से बाहर जाने के लिए पैडिया हैं। इस मन्दिर में तीर्थंकर शान्तिनाथ की बड़ी प्रतिमा है, जो वि०सं० 1242, माघ शुक्ल 7 को प्रतिष्ठित हुई थी तथा दूसरी प्रतिमा, जो संभवतः वि०सं० 1263 को प्रतिष्ठित हुई थी, सन् 1930 में पुरातत्त्व संग्रहालय, इन्दौर में ले जाई गई है। यह मन्दिर भी शिल्पकला की उत्कृष्ट गुणात्मकता के कारण दर्शनीय है। यह चालुक्य शैली की अत्युत्कृष्ट शिल्प-रचना है। चालुक्य कुमारपाल के बनवाए हुए मन्दिरों के साथ इसकी बहुत समानता है।

3. ग्वालेश्वर मन्दिर (श्री शान्तिनाथ मन्दिर)– यह मन्दिर दिगम्बर जैन धर्मशाला से दो फलांग की दूरी पर स्थिति है। दिगम्बर जैनों के ग्वालगोत्रीय होने के कई प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। उनमें शिरपुर का वह शिलालेख, जिसमें राजसेन के शिष्यों को ग्वालगोत्रीय होना तथा केशरियानाथ (उदयपुर) के मन्दिर में ग्वालगोत्रीय दिगम्बर द्वारा प्रतिष्ठा कराए जाने के प्रमाण उल्लेखनीय हैं।

होयसलवंशीय बल्लाल राजा ने ऊन के अन्य मन्दिरों के साथ इसका भी निर्माण किया। यह मन्दिर सदैव ही ग्वालों का विश्रामगृह रहा है। इसमें तीर्थंकर शान्तिनाथ, कुन्धुनाथ और अरहरनाथ की खड्गास की प्रतिमाएँ हैं, जिनके प्रति ग्वालगण श्रद्धाभाव रखते हैं। इसलिए इस मन्दिर का नाम ग्वालेश्वर पड़ा। आजकल यह शान्तिनाथ मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि उक्त तीनों प्रतिमाओं में मध्य विशाल प्रतिमा शान्तिनाथ भगवान् की है। एकान्त स्थान में स्थित होने के कारण यह मन्दिर अखण्डित और खूँखार पशुओं का विश्राम स्थल भी रहा है। इसके सभामण्डप की छत का बाहरी भाग और 10 फीट नीचे गर्भगृह की वेदी का कुछ अंश अत्यन्त कलापूर्ण है। इसकी छत पर कमल, भीतरी भाग में वेदी, अग्रिम भाग में सभामण्डप, तीनों ओर तीन द्वार तथा द्वारों पर पद्मासिनी मूर्तियाँ अंकित हैं। मूर्तियों के अभिषेक के लिए दोनों ओर पाषाण-सोपान बने हुए हैं। मध्यप्रतिमा (श्री शान्तिनाथ) 18 फीट ऊँची और उसके आस-पास की दोनों प्रतिमाएँ (श्री कुन्धुनाथ और श्री अरहरनाथ) 9-9 फीट ऊँची हैं। मध्य की प्रतिमा का संवत् 1263, ज्येष्ठ कृष्ण 13, गुरो, आचार्य श्रीयशकीर्ति प्रणमति उत्कीर्ण है जो स्पष्ट पढ़ा जा सकता है। इस प्रतिमा पर भी संवत् 1263, ज्येष्ठ कृष्ण 13, गुरो, सीधी पं० तरंग सिंह सुलजीत सिंह प्रणमति अंकित है। मूर्ति के निचले भाग में हाथी और यक्ष-यक्षिणी हैं। दोनों प्रतिमाओं के दायें-बाएँ इन्द्र-प्रतिमा भी उत्कीर्ण है।

यह मन्दिर पूर्णतः अच्छी स्थिति में है। वर्गाकार मण्डप के चार द्वार हैं, जिनमें से तीन द्वार बाहर जाने के लिए हैं और एक द्वार भीतर आने के लिए है। मण्डप की छत का बाहरी आवरण लुप्त हो गया है। यहाँ गर्भगृह या चैत्यगृह की सतह सामने के विशाल कक्ष से लगभग दस फुट नीचे है। इस विशाल कक्ष से गर्भगृह तक पहुँचने के लिए अनेक सीढ़ियाँ हैं। इसके भीतर अविरोपित अवस्था में तीन विशाल दिगम्बर जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। वे कतार में खड़ी हैं

जिनकी चौकियों पर संक्षिप्त लेख हैं जो 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ के हैं। मध्यवर्ती मूर्ति सबसे बड़ी है और उसकी ऊँचाई साढ़े बारह फुट है। इन मूर्तियों के दोनों ओर गर्भगृह के पीछे दीवाल के साथ-साथ अनेक छोटी-छोटी सीढ़ियाँ हैं। ये सीढ़ियाँ मूर्तियों का अभिषेक करने के इच्छुक दर्शनाभिलाषियों के उपयोग के लिए हैं।

इस मन्दिर के सामने सुविशाल मानस्तम्भ बना हुआ है। सामने दो मन्दिर और बन गए हैं। समीप ही दूसरी पहाड़ी पर 5 नये मन्दिर और बन गए हैं। इनमें पञ्चमन्दिर व एक समाधि-स्थल है जिसे 'पञ्च पहाड़ी' के नाम से जानते हैं।

प्रथम मन्दिर में भगवान् बाहुबली स्वामी, द्वितीय तथा तृतीय मन्दिर में भगवान् शान्तिनाथ, चतुर्थ मन्दिर में श्री पार्श्वनाथजी तथा पञ्चम मन्दिर में भगवान् वासुपूज्य स्वामी की भव्य प्रतिमाएँ विराजित हैं। प्रथम एवं द्वितीय मन्दिर के मध्य में पूज्य मुनिश्री हेमसागरजी एवं मुनि चन्द्रसागर जी की समाधि पर चरण चिह्न स्थापित है।

इस मन्दिर की रचना-शैली पर परमार और चालुक्य कला का संयुक्त प्रभाव परिलक्षित होता है; क्योंकि यह चौबारा डेरा नं० 2 से बहुत मिलता-जुलता है। इसकी छतों में अत्यन्त कलापूर्ण कमल उत्कीर्ण हैं जो आठ शताब्दियों के कठिन आघात सहकर आज भी सजीव से प्रतीत होते हैं।

4. बल्लालेश्वर मन्दिर— इस मन्दिर के बारे में जान पड़ता है कि राजा बल्लाल ने अपने नाम पर शिवलिंग की स्थापनाकर इस मन्दिर का निर्माण किया होगा। इस मन्दिर में सभामण्डप आदि कुछ नहीं है और इसके शिखर के स्थान में मुस्लिम शैली का गुंबज है। राखालदास वन्धोपाध्याय^१ ने लिखा है कि यह शिवालय गिर जाने पर मुसलमानी शासनकाल में इसका जीर्णोद्धार करते समय मस्जिद का आभास उत्पन्न करने के लिए खासतौर पर यह गोल गुम्बज इसके सिरे पर बनवाया गया हो। इस मन्दिर की दीवार पर नागरी लिपि में एक लेख है जो अस्पष्टता के कारण पढ़ा नहीं जा सकता। यह लेख मन्दिर की मरम्मत के संबंध में होगा।

5. महालेश्वर मन्दिर-1— चौबारा डेरा के समीप ही उत्तर में महाकालेश्वर का विशाल मन्दिर है। इसके सभामण्डप का शिखर और गर्भगृह के शिखर का शिराभाग काल के कुचक्र का शिखर बन गया है। इसकी बनावट चौबारा डेरा जैसी ही है और अनुमान होता है कि इसका सभामण्डप चौबारा डेरा के सभामण्डप की अपेक्षा विस्तृत था। गर्भगृह की बाहरी ताकों पर ब्रह्मा तथा विष्णु की और अंदरी ताकों पर त्रिपुरारी नरेश तथा चामुण्डा-प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं। कुछ समय पूर्व मण्डप में यहाँ के नन्दी की खण्डित मूर्ति भी पाई गई थी।

6. नीलकण्ठेश्वर मन्दिर— गाँव की बस्ती में नीलकण्ठेश्वर का मन्दिर है। इसके शिखर का शिरोमणि गिर गया है और सभामण्डप भी नष्ट हो चुका है। परन्तु गर्भगृह में प्राचीन शिवलिंग विद्यमान है और ताकों पर पार्वती, सूर्य, विष्णु तथा वाराह-मूर्तियाँ विराजमान हैं। इसी प्रकार गर्भगृह के बाहरी ताकों पर भी त्रिपुरारी, चामुण्डा और नटेश्वर की मूर्तियाँ हैं, कुछ

समय पूर्व इस मन्दिर के पास खण्डित मूर्तियों का एक भाग पड़ा हुआ था जो अब नदारद है। इस मन्दिर में शंकरजी की मूर्ति विराजमान है।

7. श्री गुप्तेश्वर मन्दिर— नीलकण्ठेश्वर मन्दिर के समीप गुप्तेश्वर महादेव का एक अनूठा मन्दिर है, जो भूगर्भ में बना है तथा अपने भगवान् गुप्तेश्वर का नाम सार्थक करता है। उसकी सतह नीलकण्ठेश्वर के मन्दिर से करीब 30 फीट नीचे है। अन्दर प्रवेश करने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इस मन्दिर के मण्डप और शिखर शायद ही रहे हों। आज उनमें कोई चिह्न दिखाई नहीं देते। गर्भगृह के सामने की भूमि पत्थरों से ढक दी गई है और इससे प्रतीत होता है कि यह कमरा एक छोटा मण्डप रहा होगा। मन्दिर की दीवारों के कुछ भाग भूमिगत हैं।

8. महाकालेश्वर मन्दिर नं० 2— गाँव से बाहर ऊन-खरगोन सड़प के समीप नदी के किनारे एक ऊँचा, किन्तु छोटा शिव मन्दिर है। लोग इसे भी महाकालेश्वर का मन्दिर कहते हैं। इस मन्दिर में सभामण्डप आदि कुछ नहीं है और इसकी रचना भी साधारण है। काल के कठोर प्रहार से इसका कलेवर अब जर्जरित हो गया है। शिखर के अधिकांश पत्थर स्थानच्युत हो चुके हैं, जिससे ये निकट भविष्य में धराशयी हो जाने की कगार पर है।

मन्दिर में श्री महादेवजी की प्रतिमा है। पेट्टियों से उतरकर नीचे जाना पड़ता है। इस मन्दिर के बाहरी भाग में पत्थरों पर खुदाई का काम दर्शनीय है।

9. श्री हाटकेश्वर महादेव मन्दिर— ऊन में गाँधी चौक मोहल्ले से आगे जाने पर श्री हाटकेश्वर महादेव का मन्दिर है। इस मन्दिर के सामने का भाग नहीं है, केवल गर्भगृह है।

10. देवी महालक्ष्मी मन्दिर— इस मन्दिर में देवीजी की प्रतिमा बहुत ही विशाल और जाज्वल्यमान है। प्राचीन मन्दिर के आसपास परिक्रमा-स्थल तथा बाहर सभामण्डप बाद में बनाया गया है। इस मन्दिर के नीचे श्री पातालेश्वर महादेव मन्दिर, श्री गणेशजी व पार्वतीजी की प्रतिमा है। यहाँ पर श्री गायत्रीजी का मन्दिर, श्री मारुतिजी का मन्दिर तथा संत सिंगारजी का भी मन्दिर है।

निमाड़ प्रांत के तीन क्षेत्र ही इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन काल में यहाँ जैन मत का बाहुल्य रहा होगा। पावागिरी (ऊन) से स्वर्णभद्र आदि चार मुनीश्वरों ने यहाँ निर्वाण पाया है। यहाँ विपुल संख्या में जैन-साधुओं का निमाड़ प्रांत में विहार करना जैन मत के अधिक प्रसार का प्रमाण है। सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य के साथ स्वयं भद्रबाहु स्वामी इसी प्रांत से होते हुए दक्षिण भारत की ओर गए होंगे। राजा बल्लाल ने ऊन में जैन-मन्दिरों का निर्माण किया था, इसका उल्लेख हाल ही में मिली हुई इनकी एक मूर्ति पर खुदे हुए लेख से इसकी पुष्टि होती है। उसमें राजा बल्लाल के समकालीन प्रभाचन्द्राचार्य का नाम अंकित है।

धार के परमारवंशी राजाओं में मुंज और भोज बड़े विद्यारसिक नरेश थे। मुंज नरेश

की सभा में दिगम्बर जैनाचार्य महासेन का विशेष सम्मान था ।

भारतवर्ष में शिवोपासना अत्यन्त प्राचीन है । विष्णु ने समय-समय पर पृथिवी पर चौबीस अवतार लिये, जिनमें दस प्रमुख हैं । इन अवतारों के उपासकों ने उस क्षेत्र में अनेक विष्णु-मन्दिर और विष्णु-ध्वजों का निर्माण भी किया । कालांतर में शैवमत में पाशुपत और कापालिक तथा वीरशैव या लिंगायत संप्रदाय प्रचलित हो गये ।

देवियों में मुख्य स्थान लक्ष्मी, दुर्गा, भगवती, पार्वती आदि का था । लक्ष्मी धन, सुख, समृद्धि की देवी मानी जाने लगीं । शक्ति, करुणा और वात्सल्य की सप्तमातृकाओं को भी माना जाता था ।

सन्दर्भ :

1. वाणी (मासिक), अंक 2, निर्माण विशेषांक, संपादक वि०स० खोड़े
2. मॉडर्न रिव्यू, सितम्बर 1930, लेख आर०डी० बनर्जी





33.

शाजापुर परिक्षेत्र की प्राचीन धरोहर

डॉ० सौदान सिंह मकवाना

वे द-प्रतिपादित शैव मत क्रमशः विकसित होता हुआ साहित्यिक सन्दर्भों से सिक्कों में आया और उपरांत मूक चट्टानों में भी अवतरित होकर बोलने लगा। कुशल शिल्पी ने निर्जीव पाषाण में शैव मत का सजीव चित्रण कर स्थापत्य-कला के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। शैव स्थापत्य शाजापुर परिक्षेत्र में यत्र-तत्र बिखरे हुए आज भी अपनी भव्यता की कहानी कह रहे हैं।

महादेव मन्दिर

ग्राम अवन्तिपुर बड़ोदिया परमारकालीन बस्ती है जो सम्भवतः प्राचीन मालवा के सांस्कृतिक केन्द्रों में एक रहा होगा। यहाँ का महादेव मन्दिर, मन्दिर स्थापत्य तथा शिल्पकला का उज्ज्वल स्वरूप है। अपने विशिष्ट लक्षणों के कारण भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण तत्त्व संविहित करने के साथ-साथ परमार शैली के विकास का महत्वपूर्ण सोपान प्रस्तुत करते हैं। मन्दिर पश्चिमाभिमुख है। यह एक ऊँची जगती पर निर्मित है। भू-विन्यास में एक मुखमण्डप, महामण्डप और एक गर्भगृह है। मन्दिर जाने के लिए सीढ़ियों का क्रमबद्ध सोपान का निर्माण किया गया है।

कटिबंध में खुरकुम्भ, कलश और अन्तरपत्र बंधन है। इन बंधनों में कोई अलंकरण नहीं है। पुनः इन्हीं बन्धनों की पुनरावृत्ति की गई है। जंघा भाग में कपोतिका के ऊपर से

प्रारम्भ होता है। जंघा भाग तीन तलों में विभक्त है, परन्तु इसमें किसी प्रकार की मूर्ति की स्थापना नहीं है। भद्ररथ के देवकोष्ठ में भी कोई मूर्ति नहीं है।

मञ्जिका बंधन लम्बे छज्जों से दिखाया गया है, जिसको साधारण कोष्ठकों से समर्पित दिखाया गया है। इसके ऊपर से शिखर भाग प्रारम्भ होता है। मन्दिर पञ्चस्थ शिखरयुक्त है, जिसके सभी रथ में उरुक्रंग दिखाए गये हैं और छज्जे के ऊपर चारों तरफ आगे शिखर दिखाए गये हैं। तदुपरान्त साधारण आमलक शिला कलशतथा बीजपूरक दिखाए गए हैं। चारों दिशाओं में व्याल आकृतियाँ लगाई गई हैं। कपिली की दीवाल में कोई मूर्ति नहीं है। शुकनासिका में एक देवकोष्ठ है। उसमें ललितासन में गणेश-प्रतिमा है। चतुर्भुजी गणेश जटामुकुट, यज्ञोपवीत, मकरकुण्डल, वलय केयूर व नुपूर धारण किए हैं। क्रमशः ऊपरी दोनों हाथों में परशु व सर्प लिये हैं। नीचे हाथों में कमलपुष्प व मोदक पात्र लिए हैं।

मुखमण्डप में प्रवेश हेतु सोपानों की व्यवस्था है। अन्तराल साधारण है, परन्तु मुख्य चतुष्टकी कमलपुष्प से अलंकृत हैं। द्वारशाखाएँ साधारण हैं, परन्तु उद्गम काल पुष्प अंकित है। गर्भगृह आयताकार है, जिसकी तीनों दीवाल में आधुनिक देवी-देवताओं की मूर्ति स्थापित की गई है एवं गर्भगृह में शिवलिंग की स्थापना की गई है। गर्भगृह का वितान साधारण पत्थरों से निर्मित है और मध्य में साधारण और तिरछे पत्थर लगे हैं। मुखमण्डप के दोनों तरफ मूर्तियाँ, जैसे— विष्णु और त्रिविक्रम प्रदर्शित हैं।

बैजनाथ महादेव मन्दिर

आगर से उत्तर दिशा में लगभग 2 मील दूर बैजनाथ महादेव नामक एक प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान है। इस मन्दिर की वास्तुकला एवं मूर्तिकला सौन्दर्यपूर्ण है। सन् 1882 के नवनिर्माण के पश्चात् मन्दिर की रूपरेखा एक नितान्त नये रूप में प्रस्तुत की गई है। इस नये रूप में शिखर की रचना-विन्यास नागर शैली की विशेषताओं के अनुरूप ग्रीवा, आमलक, स्तूपिका एवं कलश आदि भागों में विभक्त है। शिखर का निचला भाग परमारकालीन अलंकरण, यथा— फूल-पत्ती आदि से परिपूर्ण है। मन्दिर के बाहर का मण्डप, सिंहद्वार एवं मन्दिर तक पहुँचने के लिए निर्मित सोपान कलात्मक है एवं सुन्दर दर्शाने के प्रयास किए गए हैं। पूर्व भाग में एक कोष्ठक में 27 इंच ऊँची शिव-पार्वती की संघाट प्रतिमा है। मन्दिर शिखर के बाह्य कलेवर में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की प्रतिमाएँ भी दर्शनीय हैं।

इस मन्दिर में उत्कीर्ण एक शिलालेख, जो 18वीं शती का है, में मन्दिर 16वीं सदी का एवं गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग गुप्तकालीन प्रतीत होता है।¹

बाद में 1882 ई० में कर्नल मार्टन द्वारा भारत-अफगानिस्तान युद्ध के पश्चात् सकुशल वापस आने की खुशी में मन्दिर का पुनर्निर्माण किया गया। मन्दिर के प्रांगण में अनेक प्राचीन प्रतिमाएँ विद्यमान हैं जो मन्दिर की प्राचीनता को इंगित करती हैं।² इसका अनेक बार जीर्णोद्धार होने से वास्तविक स्वरूप बदल गया है।

महाकालेश्वर मन्दिर

प्रसिद्ध महाकाल मन्दिर सुन्दरसी ग्राम के दक्षिण में कालीसिंह नदी के तट पर बसा है।¹ ग्राम को राजा सुदर्शन सिंह ने सन् 1032 में बसाया था। इसका प्राचीन नाम सुन्दरगढ़ था। किंवदन्ती है कि विक्रमादित्य की बहन सुन्दरी का विवाह सुन्दरगढ़ नरेश से होने के कारण इसका नाम सुन्दरसी पड़ा।

सुन्दरसी का महाकालेश्वर मन्दिर कुछ समय एक मिट्टी में दबा हुआ था। कालांतर में मिट्टी हटाकर इसे मूलावस्था में लाया गया। वर्तमान मन्दिर का जीर्णोद्धार प्राचीन ध्वंसावशेषों पर हुआ है। नागर शैली पर आधारित यह मन्दिर परमारयुगीन पूर्वाभिमुख है। इसमें गर्भगृह, अन्तराल एवं मुखमण्डप है। वर्तमान में इसका गर्भगृह ही अपने मूल स्थान पर है, जो चारों कोनों के भित्तिस्तम्भों पर आधारित है। मन्दिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। इसमें ओंकारमान्धाता के अनुरूप एक अन्य मन्दिर दूसरी मंजिल पर निर्मित है।²

महाकालेश्वर मन्दिर में आधुनिक द्वारशाखा है, जिसमें नीचे की ओर चन्द्रशिला है। इस शाखा के दोनों ओर सनालपद्म है। मण्डप दस स्तम्भों पर आधारित है। इसके मध्यवाले स्तम्भ पर लेख अंकित है। इन स्तम्भों के मध्य में आधुनिक शिवलिंग स्थापित है। मण्डप के तीनों ओर पूर्व में दरवाजे थे, वर्तमान में एक ही दरवाजा है। मन्दिर की दीवाल पर गौरी एवं गणेश प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

कहा जाता है कि मन्दिर के नीचे से उज्जैन तक जाने का रास्ता बना है। मन्दिर के पीछे एक कुण्ड का निर्माण हुआ था जो आज भी भग्नावस्था में विद्यमान है।

सोमेश्वर महादेव मन्दिर

शाजापुर के सुनेरा नामक ग्राम के पश्चिम दिशा में एक शिवालय स्थित है। पहले यह 'फूटा-देवल' के नाम से प्रसिद्ध था। वर्तमान में यह शिवालय सोमेश्वर महादेव मन्दिर के नाम से जाना जाता है। ग्राम बसाने से पूर्व (1640 ई० से पूर्व) यह मन्दिर नदी के तट पर अवस्थित था। नदी के प्रवाह के मोड़ दिए जाने के कारण अब यह बस्ती में है। परमारकालीन मन्दिर की छाप हमें इस मन्दिर में दिखाई देती है। मन्दिर के ऊपरी तल में गणेश व गौरी की प्रतिमाएँ स्थापित हैं तथा निचले तल में शिवलिंग स्थापित है।³ मन्दिर के दरवाजे पर दोनों ओर प्रतिमाओं से युक्त स्तम्भों का प्रयोग किया गया है। सभामण्डप का निर्माण कुछ वर्ष पूर्व किया गया है।

इस मन्दिर का जीर्णोद्धार लगभग सन् 1673 ई० में चौधरी क्षेमकरण उपाख्य सादतमंदजी ने करवाया था। उसी समय यहाँ सोमवारिया बाज़ार भी बसाया गया था। आज भी इस मन्दिर के आसपास के क्षेत्र की खुदाई के समय परमारकालीन अवशेष प्राप्त होते हैं।

शाजापुर परिक्षेत्र एक ओर जहाँ अपनी प्राचीन गौरव गरिमा को अपने में समेटे है,

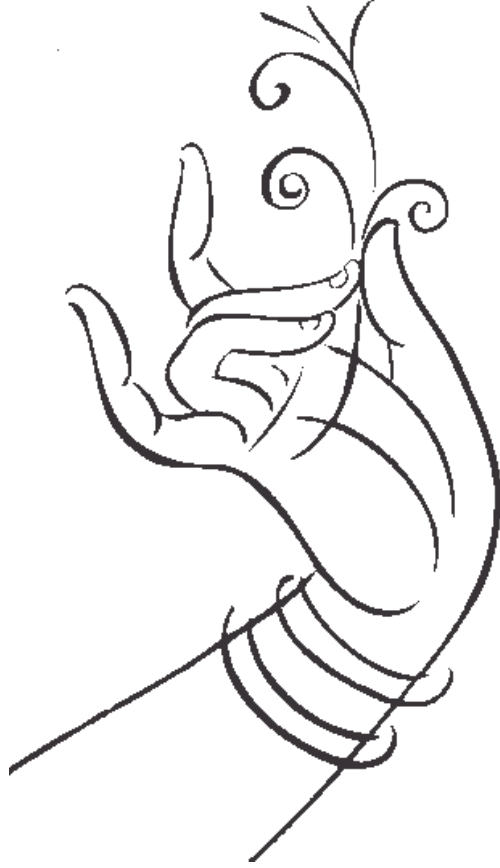
वहीं उसका इतिहास भी गौरवमय, समृद्ध एवं यशस्वी से समृद्ध है। शैव कलाओं के भग्नावशेष विगत वैभव के स्मृति-चिह्न हैं। शाजापुर के विभिन्न अञ्चलों के शिव-मन्दिर इसके विकास की गाथा को सुनाते दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ :

1. रायजादा, अजीत, *हेरिटेज ऑफ़ शाजापुर*, पृ० 141
2. जैन, के०सी०, *मालवा थ्रू द एजेस*, पृ० 395
3. इन्द्र, गणेशदत्त, *आगर का इतिहास*, पृ० 69
4. व्यास, हंसा, *प्राचीन मालवा में शैव धर्म*, पृ० 93
5. जैन, के०सी०, पूर्वोक्त, पृ० 273
6. भावसार, रामचन्द्र, *मालवांचल शाजापुर*, पृ० 66



વિવિધ





1.

बौद्ध-विहार : शिक्षा-केन्द्र के रूप में

डॉ० बबिता कुमारी

महासचिव, भारतीय इतिहास संकलन समिति, उत्तर बिहार प्रांत, सीतामढ़ी

बौद्ध शिक्षण-पद्धति का आरम्भ स्वयं महात्मा बुद्ध ने किया था, जिसमें सरल और सुबोध जनभाषा में जीवन के तत्त्वों की चर्चा थी। व्याख्यान और प्रश्नोत्तर के आधार पर विचारों का आख्यान किया गया था। उन्होंने धर्म के प्रचार में प्रासंगिक उपमा, दृष्टान्त, उदाहरण, कथा आदि का समावेश किया था जिससे उसका तत्त्व श्रोताओं को सरलतापूर्वक बोधगम्य होता था। विचार-विनिमय, तर्क और पर्यालोचन को बौद्ध मत में प्रतिष्ठित किया गया। बौद्ध शिक्षा-पद्धति में सत्य, दार्शनिक तथ्य, तर्क, पर्यवेक्षण मनन आदि पर अधिक बल दिया गया। बुद्ध के पश्चात् समाज में बौद्ध-शिक्षा का क्रमशः प्रसार होने लगा। बौद्ध-मठों और विहारों के माध्यम से बौद्ध-शिक्षा का प्रचार भारत के विभिन्न भागों में हुआ था। प्रारम्भ में हिंदू और बौद्ध-शिक्षाओं के मूल में कोई विशेष अन्तर नहीं था, किन्तु बाद में आकर दोनों शिक्षा-प्रणालियों के आदर्श और पद्धति में बहुत कम साम्य रह गया।

विनय और धर्म की शिक्षा उपासक को दी जाती थी, जिसमें महात्मा बुद्ध के धर्म-सिद्धान्तों का नियोजन होता था। सुत्त, विनय और धम्म के शिक्षार्थी साथ रहते थे अथवा भिक्षु सुत्त का पाठ करते थे, विनय का विमर्श करते थे तथा धम्म का पर्यालोचन करते थे, जिससे उनके ज्ञान की वृद्धि होती थी। यही नहीं, बौद्ध-विहारों के माध्यम से बुद्ध के वचन और

शिक्षाएँ प्रचारित होती थीं। बौद्ध संघ में भिक्षु को दीक्षा प्राप्त करने के लिए पल्वजा (प्रव्रज्या) और उप सम्बदा-जैसे संस्कार भी आवश्यक माने गये। पल्वजा-ग्रहण (अथवा प्रव्रज्या-ग्रहण) से ही उपासक का जीवन प्रारम्भ होता था।¹ इसके उसके अभिभावक की अनुमति आवश्यक होती थी।² प्रायः 8 वर्ष के बाद किसी का भी पल्वजा-संस्कार सम्पन्न किया जा सकता था। ऋषि-प्रव्रज्या के अंतर्गत बालक गृहीत किया जाता था, जहाँ वह बौद्ध शिक्षा ग्रहण करता था। ऐसे बौद्ध वर्षा ऋतु के अतिरिक्त सभी ऋतुओं में भ्रमण किया करते थे। ऐसे प्रव्रजित को करुणा, मुदिता और उपेक्षा भावनाओं का अभ्यास करता पड़ता था। उसे मैत्री भावना से सुभाषित चित्र-अर्पण समाधि और ब्रह्मपरायणता का अनुपालन करता पड़ता था। उपासकत्व की समाप्ति पर बौद्ध-भिक्षु के लिए उपसम्पदा संस्कार की आयोजना की जाती थी।³ उस समय उसकी आयु 30 वर्ष के लगभग हो जाती थी। उपासक बनने के लिए किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। उसे केवल बुद्ध के उपदेशों और शिक्षाओं पर विश्वास करना पड़ता था। वह भिक्षु आचार्य के निर्देशों-शिक्षाओं पर चलता था। बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति उपासक सर्वदा निष्ठावान् रहता था।⁴ संघ में रहते हुए संघ के नियमों और आचारों का भिक्षा छात्र दृढ़तापूर्वक अनुपालन करता था। वह विहार के सभी कार्यों की देखभाल करता था। हिंदू छात्रों की भाँति वह भी ब्रह्मचर्य-व्रत और अध्यात्म-मार्ग का अनुपालन करते हुए भिक्षाटन करता था। भिक्षु को अध्ययनरत होते हुए अपना चित्र और मन प्रांजल और उदात्त रखना पड़ता था। इसीलिए महात्मा बुद्ध का यह कथन की है कि भिक्षुओं, पशु भी पारम्परिक प्रेम और सौहार्द के साथ रहते हैं। तुम्हें भी इसी प्रकार रहना चाहिए जिससे तुम्हारा प्रकाश शोभायुक्त हो।⁵ जिस प्रकार ब्रह्मचारी और गुरु के बीच का संबंध पिता-पुत्र का था, उसी प्रकार उपासक और आचार्य के बीच का संबंध था।⁶ उपासक भी बौद्ध-आचार्य की सेवा करते और हिंदू-ब्रह्मचारियों की तरह अपरिग्रह, इन्द्रियनिग्रह-जैसा कठोरता का नियम अपनाते थे।

बुद्ध के बाद से इस बात की आवश्यकता प्रतीत की गई कि जनसाधारण को बौद्ध मत के प्रति जागरूक करना चाहिए और जनता में उसके प्रति आकर्षण और उत्साह की भावना जगानी चाहिए। धीरे-धीरे समाज में बौद्ध मत और शिक्षा का प्रसार होने लगा। इसके साथ ही बौद्ध-मत संबंधी स्वतंत्र शिक्षण-संस्थाओं का भी उदय हुआ। बाद में चलकर मठ और विहार, बौद्ध शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र बन गए जहाँ प्रमुख रूप से बौद्ध मत और दर्शन की शिक्षा दी जाती थी।⁷

बौद्ध शिक्षा-केन्द्रों का प्रबन्ध

बुद्ध के बाद से बौद्ध विहार और मठ बौद्ध-शिक्षा के केन्द्रों के रूप में विकसित होने लगे। नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों तथा श्रावस्ती और वल्लभी विहारों का उत्कर्ष इसी प्रकार हुआ था। बौद्ध शिक्षण संस्था की सम्पूर्ण व्यवस्था बौद्ध-भिक्षुओं के हाथ में रहती थी।⁸ चाहे वह छोटा बौद्ध संघ हो या बड़ा विश्वविद्यालय, उसका प्रबन्ध किसी विशिष्ट विद्वान् के निर्देशन में होता था, जो संघ के सदस्यों के मतों से भिक्षुओं में से चुना जाता था। ऐसा प्रबंधक

अपने ज्ञान और विद्वत्ता में अग्रणी होता था।⁹ नालन्दा विश्वविद्यालय, जो पहले बौद्ध संघ था, कालान्तर में विश्वविख्यात शिक्षण केन्द्र बना।¹⁰ नवम शती में उसका कुलपति एक भिक्षु ही चुना गया था।¹¹ ऐसे आचार्य के प्रबन्ध में सहायता प्रदान करने के लिए कई समितियाँ होती थीं जिसमें दो समितियाँ प्रधान थीं— 1. शिक्षा समिति और 2. प्रबन्ध समिति। शिक्षा समिति के अंतर्गत विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्धारण और व्यवस्था का नियोजन होता था तथा प्रबन्ध-समिति के अंतर्गत शिक्षा-संस्थाओं की प्रशासनिक व्यवस्था कार्यकर्ताओं की नियुक्ति तथा भवनों का निर्माण आदि सभी कार्य होते थे।¹² इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं की आर्थिक स्थिति धनी-मानी राजाओं और श्रेष्ठियों के दान पर निर्भर करती थी, जिनमें बड़े-बड़े गाँव और भूखण्ड भी शामिल होते थे।

बौद्ध शिक्षा के प्रमुख केन्द्र

धीरे-धीरे बौद्ध मठ और विहार ब्राह्मणों के गुरुकुलों के आधार पर विकसित हुए जो कालान्तर में बौद्ध शिक्षा के प्रधान केन्द्र बन गये। इन शिक्षण-संस्थाओं के अनुशासन और नियम हिंदू शिक्षण-व्यवस्था के अनुसार ही थे। राजगृह, वैशाली, श्रावस्ती, कपिलवस्तु आदि नगरों में कई प्रसिद्ध बौद्ध मठों आदि का उत्कर्ष हुआ था जो कालान्तर में बौद्ध शिक्षा के प्रधान केन्द्र के रूप में विकसित हुए।¹³ इस युग के प्रसिद्ध विहार में श्रावस्ती का जेतवन, कपिलवस्तु का न्यग्रोधाराम, वैशाली का कुटुमारशाला तथा आम्रवन, राजगृह का वेणुवन, यष्टिवन और सीतावन था। इन विहारों के अतिरिक्त अनेक संघारामों का भी विकास हुआ जहाँ आध्यात्मिक चिन्तन और मनन हुआ करता था।¹⁴

नालन्दा विश्वविद्यालय

छठी शती के उत्तरार्द्ध में नालन्दा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था। यहाँ बौद्ध धर्म और दर्शन की शिक्षा के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। इस विश्वविद्यालय के विषय में चीनी यात्रियों ने विशेष रूप से विस्तारपूर्वक लिखा है। वैसे, नालन्दा की ख्याति महात्मा बुद्ध के समय से थी। 500 श्रेष्ठियों ने मिलकर 10 करोड़ मुद्राओं से नालन्दा क्षेत्र को क्रय करके महात्मा बुद्ध को अर्पित किया गया था। बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र की यह जन्मभूमि थी। तथागत ने यहाँ आम्रवन में कई दिन व्यतीत करके अपने शिष्यों को अपने धर्म की शिक्षा दी थी। कालान्तर में अशोक महान् ने वहाँ एक विशाल विहार का निर्माण कराया था। ऐसा लगाता है कि यह स्थान अपने प्रारम्भिक काल में वैदिक शिक्षा का केन्द्र होते हुए भी बौद्ध मत और शिक्षा का प्रचार-स्थान था। गुप्त राजा कुमारगुप्त (414-455) ने इस बौद्ध संघ को दान दिया था। उसके बाद बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त, नरसिंहगुप्त बालादित्य आदि अनेक गुप्त राजाओं ने इसे अपना संरक्षण प्रदानकर इसके विकास में योग दिया था। श्वानच्चांग के विवरण से विदित होता है कि अनेकानेक बौद्ध-विहारों का निर्माण यहाँ किया गया था।¹⁵ विहारों में कुछ तो काफी बड़े और भव्य थे जिनके गगनचुम्बी शिखर अत्यन्त आकर्षक थे।¹⁶ यशोवर्मा के एक अभिलेख से विदित होता है कि नालन्दा के विहारों की

शिखर-श्रेणियाँ गगनस्थ मेघों का चुम्बन करती थीं। इनमें अनेक जलाशय थे, जिनमें कमल खिलते थे। यहाँ कई विशालकाय भवन थे, जिनमें छोटे-बड़े अनेक कक्ष थे। उत्खनन से मिले अवशेष वहाँ की भव्यता प्रमाणित करते हैं। विश्वविद्यालय-भवन में व्याख्यान के निमित्त 7 विशालकाय कक्ष और 300 छोटे-बड़े कक्ष थे। विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थे तथा प्रत्येक कोने पर नलकूपों का निर्माण किया गया था¹⁷। इसकी पुष्टि उत्खनन में मिले साक्ष्य से होती है। यहाँ एक अध्यापक 9 या 10 विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। सभी विषयों में मिलाकर नित्य लगभग 100 व्याख्यान आयोजित किए जाते थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय के खर्चे के लिए 200 गाँव दान में प्राप्त थे, जिनकी आय से यहाँ के भिक्षु-कार्यकर्ता और भिक्षु-अध्येताओं का पोषण होता था। यही नहीं, इन गाँव के निवासी प्रतिदिन कई मन चावल और दूध यहाँ भेजा करते थे। विद्यार्थियों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उनके आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय द्वारा निःशुल्क की जाती थी।

इस शिक्षण-संस्थान में प्रवेश पाने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए कड़े नियम थे। ऐसे प्रवेशच्छुक विद्यार्थी को सबसे पहले द्वारपाल से वाद-विवाद करना पड़ता था तथा उसकी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक था। उसके प्रश्नों से 8-10 विद्यार्थी असफल भी हो जाया करते थे और एक दो सफल।¹⁸ अपने-अपने विषय के यहाँ अनेक विद्वान् थे।¹⁹

इत्सिंग के समय में यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या 3,000 थी किन्तु श्वानच्वांग के समय बढ़कर 10,000 हो गई थी।²⁰ यहाँ के शिक्षकों की संख्या 1,510 थी, जिसमें एक हजार दस सूतनिकायों में दक्ष थे और शेष पाँच सौ अन्य विषयों में। श्वानच्वांग के समय इस विश्वविद्यालय के प्रधान कुलपति शीलभद्र थे, जो अनेकानेक विषयों में पारंगत थे।²¹ उसके पहले धर्मपाल इस विश्वविद्यालय के कुलपति थे। श्वनचवांग भी यहाँ के प्रधान शिक्षकों में से था, जिसने अनेकानेक विषयों पर अधिकार प्राप्त किया था।²² यहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। सुदूर प्रदेशों और विदेशों से विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। चीन, तिब्बत, कोरिया, तुखार आदि अनेक देशों के विदेशी शिक्षार्थी यहाँ रहकर ज्ञान प्राप्त करते थे²³ तथा अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करते थे।

विद्यार्थी के अध्ययन के लिए यहाँ रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक नामक तीन भवनों से मिलकर भव्य पुस्तकालय का निर्माण हुआ था। इनमें जिज्ञासु और अध्ययनशील विद्यार्थियों की प्रायः भीड़ रहा करती थी।²⁴ इत्सिंग ने स्वयं 4,000 संस्कृत-पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ तैयार की थीं, जिनमें लगभग 5 लाख श्लोक थे।

नालन्दा में विशेषकर महायान शाखा का अध्ययन किया कराया जाता था। यहाँ के अनेक विहार भी महायानी शाखा के थे। पाली भाषा की शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाती थी। नागार्जुन, वसबंधु, असंग, धर्मकीर्ति आदि ऐसे ही महायानी विचारक थे जिन्होंने

इसी शिक्षा केन्द्र से अपने को उन्नत किया था। श्वानच्चांग ने अनेक ऐसे विद्वान् आचार्यों का उल्लेख किया है जो अपने अपने विषय के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा भारत के विभिन्न प्रदेशों से आकर यहाँ अध्ययन-अध्यापन करते थे। धर्मपाल, चन्द्रपाल गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र, जिनमित्र, आर्यदेव, दिङ्नाग, ज्ञानचन्द्र आदि ऐसे ही प्रतिभावान् विद्वान् थे जिनके आकर्षण से दूरस्थ विद्यार्थी भी ज्ञानार्जन के निमित्त आते थे और अपने को सुबुद्ध और सुरक्षित बनाने की चेष्टा करते थे। उदाहरण के लिए ऐसे विद्वानों के नाम लिए जा सकते हैं जो विभिन्न प्रदेशों के थे। आर्यदेव और दिङ्नाग दक्षिण भारत के थे। धर्मपाल काञ्ची के रहनेवाले थे। शीलभद्र समतल (बंग) का निवासी थे। गुणमति और स्थिरमति वल्लभी के रहनेवाले थे।

विक्रमशिला विश्वविद्यालय

इस विश्वविद्यालय की स्थापना 8वीं शती में बंगाल के पालवंशीय शासक धर्मपाल ने बिहार प्रदेश में स्थित भागलपुर से 25 मील दूर की थी। पूर्व-मध्ययुग के शिक्षा-केन्द्रों में इस विश्वविद्यालय की सर्वाधिक ख्याति थी।²⁵ अनेक बौद्ध मन्दिरों और विहारों का निर्माण यहाँ कराया गया था। उन विहारों के कक्षों में व्याख्यान हुआ करते थे तथा सर्वदा दर्शन और धर्म की चर्चाएँ अयोजित की जाती थीं। यहाँ के अनेकानेक विद्वानों ने विभिन्न ग्रंथों की रचना की, जिसका बौद्ध सहित्य और इतिहास में नाम है। उन विद्वानों में प्रसिद्ध हैं रक्षित, विरोचन, ज्ञानपद, बुद्ध, जेतारी, रत्नाकर शान्ति, ज्ञानश्री मित्र, रत्नवज्र, दीपशंकर और अभयशंकर। दीपशंकर नामक विद्वान् भिक्षु ने सैकड़ों ग्रंथों (सम्भवतः 200 ग्रंथों) की रचना की थी। वह इस शिक्षा-केन्द्र के महान् प्रतिभाशाली व्यक्तियों में अकेले थे²⁶ जो गौड़ (बंगाल) प्रदेश के रहनेवाले थे।

यहाँ बौद्ध-मत और दर्शन के अतिरिक्त न्याय, तत्त्वज्ञान, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुस्तकें भी उपलब्ध कराई जाती थीं तथा उनकी जिज्ञासाओं का सामाधान आचार्य द्वारा किया जाता था। देश के ही नहीं, बल्कि विदेशों से भी छात्र यहाँ अध्ययन के लिए आते थे। विदेशी छात्रों में तिब्बत के छात्र अधिक होते थे। शिक्षा-समाप्ति के बाद विद्यार्थी को उपाधि प्राप्त होती थी जो उसके विषय की उक्षाता का प्रमाण मानी जाती थी।²⁷ दसवीं शती में यहाँ विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक थी जो नालन्दा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की संख्या से किसी भी प्रकार कम नहीं थी।

इस विश्वविद्यालय का समस्त व्यय बड़े- बड़े लोगों भेंट पर अवलम्बित था। छठ द्वार- पण्डितों की समिति द्वारा इसका सञ्चालन होता था जिका प्रधान महास्थविर होता था। दसवीं शती के उत्तरार्द्ध में इसके प्रथम द्वार पर काश्मीर-निवासी रत्नवज्र, द्वितीय द्वार पर गौड़ प्रदेश के रहनेवाले ज्ञानश्रीमित्र, तृतीय द्वार पर रत्नाकर शान्ति, चतुर्थ द्वार पर वागीश्वर कीर्ति, पञ्चम द्वार पर नरोप तथा षष्ठ द्वार पर प्रज्ञाकर मति बैठते थे।

पूर्व-मध्ययुग में मुस्लिम-आक्रमण के कारण अनेक भारतीय शिक्षा-मन्दिरों का

विनाश हुआ। उनमें विक्रमशिला भी था, जिसे 1203 ई. में बख्तियार खिलजी ने तोड़कर और जलाकर नष्ट कर दिया था। *तबकात-ए-नासिरी* में इसका विवरण दिया गया है, जिसके अनुसार यहाँ के निवासी अधिकांश ब्राह्मण (या बौद्ध भिक्षु) थे। सभी सिर मुड़ाए हुए थे। इन सबको तलवार के घाट उतार दिया गया। हिंदू धर्म से संबंधित सैकड़ों पुस्तकें थीं जिन्हें समझने के लिए मुसलमानों ने बचे हुए अन्य पण्डितों को बुलाया, किन्तु कोई भी पण्डित अर्थ ठीक से न समझा सका क्योंकि विद्वान् मारे जा चुके थे।²⁸

वलभी विश्वविद्यालय

गुजरात के काठियावाड़ में समुद्र के निकट स्थित वलभी एक ध्वस्त अंतर्राष्ट्रीय बन्दरगाह नहीं था बल्कि शिक्षा का भी प्रधान केन्द्र था जो नालन्दा विश्वविद्यालय के साथ-साथ विकसित हुआ था। सातवीं शती तक इसकी ख्याति देश के विभिन्न भागों में हो गई थी। इस शिक्षा-केन्द्र में सर्वप्रथम विहार का निर्माण राजकुमारी टड्डा ने कराया था। तदनन्तर दूसरा विहार राजा धारसेन ने 580 ई० में बनवाया था जिसका नाम श्री बप्पपाद था। इस विहार का निर्देशन और प्रशासन आचार्य स्थिरमति करते थे। इत्सिंग के अनुसार वलभी का महत्त्व नालन्दा की ही तरह था।²⁹ बौद्ध शिक्षा का प्रधान केन्द्र होने के कारण दूर-दूर के स्थानों से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। गंगा की तलहटी से अनेक ब्राह्मण भी अपने पुत्र को यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजते थे।³⁰ यहाँ अनेक विशाल बौद्ध विहार व मठ थे। 100 विहारों और 6,000 भिक्षुओं का विवरण श्वानच्चांग ने भी दिया है।³¹ स्थिरमति और गुणमति नामक विद्वान् इसी विद्यालय की शोभा थे।³² तर्क, व्याकरण, व्यवहार, साहित्यादि विभिन्न विषयों की शिक्षा यहाँ दी जाती थी।

इस विश्वविद्यालय की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। वलभी में 100 करोड़पति रहते थे, जिनका आर्थिक सहयोग इसे प्राप्त था। अनेक राजाओं ने भी इसे दान और भेंटस्वरूप समुचित धन प्रदान किया था। ग्रंथों के लिए भी यहाँ दान प्राप्त होते रहते थे।³³ 12वीं शती के पश्चात् जब मुसलमानों का आक्रमण तीव्रता से होने लगा, तब इस शिक्षा-केन्द्र पर भी उसका प्रभाव पड़ा और इसका महत्त्व घटने लगा।

श्रावस्ती नगर का शिक्षा-केन्द्र

बुद्ध के जीवनकाल में ही श्रावस्ती नगर बौद्ध मत और शिक्षा का केन्द्र बन चुका था। प्रमुख श्रेष्ठी अनाथपिण्डक ने बुद्ध के समय में नगर के निकट जेतवन विहार का निर्माण करवाया था जहाँ बौद्ध ज्ञान और आचार की शिक्षा दी जाती थी। कुछ ही वर्षों में उस विहार में आग लग जाने के कारण उसका विनाश हो गया। बुद्ध के काल में ही उसका पुनर्निर्माण हुआ। 130 एकड़ में फैला जेतवन विहार काफी प्रशस्त और विस्तृत था। उसमें 120 भवन और अनेक कक्ष थे। भिक्षु छात्रों और बौद्ध आचार्यों के रहने लिए सुन्दर आवास थे। स्नानागार, ओषधालय, पुस्तकालय, अध्ययन-कक्ष उसमें बने हुए थे। पानी के लिए जलाशय का निर्माण कराया गया

था, छात्रों के लिए वृक्ष लगाए गए थे तथा बैठने के लिए उपवन बनाये गए थे। श्वानच्चांग का कथन है कि महात्मा बुद्ध ने वहाँ बाड़े लगाकर पशुओं का आना अवरुद्ध कर दिया था और जल के लिए नगर निर्मित कराया था। अशोक और हर्ष के समय में श्रावस्ती विहार बौद्ध-ज्ञान और दर्शन का प्रमुख केन्द्र था जहाँ दूर-दूर से भिक्षु आकर ज्ञान प्राप्त करते थे।

अन्यान्य बौद्ध शिक्षा केन्द्र

उपर्युक्त विश्वविद्यालय शिक्षा-केन्द्रों के अतिरिक्त देश में अनेक बौद्ध शिक्षा-केन्द्र थे, जहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। ऐसे बौद्ध-विहार और मठ बहुत थे जो छोटी-छोटी पाठशालाओं के रूप में विकसित हो गए थे। फाह्याय के अनुसार काश्यप बुद्ध संघाराम बौद्ध ज्ञान के लिए ख्यात था, जो पाँच मंजिल में निर्मित हुआ था और जिसमें हजारों भिक्षु निवास करते थे। प्रत्येक मंजिल किसी-न किसी पशु-पक्षी के आकार की थी। पहली मंजिल हाथी के आकार की थी जिसमें 500 गुफागृह थे; दूसरी मंजिल सिंह सदृश थी, जिसमें 400 कक्ष थे; तीसरी मंजिल गैण्डे की आकृति की थी जिसमें 300 प्रकोष्ठ थे; चौथी मंजिल बैल के आकार की थी जिसमें 200 कक्ष थे तथा पाँचवीं मंजिल कपोताकृति की थी जिसमें 100 कमरे थे। सबसे ऊपर एक जलप्रपात था जो घूमकर बहता हुआ नीचे के द्वार के सामने से गया था। प्रकोष्ठों में प्रकाश जाने के लिए गवाक्ष बनाए गए थे तथा नीचे से ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनाई गई थी। यहाँ बौद्ध विद्यार्थी अध्ययनरत रहा करते थे। श्वानच्चांग ने कतिपय बौद्ध मठों में रहकर ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ तैयार की थीं तथा ज्ञान प्राप्त किया था। काश्मीर-स्थित विहार के वृद्ध भिक्षु ने श्वानच्चांग को अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त कोष, न्याय आदि की शिक्षा दी थी। उस विहार में विभिन्न स्थानों से लोग जाकर उस बौद्ध विद्वान् का व्याख्यान सुनते थे।³⁴ जालन्धर का बौद्ध-विहार भी बहुत प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र था, जहाँ श्वानच्चांग ने चार मास रहकर सर्वास्तिवाद का अध्ययन किया था। उसने नागार्जुन के प्रमुख शिष्य से भी ज्ञान-वार्ता की थी।³⁵ श्रुधन के मठ में उन्होंने वर्षा ऋतु और वसन्त ऋतु के कुछ समय व्यतीत करके बौद्ध विद्वान् जयगुप्त से ज्ञानार्जन किया।³⁶ उसने मतिपुर के विशाल संघाराम में रहकर मित्रसेन से *अभिधर्मज्ञानप्रस्थानशास्त्र* की शिक्षा प्राप्त की थी।³⁷ कान्यकुब्ज-स्थित भद्र नामक बौद्ध विहार में तीन महीने रहकर उसने आचार्य वीर्यसेन से त्रिपिटक का ज्ञान प्राप्त किया था।³⁸ उसने वाराणसी के तीस ऐसे विहारों का उल्लेख किया है जो सर्वास्तिवाद सिद्धान्त के प्रधान अध्ययन-केन्द्र थे।³⁹ हिरण्य (मुंगेर) के संघाराम में रहकर उसने वसुबन्धु के मित्र संघभद्र द्वारा लिखित *न्यायशास्त्र* के ग्रन्थों का अध्ययन किया था।⁴⁰ *ललितविस्तर* से विदित होता है कि कपिलवस्तु विद्या और शिल्प का केन्द्र था जहाँ गौतम बुद्ध को विभिन्न शिल्प और विद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ था। जातकों और बौद्ध-ग्रंथों के अनुसार वैशाली नगर भी बौद्ध-शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। महात्मा बुद्ध ने वहाँ भिक्षुओं को उपदेश दिया था।

उपर्युक्त बौद्ध शिक्षा-केन्द्र के विख्यात होने के पहले देश में प्राचीन बौद्ध शिक्षा-केन्द्र थे। बुद्ध के काल में और उनके बाद वैशाली, राजगृह, श्रावस्ती, कपिलवस्तु आदि बौद्ध

शिक्षाप्राप्ति के प्रधान स्थल थे। कपिलवस्तु का न्यग्रोधाराम विहार पुर्वाराम विहार, वैशाली का आम्रवन विहार और राजगृह का वेणुवन विहार बहुत अधिक प्रसिद्ध थे। इन विहारों में अनेकानेक दार्शनिक प्रश्नों पर विद्वानों द्वारा चर्चाएँ हुए करती थीं जिनमें बौद्ध भिक्षुओं के अतिरिक्त बौद्ध अनुयायी तथा साधारण जन भी सम्मिलित हुआ करते थे।

सन्दर्भ :

1. मज्झिमनिकाय, 2, पृ० 103.
2. महावग्ग, 1.50
3. मिलिनदपहन, 1.28
4. जातक 1, पृ० 106
5. चुल्लवग्ग, 6.6.4
6. वैखानसधर्मप्रश्न, 35.13य2.62
7. वही
8. बील, सैमुअल, पृ० 70-71 (*Buddhist records of the western world, Translation from chines-hiuen T sang*)
9. वही, पृ० 74-79
10. वार्ट्स टी 2, पृ० 165. (*On yuanchwang's Travels in India, 2 Vols. London, 1904-'05*)
11. एपिग्राफिका इण्डिका, पृ० 307
12. वार्ट्स, 2, पृ० 165
13. एंशिऐंट इण्डियन एजुकेशन, पृ० 443.
14. चुल्लवग्ग, 6.5, 6.17
15. वार्ट्स, 2, पृ० 164.
16. एपिग्राफिका इंडिका, 20.43
यस्यामम्बुधुरामवलेहि शिखर श्रेणी विहारावली ।
मलबोधर्य विराजिनी विरचित छात्र मनोज्ञाभुवः ।
नालन्दा हस्तीय सर्वनगरी : शुभाभ्रगोरसफुटः ।
च्यत्यांशु प्रकरोस्सदागमकला विख्यात विद्वज्जना ॥
17. वार्ट्स, 2, पृ० 180
18. वही, 2, पृ० 165.
19. वही
20. वही
21. वही
22. वही
23. वही
24. वही, 1, पृ० 160.
25. जर्नल ऑफ़ एसियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, 5, पृ० 07
26. इण्डियन टीचर्स ऑफ़ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज, पृ० 130
27. वही, पृ० 47 :

विविध

28. देखिए, तबकात-ए-नासिरी
29. बील, पृ० 177
30. कथासरित्सागर, 32,42,43
अन्तेर्वेद्यामभूपूर्व वसुदत्त इति द्विज ।
विष्णुदत्ताभिधानञ्च पुत्रस्तस्योपपद्यत ॥
स विष्णुत्तो वयसा पूर्ण शोडष वत्सरः ।
गतुं प्रवृत्ते विद्या प्राप्तये वलभीपुरीम् ॥
31. वाटर्स, 2, पृ० 246.
32. एपिग्राफिका इण्डिका, 6, पृ० 11.
33. बील, पृ० -177
34. बील, पृ० 70-71.
35. वही, पृ० 74-76
36. वही, पृ० 78-79
37. वही,
38. वही, पृ० 84
39. वही, पृ० 98
40. वही, पृ० 127





2.

वैष्णव सम्प्रदाय और भक्ति का उदय

डॉ० सुधा सोनी

प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा

जि

स धर्म का उदय भगवान् विष्णु के साथ हुआ है, वह वैष्णव सम्प्रदाय है। इसकी साधना सार्वजनिक, सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। सब लोग परम पुरुषोत्तम की सेवा के अधिकारी हैं। अतएव वैष्णव भाव अनुशीलन के योग्य है। वैष्णव का द्वार पतित, अधम, अयोग्य— सभी के लिए खुला है। जिस दिन भगवान् का नाम ग्रहण किया, उसी दिन से वैष्णव साधना आरम्भ हो गयी।

वैष्णव सम्प्रदाय के आदिमोत भगवान् विष्णु और वेद हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के महान् मनीषियों ने विचार की सूक्ष्मातिसूक्ष्म कोटियों की परम्परा को पार करते हुए आत्मदर्शन अर्थात् भगवद्दर्शन को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म बतलाया है। यहाँ विद्वान् टीकाकारों ने 'आत्मदर्शन' का अर्थ स्पष्ट ही परमात्म दर्शन किया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में वैष्णव साधना मूल स्रोत प्राप्त होता है।

वैष्णव सम्प्रदाय की रूपरेखा विष्णु के चरित्र के आदर्शों के अनुरूप विकसित हुई। विष्णु वैदिक देवता हैं। ऐसी परिस्थिति में इस सम्प्रदाय का मूल विष्णु-संबंधी वैदिक सूक्तों और कथानकों में माना जा सकता है। इस सम्प्रदाय में ऋग्वेद में वर्णित देवता की पराक्रमशीलता, उपनिषदों में प्रतिष्ठित ज्ञान और दर्शन प्रधान अंग है। वैदिक साहित्य में प्रतिपादित याज्ञिक कर्मकाण्ड को उपनिषदों में कोई विशेष मान्यता प्राप्त नहीं हुई। भागवत सम्प्रदाय में जो उपनिषदों का तत्त्वज्ञान प्रतिष्ठित हुआ, उसके प्रकाश में याज्ञिक कर्मकाण्ड का टिकना सम्भव

न था। इस याज्ञिक कर्मकाण्ड के स्थान पर सामाजिक परिस्थितियों और औपनिषदिक शिक्षाओं के अनुरूप भक्ति की प्रतिष्ठा हुई। वैष्णव सम्प्रदाय के अध्ययन में साहित्य एवं पुरातत्त्व— दोनों के आलेखों पर ध्यान देना आवश्यक है। शिलालेखों, मुद्राओं, मुहरों तथा इसी प्रकार के अन्य ऐतिहासिक अवशेषों से प्राप्त साक्ष्य हमारे ज्ञान के विश्लेषण और बहुधा अभिवृद्धि में भी अमूल्य सहायता प्रदान करते हैं। *महाभारत* और *रामायण*, जो प्रारंभ में पुराकथित चरित्रों की वीरतापूर्ण गाथाओं से संबंधित लोकप्रिय काव्य के रूप में रचे गए थे, अपने वर्तमान रूप वैष्णव कथाओं और उपदेशों के मुख्य कोश हैं, साथ ही वे धार्मिक पूजनीयता भी अर्जित कर चुके हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के इतिहास की जानकारी के लिये *महाभारत* का महत्त्व सर्वोपरि है क्योंकि यह भक्तिमूलक धार्मिक सम्प्रदायों के उद्भव का तथा वैष्णव देवता वासुदेव कृष्ण, नारायण एवं विष्णु का साम्प्रदायिक परिचय देनेवाला सबसे प्राचीन ग्रंथ है। आधुनिक अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि भारत का यह विराट् महाकाव्य जोड़कर तैयार की गई रचना अथवा विजातीय सामग्रियों को एक स्थान पर एकत्रकर, उनके नानाविध मिश्रण से तैयार की गई भीमकाय साहित्यिक पोथी नहीं, अपितु उचित एकसूत्रता तथा प्रबुद्ध परिकल्पना की एक सामञ्जस्यपूर्ण कृति है।

महाभारत के विकास का इतिहास वैष्णव सम्प्रदाय के अध्ययन के लिये बड़ा ही महत्त्व रखता है क्योंकि सर्वप्रथम इसी महाकाव्य में वासुदेव कृष्ण को नारायण विष्णु के रूप में अभिज्ञापित किया गया है। *महाभारत* में वासुदेव कृष्ण को नारायण विष्णु के रूप में अभिज्ञापित करके उनकी उपासना को वैदिक धर्मी उपासना का निरन्तर एवं विशिष्ट रूप से सफल प्रयास किया गया है।²

पुराणों में *ब्रह्मपुराण* में ही कृष्ण कथा का सबसे प्राचीन वर्णन मिलता है। अतः यह एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। *भागवतपुराण*, जो वैष्णवों का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है, *विष्णुपुराण* में वर्णित अधिकांश कथाओं को विस्तार देता है। *मत्स्यपुराण* मूलतः वैष्णवों के द्वारा संकलित किया गया था जिसमें शैवमत से सम्बद्ध अध्याय बाद में जोड़े गये।

स्मृतियाँ आचारसंहिता की पुस्तिकाएँ हैं। इनमें से कुछ स्मार्त वैष्णवों अर्थात् उन विष्णुपूजकों के, जो स्मृति के अनुरूप वैदिक धर्म के नियमों का पालन करते थे, संस्कारों तथा धार्मिक आचारों पर अच्छा प्रकाश डालती है। *मनुस्मृति* शिव का सृष्टा नारायण को मानती है और यद्यपि यह एक संप्रदायनिरपेक्ष कृति है, तथापि इससे उन सामाजिक स्थितियों को समझने में सहायता मिलती है, जिनमें पौराणिक वैष्णव सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। इसका रचना काल सामान्यतः 200 ई०पू० से 200 ई० के बीच माना जाता है। इसी काल के अंत तक यह अपना वर्तमान रूप ले चुकी थी। इसके बहुत-से श्लोक *महाभारत* के तीसरे, बारहवें तथा तेरहवें पर्व में मिलते हैं और इस प्रकार से उसी संस्थान या समुदाय की रचनाएँ हैं, जिसने *महाभारत* को जन्म दिया। *विष्णुस्मृति* ऐसा प्रतीत होता है कि मूलतः काव्यचरणवालों का धर्मसूत्र वही हो जिसे ईसा की शताब्दी में किसी वैष्णव मतावलम्बी ने नये साँचे में ढाला था। वैष्णव धर्म-चक्र की

धुरी है सर्वोच्चदेव नारायण विष्णु एवं उनके अवतारों की उपासना। महाकाव्य एवं पुराण नारायण तथा विष्णु में भिन्नता नहीं मानते क्योंकि ये दोनों नाम एक ही देवता के वाचक माने गये हैं, और इनके भागवत, पाञ्चरात्र, एकांतिन, सारस्वत एवं वैष्णवादि विभिन्न कार्यों में अभिहित किए जानेवाले देवताओं में सर्वोपरि मानते हैं। अन्तिम प्रकार के उपासकों (अर्थात् वैष्णव) के नाम का उल्लेख *महाभारत* में बाद के एक परिच्छेद में केवल तीन बार, किन्तु पुराणों में बार-बार हुआ है। इसी प्रकार उक्त देवता को *महाभारत* में सामान्यतः 'नारायण' नाम से भी अभिहित किया गया है, इनके दूसरे नाम 'विष्णु' का प्रयोग उसमें अपेक्षाकृत कई बार हुआ है। इससे पता चलता है कि इस धर्म में, जो वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ, विष्णुतत्त्व का प्राधान्य परिवर्ती विकास है और प्रारम्भिक काल में इसके सर्वोपरि देवता नारायण ही थे।^१

भागवत सम्प्रदाय के प्रारम्भिक स्वरूप का परिचय *महाभारत* में मिलता है। इस सम्प्रदाय का प्रमुख ग्रंथ गीता है। इसके अतिरिक्त महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीयोपख्यान में नारायणी धर्म के नाम से भागवत का वर्णन किया गया है।^२ इसके अनुसार महर्षि नर तथा नारायण परब्रह्म के प्रतिनिधि हैं, वे इस धर्म के अवतार और प्रवर्तक हैं। लोककल्याणहेतवे स्वयं भगवान् ने आरम्भ से इस धर्म का उपदेश दिया।^३

वैष्णव सम्प्रदाय का समय-समय पर प्रमुख उन्नायकों द्वारा अभ्युत्थान हुआ। आरम्भ में श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा सात्त्विक जाति के लोगों में इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। उस युग में कृष्ण को विष्णु का अवतार मान लिया गया और उन्हीं की भगवान् उपाधि के अनुरूप इसे भागवत धर्म कहा गया।^४ सास्वत जाति में इसका प्रथम प्रचार होने के कारण इसे सास्वत धर्म कहते हैं। परवर्ती युग में नारदपुराण और भागवतपुराण के रचयिता व्यास ने इस धर्म की प्रवृत्तियों को स्पष्ट रूप प्रदान किया।

श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता का शिक्षाओं के द्वारा भागवत सम्प्रदाय की रूपरेखा स्थिर कर दी। इसमें वेदवाद, संन्यास और यज्ञ-विधान को हेय ठहकराकर भगवदर्पण बुद्धि से निष्काम कर्म करते रहने की प्रवृत्ति को सर्वोत्कृष्ट बताया गया है। कृष्ण के उपदेश का सार है कि भक्ति से परमेश्वर का ज्ञान हो जाने पर भगवान् के भक्त को परमेश्वर के समान जगत् के धारण-पोषण के लिये सदायत्र करते रहना चाहिये।^५

युग प्रभु के प्रति ज्ञान ध्यानपरायणता का युग है, जिसे निवृत्ति प्रधान युग भी कहा जाता है। राजा वसु उपरिचर के साथ वैष्णव भक्ति का दूसरा युग प्रारंभ होता है^{१०} जिसमें अहिंसक यज्ञों की प्रधानता है और आरण्यक विधि से देवों को भाग अर्पित किए जाने का वर्णन है। यह युग प्रवृत्ति तथा निवृत्ति— दोनों को अपनाये हुए है।

वैष्णव भक्ति के ये दो युग भागवतों के दो सांप्रदायिक भेदों— पाञ्चरात्रों तथा वैखानसों के लिये एक समान है। तीसरे युग में दोनों सम्प्रदायों का पथ पृथक् पृथक् हो जाता है। वैखानस वैदिक पद्धति से चिपके रहते हैं, पर पाञ्चरात्र उससे भिन्न पथ का अनुसरण करते

हैं।¹¹

वैष्णव भक्ति के तृतीय युग में अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई। जिस नारायण ऋषि के अवतार श्रीकृष्ण माने गये, उस नारायण ऋषि को भी भगवान् का अवतार स्वीकार किया गया और इस अवतार-शृंखला को परमेश्वर के साथ संयुक्त कर दिया गया।

ब्राह्मणों ने भागवत के अभिनव प्रतिष्ठाता श्रीकृष्ण को दिव्य विभूति के रूप में ईश्वरवतार स्वीकार कर लिया। उनके परिवारवालों को भी उनके साथ संयुक्त करके चतुर्व्यूह में स्थान दिया। भागवतों की मान्यताओं के अनुकूल अनेक महापुरुषों को उन्होंने अवतार का पद प्रदान किया। मत्स्य, कूर्मादि में भी अवतार की भावना करके जनता के मनोरञ्जन तथा उपदेश के लिए उन्होंने पर्याप्त सामग्री एकत्र कर दी। बौद्ध सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध को भी अवतार की शृंखला में बाँधकर उन्हें अपना लिया।¹²

गीता में चतुर्व्यूह की प्रतिष्ठा दृष्टिगोचर नहीं होती, पर वह *महाभारत* के नारायणीयोपाख्यान में विधान है। गीता श्रीकृष्ण के कुछ समय पश्चात् बनी होगी, पर *महाभारत* का यह उपाख्यान निश्चित रूप से बाद में बना है। चतुर्व्यूह का सिद्धान्त भागवत से प्रदाय की बेरवानस शाखा है। इसका प्रचार पाञ्चरात्र संहिताओं ने ही विशेष रूप से किया है।¹³ इसके अंतर्गत वासुदेव श्रीकृष्ण और संकर्षण दो की प्रधानता है। ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व, पतञ्जलि के समय में दोनों के लिए मन्दिर बनाए जाते थे, ऐसा महाकाव्य के साक्ष्य से प्रकट होता है। पाणिनि के समय में भी दोनों की आराध्य देवता के रूप में प्रतिष्ठा थी। *महाभारत* में भीष्म श्रीकृष्ण की ईश्वर रूप में स्तुति करते ही हैं। अतः श्रीकृष्ण की मान्यता उनके जीवनकाल में तो थी ही, उसके पश्चात् उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई और ब्राह्मण भागवत सम्मिलन के होते ही वह अपने पूर्ण रूप में चमक उठी। हमें इस वैष्णव भक्ति का चतुर्थ युग भी कह सकते हैं। पाञ्चरात्र संहिताएँ इसी युग की देन हैं।¹⁴

भक्ति के इस युग के साथ मूर्ति पूजा का प्रारम्भ होता है। यज्ञों के विपुल विधानों के स्थान पर इस युग में मन्दिरों का निर्माण हुआ और विविध प्रकार की शृंगार-सज्जा से विभूषित देव-प्रतिमाएँ बनाई गयीं। आंतरिक ध्यान और उपासना के स्थान पर बहिर्मुखी प्रवृत्तिवाली पूजा-पद्धति की प्रतिष्ठा भी इसी युग में हुई। इस पूजा-पद्धति में कतिपय द्रव्य आवश्यक समझे गए हैं। पूजा द्रव्य में कलश, शंख, घंटी और दीप तथा पूजा-विधि में आवाहन, आसन, पुष्प, पाद्य, आचमन, स्नान, धूप, ताम्बूल, आरती, परिक्रमा आदि षोडशोपचार की गणना होती है। इनमें से कुछ वस्तुएँ वायुमण्डल-शोधन के लिए प्रयुक्त होती हैं और कुछ मन को एकाग्र करने के लिये।¹⁵

सन्दर्भ :

1. अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् । —याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.7; बृहत्यागियावल्क्यम्, 11.34

2. 'तमु स्तोतारः पूर्य्य यथा विद् ऋतस्य गर्भं जनुशा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विविक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥' — ऋग्वेद, 1.156.3
3. जायसवाल, सुधीर, वैष्णव सम्प्रदाय का उद्भव और विकास, पृ. 15
4. वही
5. वही, पृ० 15
6. नारायणीयोपाख्यान के लिये देखें महाभारत (शान्तिपर्व, अ० 321-339)
7. पद्मपुराण (भूमिखण्ड, अ० 71) के अनुसार वैष्णव सम्प्रदाय के प्रथम प्रवर्तक राजा ययाति हैं ।
8. डॉ. रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर, वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० 4
9. महाभारत, शान्तिपर्व, 335-75
10. शर्मा, डॉ० मुंशीराम, भक्ति का विकास, पृ० 373
11. महाभारत, शान्तिपर्व, 337.15-16, इसी श्लोक के आगे श्लोक-संख्या 34 में इन ऋषियों को ब्राह्मण कहा गया है ।
12. शर्मा, डॉ० मुंशीराम, पूर्वोक्त, पृ० 375
13. वही, पृ० 375
14. वही, पृ० 375
15. मुखर्जी, राधाकमल, भारत की संस्कृति और कला, पृ० 278





3.

उज्जयिनी की वैश्या-टेकरी

डॉ० प्रवीण जोशी

32 एल०आई०जी, इंदिरा नगर, आगर रोड, उज्जैन

भा रतीय संस्कृति के निर्माण और विकास में प्राचीन नगरों का अवदान विशेष महत्वपूर्ण रहा है। अपनी भौगोलिक स्थिति तथा अन्य ऐतिहासिक कारणों से इन नगरों ने दीर्घकाल तक भारतीय जीवन तथा चिन्तन को दिशा प्रदान की, ऐसे नगरों में उज्जयिनी का विशेष योगदान है। संसार में जब बौद्ध सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार हो रहा था, तब-तब बौद्ध धर्म के प्रमुख केन्द्र के रूप में इस नगर की महनीय भूमिका रही। बौद्ध सम्प्रदाय के अवशेष उज्जयिनी में यदा-कदा मिलते ही रहते हैं। उज्जयिनी में बौद्ध सम्प्रदाय का काफी प्रसार हुआ और वह प्रशस्त होता चला गया। उस समय मालवा में उज्जयिनी एवं विदिशा बौद्ध सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र थे। सम्राट् अशोक का विदिशा के एक वैश्य की पुत्री से विवाह हुआ, जिसे बौद्ध साहित्य में सम्मानित स्थान प्राप्त है और जिसे वेदिसादेवी के नाम से जाना जाता है। अशोक की इस पत्नी से महेन्द्र (पुत्र) और संघमित्रा (पुत्री) उत्पन्न हुए। उज्जयिनी की 'वैश्या टेकरी' उस वैश्य रानी का स्मरण कराती है।

कानीपुरा के इस विशाल स्तूप को लोकानुश्रुति 'वैश्या टेकरी' के नाम से पुकारती है। अधिक सम्भव है कि अशोक की पत्नी वेदिसादेवी ने इसका पुनर्निर्माण करवाया हो। यदि महावग्ग वर्णित स्तूप यही है तो इसके पास ही उक्त ग्रंथ में वर्णित दो लघु स्तूपों के निश्चित प्रमाण टीलों के रूप में आज भी उपलब्ध हैं। ये दो स्तूप क्रमशः तुलावती टेकरी, वैश्या टेकरी से

लगभग 100 मीटर पश्चिम की ओर तथा कंकड़ टेकरी उसमें लगभग उतनी ही दूर नैऋत्य की ओर स्थित है। यह मान्यता प्रकट की गई है कि वैश्या टेकरी की भाँति स्तूप मुरमयुक्त काली मिट्टी से भराव देकर बनाए गये थे तथा उस भराव पर ईंटों का आवरण डाल दिया गया था।

उज्जयिनी में वैश्या-टेकरी पर एक बड़ा स्तूप था। वर्तमान में यह लगभग समाप्त हो गया है। इस टेकरी का नामाकरण अशोक की वैश्य पत्नी (वेदिसादेवी) की स्मृति को ताजा रखता है। ऐसी मान्यता प्रकट की गयी है कि यह सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। जहाँ भारत के अन्य स्तूपों को सामान्य विश्व से प्रदक्षिणा-पथ द्वारा दूर रखा जाकर उसकी पवित्रता को कायम रखा जाता था, वहाँ उज्जयिनी में मौलिक रूप से यह कार्य परिखा द्वारा सम्पन्न किया गया था। परिखा के ऊपर एक थोड़ा सा मार्ग पुल के रूप में स्तूप तक पहुँचने के लिये रखा गया था। वैश्या-टेकरी के इर्द-गिर्द परिखा की विद्यमानता है। स्तूप के अवशेषों से जो पुरातत्वीय सामग्री, विशेषतः आहत मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, वे भी इस स्तूप भी पुरातनता का साक्ष्य देती हैं।

वैश्या-टेकरी के अतिरिक्त उज्जयिनी में दो स्तूप और प्राप्त हैं। एक है तुलावटी टेकरी का स्तूप और दूसरा कंकड़ टेकरी का स्तूप, ये स्तूप भी वैश्या टेकरी की ही भाँति वर्तमान उज्जैन के उत्तर-पूर्व में स्थित हैं। इस स्थलों पर जो अवशेष हैं उनसे इनका वैश्या-टेकरी के स्तूप का समकालीन होना पाया जाता है, किन्तु अधिक प्रमाण अब अतीत के अंधेरे में लुप्त हो चुके हैं।

आज भी शबे मालवा के नाम पर उज्जयिनी के सांस्कृतिक वैभव को याद किया जाता है। शान्ति के सुखद स्पर्श और लोकगीतों की कस्तूरी लोरीवाले सुरों-जैसे मदमस्त कर देनेवाली वायु का स्पर्श उज्जयिनी में होता है। बौद्ध अवशेषों की कीर्ति की सुगंध से मन आज भी भावविभोर हो उठता है। अतः परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर वर्तमान वैश्या टेकरी की पहचान बौद्ध स्तूप के रूप में की जाती है। भविष्य में सर्वेक्षण अथवा उत्खनन में मिलनेवाले अन्य साक्ष्यों से उज्जयिनी के इस गौरव स्तूप वैश्या टेकरी को और अधिक प्रामाणिक रूप से जाना जा सकता है। उल्लेखनीय है कि बौद्ध धर्म के सांस्कृतिक इतिहास में वैश्या टेकरी का निर्णायक महत्व रहा है। यह शासन एवं बौद्ध जगत् का कर्तव्य है कि बोधगया अथवा सारनाथ की इस स्थल और यहाँ अवशिष्ट स्तूपों का जीर्णोद्धार कर एक बार पुनः अतीत के बौद्ध पुरावैभव की उज्जयिनी में स्थापना कर सके।





4.

हिंदू-धर्म का जनजातियों पर प्रभाव : एक ऐतिहासिक विवेचन

राजाराम सिंह

प्रस्तुत शोध पत्र मध्यप्रदेश की जनजातियों पर हिंदू-धर्म का ऐतिहासिक कालावधि में पड़नेवाले प्रभावों पर आधारित है। यह निर्विवाद है कि भारत में जनजातियाँ घने वन-प्रांतर में निवास करती रही हैं तथा पिछड़ी अर्थव्यवस्था, अनुपम (भिन्न) संस्कृति, जीववाद में विश्वास, राज्य की विशेषता, विशेषीकरण का अभाव इत्यादि सामुदायिक लक्षण इन्हें सामान्यजन से भिन्नता (आदिम) प्रदर्शित करते हैं। मध्यक्षेत्र की जनजातियाँ विकास के तीन स्तरों का प्रतिनिधित्व करती हैं— कृषि-कार्यों में संलग्न, वास्तुकार (शिल्पकार) एवं खाद्य-संग्रहण एवं शिकार करनेवाली जनजातियाँ। इस क्षेत्र की प्रत्येक जनजाति की अपनी एक अनूठी विशेषता है, जो मध्यक्षेत्र के इतिहास को एक आयाम प्रदान करती है, जैसे बैगा जनजाति की बस्ती अन्य समुदायों से पृथक् होती है तथा ये अपनी सामुदायिक निजता बनाये रखने के इच्छुक होती है। भूमि पर हल चलाना सामुदायिक मूल्यों का उल्लंघन करना है, गोण्ड जनजाति में प्रतिष्ठा भूमि से निर्धारित होती है। अगरिया बैगा बस्तियों के मध्य निवास स्थान बनाते हैं, इत्यादि। परिवर्तित होती परिस्थितियों में ये हिंदू जातियों के सम्पर्क में आयीं। राजनीतिक गतिविधियों (डरकर) अथवा निजी विशिष्टता के कारण कुछ जनजातियाँ, जैसे— बैगा, अगरिया, धोबा इत्यादि घने जंगलों की ओर पलायन कर अपनी अछुण्णता को अधिक दिनों तक बनाए रखीं। दूसरी तरफ ऐसे जनजातीय समुदाय, जिन्होंने प्रव्रजित न होकर नवीन राज्य के शासन को अंगीकार किया, जैसे गोण्ड, मील आदि। इस रूप में निकटता का आधार

संस्कृतिकरण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न किया एवं शासक (क्षेत्रीय जाति) की जीवन शैली को ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया।

सम्पर्क की प्रक्रिया को ऐतिहासिक कालावधि में देखने से स्पष्ट होता है कि मध्यप्रदेश के इतिहास में मुगलों एवं अंग्रेजों के आधिपत्य के पूर्व प्रमुख रूप से दो राजवंशों के शासन का प्रमाण मिलता है— 1. कल्चुरी तथा 2. गोण्ड राजवंश।

कल्चुरी राजवंश की स्थापना काल एक विवादित विषय रहा है। कनिंघम (1967) इसका स्थापना काल 249 ई० मानते हैं तो मिराशी 550 से 1740 ई० तक मानते हैं। अधिकांश विद्वान् कल्चुरी वंश की स्थापना छठी शताब्दी को ही मान्यता प्रदान करते हैं। त्रिपुरी के कल्चुरी राजवंश का संस्थापक वाम राजदेव था, जिसका उल्लेख सर्वप्रथम शंकरगढ़ के सागर शिलालेख से प्राप्त होता है (शर्मा 1974:7)। अभिलेखों में इन्हें हैहय अथवा सहस्रार्जुन का वंशज (व्योहार 1939:21) तथा रतनपुर अभिलेख में इन्हें सूर्यवंशी कहा गया है। इससे ग्रियर्सन का अनुमान प्रमाणित होता है कि बैगा (पृथक्कृत जीवन जीनेवाली अन्य जनजातियाँ भी) हैहयवंशी राजपूतों द्वारा भगाए गए होंगे (तिवारी 200:85-120) अथवा पलायन किए होंगे। यही कारण है कि वन-प्रांतर में रहनेवाले जनजातीय समूहों से बाहर के लोगों का सम्पर्क अत्यन्त कम हुआ और हुआ भी तो बाद में (नायक:1972:25)। यह भी हो सकता है कि पृथक्कृत जीवन जीने के आदि बैगा, अंगरिया, धोबा तथा अहीर जनजातियाँ स्वयं ही घने वन-प्रांतर में चले गये हों। कल्चुरी शासक शैव मतावलम्बी थे तथा उन्होंने शैव-सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। इसके साथ-साथ उन्होंने अन्य धर्मों के प्रति भी सद्भावना एवं सहिष्णुता प्रकट की, जिसके फलस्वरूप क्षेत्रविशेष में बहुसंख्यक एवं विभिन्न धर्मों के देवालयों, मठों, मूर्तियों तथा स्मारकों का निर्माण कराया। क्षेत्र से प्राप्त प्रतिमाएँ एवं शिलालेख कार्तिकेय, सूर्य, ब्रह्मा इत्यादि हिंदू देवी-देवताओं की पूजा की ओर संकेत करते हैं (वंदना गुप्ता:2000 निष्कर्ष)। मध्यक्षेत्र की जनजाति, यथा— गोण्ड, बैगा, अंगरिया आदि के उद्भव-संबंधी मिथकों में शिव, ब्रह्मा एवं सूर्यादि देवताओं का संस्थापन यह संकेत करता है कि कल्चुरी काल में जनजातीय समुदायों ने हिंदू देवी-देवताओं को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया था।

कल्चुरी वंश के शासन की समाप्ति के पश्चात् कोई स्थायी शासन अधिक समय तक स्थिर नहीं रहा (करुणा द्विवेदी 2006:5-20)। लगभग 15वीं से 18वीं शती तक क्षेत्र पर गोण्डों का शासन काल माना जाता है। (सिंह 25 जून 207:21)। जनश्रुति के अनुसार धाकशाह के पौत्र यादवराय ने गढ़ा में गोण्ड राज्य की नींव रखी थी (गज़ेटियर मण्डला 622-623)। गोण्ड शासनकाल में संग्राहल और दलपतशाह ने गोण्ड वंश का कीर्तिमान स्थापित किया। संग्रामशाह के पुत्र दलपतशाह ने कालिंजर के राजा कीर्ति सिंह की पुत्री दुर्गावती से 04 जनवरी, 1541 को सिंगौरगढ़ के मन्दिर में प्रेम विवाह किया। इस काल की जबलपुर में प्राप्त मन्दिर एवं मूर्तियों से स्पष्ट होता है कि इस काल में गोण्ड जनजाति हिंदुओं के अधिक निकट थी। दुर्गावती के दलपतशाह से विवाह के पश्चात् गोण्ड जनजाति अपने को ठाकुर (क्षत्रिय) होने का दावा करने

लगी। स्टीफेन फुस ने भी गोण्डों के चार वर्गों का उल्लेख किया है— देव गोण्ड, सूर्यवंशीय गोण्ड, सूर्यवंशी देवगड़ी एवं रावणवंशीय (1968:195-198)। स्वातंत्र्योत्तर काल में राजशाही से जुड़े लोगों को क्षेत्रीय होने की मान्यता प्राप्त हुई, माध्यमबंगीय गोण्डों को 'गोण्ड ठाकुर' के नाम से जाना जाता है तथा निम्नवर्गीय लोगों को 'राजगोण्ड' की स्थिति प्राप्त हुई। मध्यक्षेत्र की शेष जनजातीय समुदायों ने हिंदू-धर्म के तत्त्वों को ग्रहण तो किया, लेकिन ऐसा कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया तथाति मिश्रित गाँवों में जातीय संस्तरण के तत्त्व सम्मिलन के प्रमाण देखे गए हैं।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि मध्य क्षेत्र की जनजातियों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया कलचुरी काल से प्रारम्भ हुई और अनवरत रूप से क्रियाशील है। इसे देखते हुए ही जी०एस० घुर्ये ने भारत की जनजातियों को 'पिछड़े हुए हिंदू' कहा है।

सन्दर्भ :

1. कनिंघम, क्वायंस आफ मेडिणल इण्डिया फ्रॉम द अर्लियस्ट टाइम्स टु द सेवेन्थ ए.डी., वाराणसी, 1963 (पुनर्मुद्रित)
2. शर्मा, आर०के०, मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का सन्दर्भ-ग्रंथ, भोपाल, 1974, पृ० 3
3. व्योहार, राजेन्द्र सिंह, 1939, त्रिपुरी, जबलपुर
4. ग्रियर्सन, (तिवारी शिवकुमार एवं कमल शर्मा), मध्यप्रदेश की जनजातियाँ : समाज एवं व्यवस्था, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2000
5. नायक, ठाकुर ला भाड़ा भाई, बारह भाई विंझवार, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1972
6. गुप्ता, वन्दना, कलचुरीकालीन धार्मिक स्थिति का अध्ययन (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 2000
7. द्विवेदी, करुणा, गढ़मण्डला के गोण्ड राजवंश का सांस्कृतिक इतिहास : 14वीं से 18वीं शती (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 2006
8. राजा रामसिंह, गोंड जनजाति के उत्कर्ष में रानी दुर्गावती की भूमिका, स्मारिका, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, 2007
9. फुश, स्टीफेन, द गोण्ड एण्ड भूमिया ऑफ ईस्टर्न मण्डला, 1968

